इस अंक में—

श्रमण के विषय में—

१ श्रमण प्रत्येक अंग्रेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२ ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।

३ श्रमण में साप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता।

४ विज्ञापनो के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।

५ पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

जनवरी १९५३ — वर्ष ४ अंक ३

संस्कार जीता जा रहा है !

मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है !

प्रस्तरों में प्राण है, आनन्ददाता देवता है
मानवों की पीर को जो प्यार करने तरसता है
पापियों के पाप को हँस हँस क्षमा कर डालता है
अन्ध है यह भक्ति फिर भी सीस झुकता जा रहा है
मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है !

नित अभावों के थपेटों से हृदय जर्जर निरन्तर
आनन्दमय पाषाण या ईश्वर, न देता सौख्य लघुतर
स्वर्ग सुन्दर स्वप्न दुर्लभ, दण्ड मिलता नित कठिनतर
आश्चर्य ! परमानन्द घन भी दुःख देता जा रहा है
मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है !

व्यर्थ दीपक धूप में तो फल न कोई दीखता है
अनगिनत शत शत पुजारी, प्राण भूखा चीखता है
भूल कर श्रम कर्म को, बस 'दैव देगा' सीखता है
विश्व का अतुलित विभव यों व्यर्थ लुटता जा रहा है
मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है।

भ्रान्ति में टकरा रहा जग 'ईश' को प्रस्तर बनाकर
दु ख में सब जल रहे हैं 'श्रम' को 'किस्मत' समझकर
'स्वय अपने भूल तरु का फल विकट है दु ख दुस्तर',
जग न है यह जानता, बस व्यर्थ मरता जा रहा है
मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है।

दु ख सहते ही चलो, यह ईश देगा मुक्ति वैभव
जाँच का यह काल, आएगा सुखों का प्रात अभिनव
काश ! निष्क्रिय हो भुलाया आत्मबल, पुरुषार्थ, गौरव
आत्म परिचय हीन परिभव घूँट पीता जा रहा है
मर गया विश्वास, पर संस्कार जीता जा रहा है।

बिहार-हिन्दी साहित्य सम्मेलन
पटना—३

—श्री रजन सूरिदेव

असंयत जीव का जीना चाहना राग है!

प्रो० दलसुख मालवणिया

'विवरण पत्रिका' का अंतिम अंक (२–२०) पढ़ रहा था। एक स्थल पर पूज्य श्री तुलसी गणी के प्रवचनों के सारांश में मने पढा—"त्याग धम ह और भोग अधम, असयत जीव का जीना चाहना राग, मरना चाहना द्वेष और तरना (आत्मोत्थान) चाहना वीतराग प्रभु का माग ह।" मने सोचा, कितने सुदर शब्दों में तेरापथी विचार धारा का नवनीत रख दिया ह। किन्तु साथ ही दूसरा विचार आया कि इस वाक्य की अपनी दृष्टि से व्याख्या करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। यह जरूरी नहीं ह कि मै जो यहा लिखूंगा वह सब तेरापथी सज्जनों को मान्य होना ही चाहिए। म तो इतना ही कह सकता हूँ कि इस वाक्य के विषय में मेरे अपने विचार ये ह।

-त्याग धम है, और भोग अधर्म

इस एक वाक्य में, भगवान महावीर के उपदेश का सार आ जाता ह। धर्म के विषय में नाना कल्पनाएँ प्रचलित ह। - वदिक संस्कृति में हिंसक यज्ञों को भी धर्म में स्थान मिला है। उन यज्ञो के प्रति अहिंसाधर्मी लोगों की दृष्टि यह रहती ह कि यज्ञ हिंसक ह अतएव हेय ह। किन्तु जिन लोगों के द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान होता था उन की दृष्टि में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न वहाँ था ही नहीं। उनकी दृष्टि तो अपने इष्ट देवों को प्रसन्न करने की थी। याज्ञिक स्वयं जिन वस्तुओं के भोग से प्रसन्न होता था उन्हीं वस्तुओं के भोग से इष्ट देवता भी प्रसन्न होते ह ऐसी उसकी कल्पना थी। जनो ने अपने आराध्य के वीतराग स्वरूप की जसी कल्पना कर रखी ह, वसी कल्पना वदिकों में थी ही नहीं। ऐसी स्थिति में याज्ञिक लोग अपनी प्रिय वस्तु गो, अजा, अश्व आदि का त्याग कर अपने इष्ट देवता को प्रसन्न करने की कोशिश किया करते थे। इस प्रकार धम में त्याग भावना का प्राधान्य है। यह हम वेदकाल में भी देखते ह। इसी त्यागभावना का सस्कार भगवान् महावीर और बुद्ध के उपदेशों में हुआ ह। वदिको में त्याग तो किया ही जाता था किन्तु नए भोगों के लिए। तब भगवान् महावीर और बुद्ध ने बताया कि भोग ही तो अधर्म ह। अतएव त्याग का फल भोग हो यह दृष्टि नहीं रखनी चाहिए किन्तु जिसका हम त्याग करते

हैं वैसी वस्तु सवय अनावश्यक ह। ऐसी दृष्टि रखकर ही त्याग करना चाहिए। त्याग का फल भोग नहीं किन्तु वराग्य होना चाहिए। त्याग का जब इस प्रकार सस्कार हुआ तब यज्ञों के त्याग में जो हिंसा का अंश था वह दूर हो गया अर्थात अब इष्ट दव को प्रसन्न करने के लिए गोवध-अजावध-अश्वमेध करने की आवश्यकता नहीं रही। किन्तु जितने भी हमारे भोग के साधन ह उनसे दूर हो जाना—उनसे ममत्व नहीं रखना, यही सच्चा त्याग ह। वस्तु की अपेक्षा कषाय त्याग का ही अधिक महत्त्व ह, इस बात पर जोर दिया गया। ऐसे त्याग में दूसरे प्राणियों की हिंसा का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि हिंसा करना ही ह तो अपने काम क्रोध-मद-मोह जसे आभ्यंतर शत्रुओं की ही हिंसा करना ह। वीतरागदेव को ऐसी ही बलि इष्ट ह, पशुबलि नहीं।

असयत जीव का जीना चाहना राग है!

भ० महावीर के उपदेशों में एक वाक्य यह भी ह—"सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउ"– दशवै०। इस वाक्य से यह तो स्पष्ट ह कि ससार में जीना सभी को अच्छा लगता ह, मरना कोई नहीं चाहता। अतएव साधक को चाहिए कि यह जीवों के जीने में बाधक न हो और मरने में साधक न हो। यही अहिंसा का सार तत्त्व ह। भगवान के इस वाक्य को दृष्टि में रखते हुए 'असयत जीव का जीना चाहना राग ह' इस वाक्य की व्याख्या करनी चाहिए 'असंयत जीव का जीना चाहना' इसका तात्पर्य क्या लिया जाय? भगवान महावीर ने अहिंसा का जो उपदेश दिया ह उसके मूल में कौन सी भावना थी? उत्तर यही देना होगा कि सभी जीव जीना चाहते ह अतएव उन्हें मारने का हमारा अधिकार नहीं है किन्तु हमें ऐसा जीवन बनाना चाहिए जिससे किसी भी जीव की हत्या न हो या कम से कम हो। किसी की हत्या से निवृत्त होना ही उनके जीवन की इच्छा का फल ह या दूसरे रूप में यह भी कह सकते हैं कि संवरमय जीवन तब ही संभव ह जब हमें यह भान हो कि संसार के जीव जीना चाहते हैं, हमें उनकी हत्या से बचना चाहिए।

अब इस भावना को राग का नाम दिया जा सकता ह या नहीं? यह एक प्रश्न ह। दूसरा मौलिक प्रश्न जो खडा होता ह वह यह ह कि किसी भी जीव की हत्या के बिना जीवन निर्वाह संभव ह या नहीं? इस मौलिक प्रश्न का उत्तर यही दिया गया ह कि अयोगी ही जीव की हत्या से बच सकता है अर्थात् जिसने अपने मन-वचन-काय के सभी व्यापारों को

बद कर लिया ह यही जीवों की हत्या से बच सकता ह, तो क्या हत्या और हिंसा का अनिवाय संबध ह ? नहीं, आचार्यों ने कह दिया ह कि हत्या होने पर जीव हिंसक होता ही ह—यह नियम नहीं है किन्तु अपने प्रमादी जीवन के कारण हिंसक होता ह। जीव का मरना न मरना हिंसा अर्थात पाप का कारण नहीं, किन्तु जीवन का प्रमाद ही पाप ह, हिंसा ह, हिंसा का कारण भी हैं। तात्पय यह ह कि मनुष्य की भावना मुख्य ह, बाह्य हत्या नगण्य ह।

अब हम मुख्य प्रश्न का विचार करें कि क्या जीवों के जीवन की इच्छा करना राग ह ? आचार्यश्री के उक्त वाक्य में 'असयत जीव' ऐसा कहा गया है इस पर से इतना तो अवश्य फलित कर ही लेना चाहिए कि सयत जीव के जीवन की इच्छा करना राग नहीं ह। अन्यथा जीव शब्द के साथ असयत यह विशेषण व्यथ हो जाता ह। अतएव अब यही विचारणीय रह जाता ह—क्या असयत जीव का जीना चाहना सचमुच राग ह ? इसका उत्तर इस तरह से दिया जा सकता ह। किसी का जीना हम चाहते ह तब क्या हम यह भी चाहते ह कि वह जीकर बुरे कम भी करता रहे ? यदि असयत जीव का जीना चाहते समय हमारी यह भी भावना हो कि वह जी करके सदव पाप करता रहे, हत्या करता रहे तब तो निश्चित रूप से हम रागी ही नहीं, परम रागी कहे जाएँगे।

डाकुओं का गिरोह एक दूसरे साथी के जीने की जो इच्छा करता ह उसमें हम इस राग का दशन अवश्य करते ह। किन्तु एक मुनि या गृहस्थ जब सभी संयत, असयत जीवों के जीवन की चाहना करता ह तब उसमें राग का आरोपण करना ठीक नहीं होता। उस भावना का प्रेरक तत्त्व केवल यही भावना ह कि जसे जीवन मुझे प्रिय ह, सभी को प्रिय ह, मृत्यु जसे मुझे पसद नहीं, संसार के समस्त जीवो को भी पसद नहीं। अतएव जसे म जीना चाहता हू वे सभी जिएँ—इस भावना के पीछे अन्य जीवो के पापकर्मों का समथन हुआ ह, इतनी दूर तक जाने की आवश्यकता ही नहीं ह। असंयत जीव के जीने की इच्छा को असयत जीव के पापों के समथन तक ले जाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। क्योंकि ऐसा करने पर तो ससार में से अहिंसा और मैत्री भावना के विकास की गुजाइश ही नहीं रहेगी। सामान्य तौर से डाकुओं जस पापकारी पेशेवर लोगों की अपने साथियों को छोड कर जो जीने के विषय में भावना होती ह उसमें भी पाप का समथन ही ह, यह नहीं कहा जा सकता। तो फिर दूसरे गहस्थों और त्यागियों में यदि ऐसी भावना होती ह तो उसे एकान्त राग कसे कहा जाय ?

जीना चाहना राग और तरना चाहना मार्ग है—यह कहना शब्दों में तो भिन्नार्थक प्रतीत होता है किन्तु वस्तुतः इन दोनों बातों में एक का स्पष्टीकरण ही दूसरे में होता है, ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि जब हमारी भावना यह होती है कि असंयत जीव जिए उसका मतलब यह कभी नहीं होता कि वह जीवित रह कर और पतित बने। हमारी भावना यही होती है कि वह जी कर जीवन को उन्नत बनावे।

हमारे चाहने न चाहने पर अन्य जीव का जीवन या मृत्यु एकान्त रूप से निर्भर नहीं होती। किन्तु हमारी भावना का असर हमारी आत्मा के ऊपर तो होता ही है। भला ऐसा कौन होगा जो दूसरों के जीवन की भावना कर अपना अहित करे? अतएव यही मानना उचित है कि अन्य जीवों के जीने की इच्छा कहो अथवा अन्य जीवों के तरने की इच्छा कहो उसमें तात्त्विक भेद अवश्य है, किन्तु भावना का भेद होता है ऐसा एकान्त नहीं कहा जा सकता। अतएव जीने की भावना करना राग का कारण है ऐसा एकान्त नहीं है।

मृत्यु और जीना—इनमें सामान्यतः विरोध माना जाता है। अतएव कहने में यह अच्छा लगता है कि किसी की मृत्यु की चाहना यदि द्वेष है तो जीने की चाहना राग है। किन्तु कभी कभी जीने की अपेक्षा मृत्यु ही जीव को अधिक प्यारी लगती है। ऐसे समय मृत्यु की चाहना द्वेष और जीने की चाहना राग कैसे कहा जायगा? एक और दृष्टि से सोचें तो मृत्यु ही जीवनप्रद है अतएव मृत्यु का चाहना द्वेष ही है—ऐसा एकान्त कैसे होगा? जीवन और मृत्यु—ये दो भाव एकान्त अच्छे ही हैं या बुरे ही हैं, यह नहीं कह सकते। असंयत जीव का जीवन और मृत्यु दोनों बुरे हैं—यह भी नहीं कहा जा सकता। उसका तरना भी तो तब ही संभव होता है जब उसका जीवन टिके। असंयत जीव के तरने की चाहना में उसके जीने की चाहना छिपी होने पर भी जैसे तरने की भावना को मार्ग का नाम दिया गया, वैसे ही जीने की भावना में यदि तरने की भावना छिपी हो तो उसे भी एकान्त राग का नाम नहीं किन्तु मार्ग का नाम देना आवश्यक हो जाता है।

आचार्य जी के उक्त वक्तव्य को मैंने अपनी दृष्टि से यह विवेचन किया है। उसमें कहाँ तक स्वयं उनको भी मान्य है, यह मैं नहीं कह सकता।

एफ-३ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

मानव उठ सम्हल !

गोधूलि की वेला थी।
वेठा था बरामदे में।
भेद कर कर्णों को
आ रही थी बाहर से-
किसी के गाने की आवाज
मधुर मधुर
सरगम में बँधी हुई
आकर्षित हो उससे
स्थिर न रह सका
देखा क्या
युवक दो
माँग रहे पैसे कुछ
लिए हुए हाथों में
ईश्वर की तस्वीरें
धूप दीप उन पर था
जल रहा
घूम घूम
गा गाकर
पैसे ये माँग रहे
ईश्वर के नाम पर
देखकर दृश्य यह
काँप उठा मन मेरा
सोचने लगा कि आज
ईश्वर के नाम पर
जो कुछ भी हो नहीं
थोड़ा है
ताँबे के टुकड़ों के
लिए हैं घसीट लाए
ईश्वर को
गलियों में, कूचों में
और बाजारों में
मानव यह आज का
कितना है स्वार्थी

*　　*　　*

मानव उठ सम्हल और
छुट्टी दे ईश्वर को
जीवन का लक्ष्य बना
सेवा गरीबों की
दीनों की, हीनों की
तन, मन, धन, जीवन से !
फिर न तुझे घूमना
पड़ेगा जगह जगह
पात्र तेरा आप ही
भर जाएगा
अनोखी मुद्राओं से।

जन स्थानक
लोहामंडी, आगरा

—मुनि उमेश

(७)

'ट्रस्टीशिप'

यहाँ सहज ही हमारा ध्यान 'ट्रस्टीशिप' के इस सुझाव की ओर जाता है कि वैयक्तिक सम्पत्ति को नष्ट करना न आवश्यक है और न वांछनीय ही है, इतना ही पर्याप्त और उचित है कि सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति का 'ट्रस्टी' बन जाय, अपनी सम्पत्ति को समाज की ही सम्पत्ति समझे और समाज के हित-साधन में उसे लगाए।

'ट्रस्टीशिप' में आस्था रखने वाले कुछ इस तरह सोचते हैं—"संग्रह करना 'स्व' और 'पर' दोनों के लाभ के लिए हो सकता है। जो 'स्व' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे अहिंसा धर्म की पात्रता सम्पादन नहीं कर सकते। जो 'पर' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे ही 'ट्रस्टी' हैं। वे संग्रह रखते हुए भी अहिंसावादी हैं क्योंकि उनके संग्रह में राग नहीं है।"[1]

यहाँ 'ट्रस्टीशिप' शब्द को एक विशेष अर्थ में ग्रहण किया गया है। वस्तुतः 'ट्रस्टीशिप' वही है जहाँ ट्रस्टी ट्रस्ट का प्रबन्धकर्ता मात्र है मालिक नहीं है, तथा जहाँ ट्रस्टी ठीक तरह अपने कर्तव्य का पालन न करे तो मालिक को ट्रस्टी बदलने का अधिकार है, तथा उस अधिकार का उपयोग करने की शक्ति भी उसे प्राप्त है। पर 'ट्रस्टीशिप' की जिस मान्यता की ओर हमने संकेत किया है, वहाँ 'ट्रस्टी' स्वयं मालिक है, और मालिक की हैसियत से उसने स्वयं ही अपने आप को ट्रस्टी नियुक्त किया है। समाज के स्वामित्व की बात कहने भर की है क्योंकि उसका आधार समाज का कोई नियम, अथवा राज्य का कोई विधि विधान या कानून नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की जो स्वयं ही मालिक व ट्रस्टी दोनों है, इच्छा व रुचि ही है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने एक स्थल पर लिखा है—"ट्रस्टी बनने की कल्पना में व्यक्तिगत स्वामित्व का रहना अनिवार्य नहीं है, रहा भी तो नाममात्र का, जिस से 'ट्रस्टी'

---

1 'बापू' लेखक—श्री घनश्यामदास बिड़ला

कभी-कभी अपने मन में खुश हो लिया करे कि म मालिक भी हू।"[१] कहने की जरूरत नहीं ह कि कभी-कभी खुश होने के लिए नाममात्र की मालिकी की यह बात हँसी ही ला सकती ह। जो मालिकी ही सारी बुराइयों की जड है और जो मालिक को सच्चा ट्रस्टी बनने ही नहीं दे सकती ह, उसे लेकर इतनी हल्की बात कहना विषय की गंभीरता की अवहेलना करना ह, एक तरह की खिलवाड करना ह। और भी एक स्थल पर आप ने लिखा ह—"यदि मालिकाना हक़ रहा भी तो वह नाममात्र को रहेगा, स्पिरिट(Spirit) तो ट्रस्टी की ही रह सकती ह।"[२] स्पष्टतया यहाँ इस मनोवज्ञानिक सत्य की पूण अवहेलना है कि जहाँ स्वामित्व की अनुभूति ह, वहाँ ट्रस्टीशिप की स्पिरिट टिक ही नहीं सकती ह। दोनों में कोई सामजस्य ही नहीं ह। और यह कहना कि 'ट्रस्टीशिप' की कल्पना में व्यक्तिगत स्वामित्व अनिवाय नहीं ह, क्या अथ रखता ह? स्वामित्व के लिए तभी तो स्थान न रहेगा जब मालिक स्वय अपनी सम्पत्ति पर से अपना अधिकार हटा ले या उसकी मालिकी समाज को सौंप दे। यहाँ तो 'ट्रस्टीशिप' के मूल में ही स्वामित्व पडा ह। तथा कथित टस्टी की इच्छा या मरजी ही यहाँ सब कुछ ह। वह चाहे तो 'ट्रस्टी' ह, न चाहे तो कुछ नहीं ह। गरज यह ह कि 'ट्रस्टीशिप' का मूल भाव व अभिप्राय यहाँ ह ही नहीं। फिर भी क्योंकि इस विचारधारा को 'ट्रस्टी शिप' की सज्ञा दी गई ह, शिष्टता के नाते हमने इस नामकरण का सम्मान किया ह और करेंगे।

सबसे पहले जो बात यहाँ खटकती ह वह यह ह कि अर्थ व्यवस्था के प्रश्न को मौलिक रूप से यहाँ ग्रहण नहीं किया गया ह। यहाँ पृष्ठभूमि में ही अथ वषम्य है। अब तक पूजीवादी व्यवस्था के अतर्गत जो आर्थिक शोपण होता आया ह, उसके परिणाम को आधारभूत मानकर चलने की ही दृष्टि यहाँ ह। शताब्दियों बल्कि सहस्राब्दियों से होते रहने वाले अन्याय के प्रतिकार का प्रश्न आमूल परिवतन की प्रेरणा देने के लिए यहाँ नहीं ह। एसे समाज का ही चित्र यहाँ सामने ह जिसमें थोडे-से ही व्यक्ति धनवान ह। 'धनवान' से अभिप्राय उस व्यक्ति से ह जिसके पास आवश्यकता से अधिक धन है। 'ट्रस्टीशिप' ऐसे ही अतिरिक्त धन की अपेक्षा रखता ह।

स्पष्ट ह कि यहाँ व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह आवश्यकता

---

[१] "गाधीवाद समाजवाद"—पष्ठ ६२

[२] 'गाधीवाद समाजवाद'—पष्ठ ५९

से अधिक सम्पत्ति का उपार्जन व संग्रह करे और उस पर अपना अधिकार जमाए रखे। इस संग्रह व स्वामित्व पर कोई अंकुश भी यहाँ नहीं है। अंकुश अतिरिक्त सम्पत्ति के उपयोग या भोगोपभोग मात्र पर है, अतिरिक्त सम्पत्ति की वृद्धि पर भी नहीं है। और उपभोग या भोगोपभोग का अंकुश भी स्वेच्छित होने से उसका कोई ठोस आधार नहीं है।

ट्रस्टीशिप बनाम अपरिग्रह

इस ट्रस्टीशिप की संगति जब अपरिग्रह के साथ बिठाई जाती है, तब आश्चर्य होता है। जहाँ तक संग्रहमात्र का प्रश्न है, निश्चय ही अपरिग्रह से यह बेमेल नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम विवेचन कर चुके हैं, अपरिग्रह पदार्थ का नहीं परिग्रह का अग्रहण है। अतः संग्रहपक्ष की अपेक्षा से अपरिग्रह से ट्रस्टीशिप की टक्कर होने की आशंका नहीं है। पर जहाँ तक निजी सत्ता या विशेष स्वामित्व का प्रश्न है, किसी भी तरह अपरिग्रह से न उसका सामंजस्य है, न हो सकता है। जो संग्रहकर्ता के निजी स्वामित्व से गुथा है, वह आसक्ति व अहंकार से सना है और निश्चय ही वहाँ ममत्व है, मूर्च्छा है, परिग्रह है। 'पर' के लिए संग्रह लेकर बठने की बात में कोई सार नहीं है जब कि यह ले बैठने वाला संगृहीत का एकछत्र स्वामी है। इस तरह स्पष्ट है कि अपरिग्रह की कसौटी पर खरी उतरने योग्य क्षमता 'ट्रस्टीशिप' में नहीं है।

एक बात और है। ट्रस्टीशिप दान व त्याग की नींव पर स्थिर है, किन्तु दूसरी ओर, जैसी कि हम पहले विस्तारपूर्वक व्याख्या कर चुके हैं, अपरिग्रह त्यागमूलक नहीं अग्रहणमूलक है[1]। त्याग या दान का निश्चय ही अपना एक काला बाजू है, अतः अग्रहण से यह भिन्न है। ट्रस्टीशिप अतिरिक्त धन के स्वामित्व की नींव पर खड़ा है, जब कि अपरिग्रह में इसके लिए कोई स्थान ही नहीं है। इस तरह अपरिग्रह की साधना एक मस्त फकीर ही कर सकता है, जब कि 'ट्रस्टीशिप' का भार एक धनवान ही उठा सकता है। इस तरह सभी पहलुओं से देखते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपरिग्रह एक ऊँची-से ऊँची साधना है और 'ट्रस्टीशिप'

---

[1] यहाँ 'ग्रहण' से संग्रहमात्र नहीं वह संग्रह विशेष ही अभिप्रेत है, जिससे संग्रहकर्ता का निजी व विशेष स्वामित्व जुड़ा हुआ है। इस अपेक्षा से अग्रहण में संग्रह के लिए स्थान है; स्वामित्व के लिए नहीं।

उससे नीचे है, बहुत नीचे है। दोनों में कोई सामंजस्य नहीं है। पहला आदेश है और दूसरा कुछ है तो अधिक से अधिक 'मजबूरी' का इलाज है।

मजबूरी का इलाज

सच तो यह है कि 'ट्रस्टीशिप' के आचार्यों ने भी इसे मजबूरी का इलाज माना है। स्वर्गीय श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रुवाला की यह स्वीकारोक्ति स्पष्ट है—"गांधी जी के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी मनुष्य के पास किसी भी तरह का परिग्रह न होना चाहिए। सम्पत्ति के व्यक्तिगत परिग्रह को वे सह लेते है, इसका यह कारण नहीं है कि उन्हें सम्पत्ति या परिग्रह से मोह है, अथवा यह कि मनुष्य जाति के उत्कर्ष के लिए वे सम्पत्ति के संग्रह को आवश्यक समझते है, बल्कि कारण यह है कि व्यक्तिगत परिग्रह बढ़ाने और जुटाने की प्रथा को मिटाने का कोई सत्याग्रही मार्ग उन्हें नहीं मिला है[1]।" इसी तरह श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने भी कहा है—"समाजवादी तो कहते ही है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार किसी को न होना चाहिए। इधर गांधी जी भी अपरिग्रह के पुजारी है। वे व्यक्तिगत सम्पत्ति तो ठीक, आवश्यक वस्तुओं के संग्रह को भी चोरी मानते हैं। तो दोनों इस बात पर तो सहमत है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहे पर यदि लोग हमारे कहने से या उपदेश से न छोड़ें तो? तब समाजवादी कहेगा कि कानून बना दो, जिससे ऐसा अधिकार किसी को न रहे परन्तु प्रश्न तो यह है कि गांधीवादी ऐसे अवसर पर क्या सलाह देगा? मैं समझता हूँ, समय आने पर गांधीवाद कोई अहिंसक उपाय अवश्य ढूंढ लेगा[2]।" इन उद्धरणों से जो भाव प्रतिभासित होता है, वह यही है कि आर्थिक समानता के आदर्श तक पहुँचने का मार्ग सामने न होने के कारण, मजबूरी की हालत में ट्रस्टीशिप तक ही संतोष कर लिया गया है।

सहज दोष

यूँ भी 'ट्रस्टीशिप' की विचारधारा में अनेक असंगतियाँ व विशृंखलाएँ है। इसी कारण उसे लेकर अनेक प्रश्न खड़े होते है जैसे, व्यक्ति की निजी आवश्यकता का मापदण्ड कौन और किस तरह स्थिर करे? क्या व्यक्ति को ही स्वयं निर्णय का अधिकार हो? यदि हाँ, तो वहाँ जो सहज उच्छृंखलता होना स्वाभाविक है, उसकी रोक-थाम कैसे हो? फिर पर हित या जग हित का प्रश्न भी टेढ़ा है। व्यक्ति को स्वयं जिस कार्य में समाज या जगत का

[1] गांधीवाद समाजवाद—पृष्ठ १६　[2] गांधीवाद समाजवाद—पृष्ठ ५१–५२

कल्याण दिखे, उसी में अपने धन का उपयोग करे तो कसे माना जाय हो कि वहाँ धन का सदुपयाग ही होगा। यहाँ हित निकट है तो अहित भी दूर नहीं है। एक व्यक्ति को काय विशेष में जन हित दिखे, पर उससे हित होना तो दूर, सवनाश भी हो सकता ह। एक व्यक्ति को एक काय में कल्याण-साधना दिखे, दूसरे को उसमें घोर अकल्याण दिख सकता ह। ऐसी हालत में हित का आश्वासन कसे हो, अहित की आशका कसे मिटे? स्पष्टत इसके लिए सदभावना ही पर्याप्त नहीं ह। चाहने पर भी व्यक्ति इस विषय में असहाय है, क्योंकि वह अपनी दृष्टि से ही तो देख सकेगा, और जब कि कुजी व्यक्ति विशेष के ही हाथों में ह, तो दूसरे भी असहाय ही ह।

कहा जाता है कि ट्रस्टी अपनी इच्छा से नहीं, समाज की अनुमति से ही अपने अतिरिक्त धन का उपभोग करेगा। पर यह कहने भर की बात ह जिसका व्यावहारिक मूल्य कुछ नहीं है। स्वामित्व व्यक्ति विशेष का हो तब दूसरों की अनुमति का क्या अथ ह? जिसे अधिकार ही नहीं ह, वह अनुमति देने वाला कौन? अनुमति तभी अनुमति है, जब मर्यादा के उल्लघन में रोकने की सामथ्य भी उसके पीछे हो। जहाँ ऐसी कोई शक्ति नहीं है, वहाँ परानुमति स्वेच्छा का दूसरा नाममात्र ह। इस तथ्य को स्वर्गीय श्री किशोरलाल घनश्याम मशुवाला मान्य भी करते ह, जब वे कहते ह—"मनुष्य के सुख-पूर्वक निर्वाह के लिए जितना आवश्यक ह, उसे छोडकर शेष सारे अधिकार का उपभोग दूसरों की अनमति से ही किया जा सकता ह। फिर भले ही वह अनुमति निर्बलतावश दी गई हो या अज्ञानवश[1]"। यद्यपि आगे चलकर मशुवाला जी ने जनता को बलवान और सावधान बनने की आवश्यकता बताई ह, पर साथ ही जब वे कहते ह कि जनता में उत्पन्न किया जाने वाला बल अहिंसामय ही होना चाहिए और फिर तुरन्त यह कह कर कि "इस विषय की इससे अधिक चर्चा आज नहीं की जा सकती, क्योंकि गांधी जी और उनके विचार से सहमत उनके साथी इसे प्रत्यक्ष आचरण में लाने का प्रयोग अभी तो कर ही रहे ह[1]," सारे प्रश्न को ही टाल देते ह। तब यह स्पष्ट हो जाता ह कि समाजानुमति की बात में कोई प्राण नहीं है। निर्बलतावश या अज्ञानवश दी गई अनुमति को अनुमति कहना, अनुमति के भावपक्ष व अभिप्राय का मखौल उड़ाना ह। अनुमति स्वेच्छित व स्वतन्त्र न हो, तो उसका क्या मूल्य है?

—क्रमश

1. गांधीवाद समाजवाद—पृष्ठ १९

पितृहत्या का पुण्य

जयभिक्खु

[गतांक से आगे]

(३)

सध्या की अरुण किरणें पाटलिपुत्र की ऊची ऊँची मीनारों का आलिंगन कर रही थीं। मन्दिरों में घटे बज रहे थे। राजहाथी जलाशयों में स्नान कर शुण्ड में पद्म लिए हुए लौट रहे थे।

पाटलिपुत्र सुन्दर नगर था। उसकी शोभा भी अनुपम थी। विशेषरूप से यदि कोई प्रवासी वारांगनाओं की वीथिकाओं में पहुँच जाता तो उसे अवश्य ही सदेह स्वर्ग में पहुँचने का भ्रम हो जाता। अप्सराओं के रूपसौन्दर्य को तुच्छ करने वाली वारागनाएँ, सुरामृत को स्वादहीन बनाने वाले सुरागृह, श्रेयोद्यान को शोभाहीन बनाने वाली फलफूल युक्त वाटिकाएँ! पेय और खाद्य, विश्रान्तिगृह और नृत्यालय, किसी का भी तो अभाव नहीं।

जगत की सौन्दय-सम्राज्ञियां इसी नगर में आकर बसी थीं। महागणिका कोशा तो सुन्दरता में अद्वितीय थी। उसे देख कर कोई यह नहीं सोच सकता था कि यह मानव-वंश की होगी। वह थी साक्षात आकाश विद्युत्, आशा की साक्षात् लतिका, पुष्पों की साक्षात् महारानी, कवि की साक्षात कविता! उसके स्पर्श में मादकता थी, स्वर में मोहिनी थी, दृष्टि में आकर्षण था। उसका सम्मान एक राजा से भी अधिक था, शक्ति सेना से भी बढ़कर थी। हजारों तलवारों को रोक देने वाला उसका हास्य था, हजारों हृदयों को घायल करने वाली उसकी दृष्टि थी। उसके अरुण कपोल के एक तिल पर कविता करते करते कवि थक चुके थे, मुक्तामणि उतारते उतारते धनवान लोग हार चुके थे। उसके पादचुम्बन के लिए विविध देश के नर-नारी आते और कई दिनों तक उसके द्वार पर पड़े रहते।

इस सौन्दयदेवी के दर्शन किसी अमूल्य क्षण में ही हो पाते।

सौन्दर्य की इस देवी ने महामंत्री शकटाल के पुत्रधन को हर लिया था। शील और संयम की मूर्ति स्थूलभद्र कुल, धन, मान और मर्यादा छोड़कर उसके द्वार पर जाकर बैठा था। महामंत्री ने उसे नृत्य, नाट्य, काव्य और साहित्य का विद्वान् बनाया था। विद्वान को क्या समरांगण की याद आसकती है? कल्पनाविहार से अवकाश मिलने पर ही तो संसार की अन्य बातें सूझती हैं। स्थूलभद्र और कोशा अभिन्न थे। वे जल और मछली की तरह रहते थे। यहाँ तक कि महासमर्थ मन्त्रीश्वर भी अलग नहीं कर सकते थे।

महामन्त्री का कर्तव्यपरायण हृदय शान्त न रहता। वे सोचते कि क्या मानव-जीवन की इतिश्री केवल रमणी के भुजपाश में बँधे रहने में ही है? जिन लोगों के ऋणों की गठरी सिर पर लेकर मानव पैदा हुआ उन माता, पिता, भूमि, राष्ट्र और देवता के ऋणों को कब चुकाएगा? सात पुत्रियाँ और दो पुत्र छोड़ कर मरने वाली अपनी प्रियपत्नी के ही कारण, महामात्य शान्त रहते और सब कुछ सह लेते। किसी समय कहते—"क्या करूँ? जाने दो! बहुत प्यार से पालन पोषण हुआ है।"

नित्य सायंकाल प्रमोदभवन के आकाशदीप पर लगी हुई दृष्टि असीम करुणा का भार ढोकर वापिस लौटती। आज की दृष्टि स्थिर और स्तब्ध थी। कुछ समय बाद वे बोले—"चाहे जैसे महादीपक जलाओ, उसके नीचे तो अन्धकार ही रहेगा।"

फिर कुछ समय तक विचार सागर में गोते लगाते रहे। आज का भाग्य-चक्र कुछ और ही था। आज गंगा विपरीत दिशा में प्रवाहित हो रही थी।

वररुचि की इस घटना के कारण दिन प्रतिदिन असंतोष बढ़ता जा रहा था। विशुद्ध पांडित्य को कलंकित करने वाले महामात्य पर राजकर्मचारियों का रोष तीव्रतर होता जा रहा था। अरे, आँखों के सामने ऐसा अन्याय कैसे देखा जा सकता है?

कैसा भयंकर द्वेष!

षड्यन्त्रकारी अपने यंत्रों को काम में लेने लगे। अच्छे अच्छे, राजा तक इन षड्यंत्रों में फँस जाते हैं, फिर एक मंत्री का क्या कहना! राजा के कानों में नई नई तरंगें बहने लगीं। इन तरंगों ने धीरे धीरे ऐसा प्रभाव जमाया कि महाराजा नंद का मन भी विचलित होगया। मिथ्या धारणा का विष धीरे धीरे बढ़ने लगा। दोष देखने वाले को दोष मिल ही जाते हैं।

सुधांशु चंद्र में भी कलङ्क मिल जाता है तो महामंत्री के विषय में क्या कहा जाय ? । महाराज नंद ने यह धारणा बना ली कि महामंत्री शकटाल साम्राज्य का स्रष्टा है, शक्तिशाली है—क्यों न कल साम्राज्य का स्वामी बनने की चेष्टा करे ! माया के सामने तो बडे बडे मुनि भी नहीं टिक सकते ।

विचारवान लोगों ने राजा को यही सलाह दी । रोग और शत्रु को उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिए, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है ।

समरांगण का महत्व प्रकट करने के लिए अपने पुत्र श्रीयक के विवाह प्रसंग पर महामंत्री ने अच्छे अच्छे शस्त्र राजा को भेंट किए । इसका भी विपरीत अर्थ निकाला गया । —महामंत्री नये नये शस्त्रों की शोध किसलिए करते हैं ?

श्रावण के अन्धे को हरा ही हरा दिखाई देता है । शस्त्र की तैयारी समरांगण के लिए ही होती है, पुत्र के विवाह के लिए नहीं । आदर्शवादी का आदर्श इतना गहरा था कि वहाँ तक कोई नहीं पहुँच सकता था ।

बात यहाँ तक बढ़ी की महाराज नंद स्वयं अपने हाथों से महामात्य शकटाल का वध करने के लिए तैयार हो गए ।

इतना ही होता तब भी कोई बात न थी । बात इससे भी आगे बढ़ी—महामात्य के साथ ही उसके कुल के सभी सदस्यों के वध की योजना तैयार की गई । सर्प को मार कर सर्प के बच्चों को जीवित रखना कितनी भारी मूर्खता है !

बात बढ़ती ही गई । जिस समय चारों ओर से एक भयंकर आँधी आ रही थी उस समय आर्यावर्त का एक महान् राजतंत्र आंतरिक कलह में मग्न था । महामंत्री सोचने लगे—अरे, जो लता अपने ही हाथों से लगाई है, उस पर यदि कड़वे फल लगें तो भी बिना आनाकानी उन्हें खाना ही ठीक है ।

महामात्य थोडी देर तक गवाक्ष पर हाथ रख कर विचार मग्न हो खड़े रहे । कुछ क्षण पश्चात् दृढ़ निश्चय की रेखाएँ मुख पर अंकित हो गई । उन्होंने द्वारपाल को आवाज दी—"जा, भद्र को बुला ला !"

द्वारपाल सहम गया । ज्येष्ठपुत्र स्थूलभद्र के गृहत्याग के बाद किसी दिन महामंत्री के मुख से स्थूलभद्र का नाम नहीं सुना और आज अचानक यह क्यों ?

"महाराज ! कौन ? श्रीयक "

"नहीं, स्थूलभद्र !" महामात्य ने ये शब्द इतनी तेजी से कहे कि सुनकर द्वारपाल दौड़ा। वह जितनी शीघ्रता से गया उतनी ही शीघ्रता से वापिस लौटा। उसने नम्रवदन हो कहना प्रारम्भ किया—स्थूलभद्र ने कहा है कि मैं पिता जी को मुख दिखलाने योग्य नहीं रहा। मैं कदापि मुँह नहीं दिखाऊँगा। कह देना कि स्थूलभद्र जीवित होते हुए भी मर गया है।

"अर्थात आने से इन्कार किया ?"

"जी हाँ !"

महामात्य क्षणभर चुप रहे और फिर तुरन्त बोले—"जा, श्रीयक को बुला ला !"

(४)

शीतकाल की रात्रि का चन्द्रमा सुधा के बदले हिम की वर्षा कर रहा था। महामात्य अपने विरामासन पर शान्तचित्त से बैठे थे।

कनिष्ठ पुत्र श्रीयक धीरे से कमरे में प्रविष्ट हुआ। पूरे बीस वर्ष भी नहीं हुए थे किन्तु तरुणावस्था पहुँच चुकी थी। छलकता हुआ यौवन, दमकता हुआ वदन ! सुकोमलता और शौर्य की रेखाएँ परस्पर मिल गई थीं। विशाल ढाल के समान छाती, आजानुबाहु और मुख पर माया-ममता के चिह्न !

विधुर पिता पुत्र में मृतपत्नी के दर्शन करने लगा। आज्ञाप्राप्त पुत्र चरणस्पर्श के लिए नीचे झुका। पिता ने प्रेम से आलिंगन किया। दोनों मौन थे। ममताभरे हृदय वार्तालाप कर रहे थे।

कुछ समय बाद पिता ने पुत्र को पास में बैठाते हुए कहा—"श्रीयक ! क्या यह संसार का ध्रुव नियम है कि दीपक के नीचे अँधेरा रहे ?"

"पिताजी ! आपकी वाणी का मर्म समझ में नहीं आता ! किन्तु क्या एक दीपक दूसरे अनन्त दीपकों को उत्पन्न नहीं करता ? कल्पक मंत्री के कुल में तो दीपक से दीपक ही उत्पन्न हुआ है।"

"वत्स ! प्रगतिशील प्रजा पूर्वजों के उज्ज्वल कर्मों से प्रसन्न नहीं होती। वह हमेशा अपनी प्रगति को ही नापती रहती है। क्या पूर्वजों का पवित्र रक्त इस समय हमारे अन्दर प्रवाहित हो रहा है ? वह राजभक्ति,

वह अपण-भावना, लोक-कल्याण के लिए यह कायोतसग अभी उसी रूप में हम लोगो में ह ?"

"हाथ कंगन को आरसी क्या ? पिताजी ! महामंत्री शकटाल आज दृष्टान्त रूपसे आर्यावत्त में विख्यात है।"

"किन्तु महामंत्री शकटाल के बाद ?"

"बाद में हम ह। पिता जी ! एक बार आज्ञा दीजिए, आपके वशज जीवित सिर को धड से अलग कर देने में भी नहीं हिचकिचाते।" श्रीयक की आँखो में तेज समाता न था।

"बेटा ! केवल मरने में ही वीरता नहीं ह। संसार में हमेशा मृत्यु से या अपघात से न जाने कितने लोग मरते ह। सिर काट देने में ही बहादुरी नहीं ह। समय आने पर कतव्य के लिए स्वधम के लिए आप्तजनों का वध कर, माया-ममता को अपने हाथ से समाप्त कर, मरने की इच्छा रखते हुए जीवित रहकर साम्राज्य की–स्वधम की अविरत रूप से सेवा करना, इसी का नाम सच्ची स्वामिभक्ति ह।

"पिताजी ! आप क्या कहना चाहते ह ? स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?" पिता की रहस्यमयी भाषा से पुत्र व्याकुल हो उठा।

"वत्स ! यह बात में विस्तार से तुझे समझाना चाहता हूँ और प्रत्यक्ष बोधपाठ कल ही सिखाना चाहता हूँ। कल ही तुझे स्वयं अपने हाथ से पितृहत्या करनी होगी—पितहत्या का पुण्य प्राप्त करना होगा।"

"मेरे हाथ से पितृहत्या और फिर पुण्य—इन दोनों का संबन्ध ? पिताजी ! इस महल की मीनारें कम्पित तो नहीं हो रही ह ?" श्रीयक का सारा शरीर कांप रहा था।

"पुत्र ! पुण्य और पाप को पहचानना बहुत कठिन है। कई बार ससार में पाप भी पुण्यवेष पहनकर फिरता रहता ह। एक वधिक हजारो पशुओं को मारता ह, एक योद्धा समरांगण में सकडो निर्दोष मानवों की हत्या करता ह–पहला पाप कहलाता ह और दूसरा पुण्य !"

'पिताजी ! मुझ व्याकुल न कीजिए !"

"अच्छा, सक्षेप में मेरी बात सुन ले ! मगध के जिस सिंहासन की दृढ़ता के लिए हमने और हमारे पूर्वजों ने सवदा बलिदान किया ह वह आज

अविश्वास के कंपन से अस्थिर हो गया है। महाराजा नंद के आसपास षड्यंत्र का जाल फैल गया है, संशय का साम्राज्य हो गया है। वेदपाठी वररुचि आज प्रतिशोध के लिए तैयार बैठा है।"

"इस षडयंत्र को कल नष्ट कर दूंगा। मगध का महासैन्य आज भी अपने महामंत्री की एक आवाज पर मर मिटने के लिए तैयार है। नन्दराज नहीं समझेगा तो कल वह सिंहासन पर नहीं रहेगा।"

"अर्थात ? आन्तरिक कलह की अग्नि में मैं भी घी डालने का काम करूँ ? जिसकी हमने रचना की उसे हम ही छिन्न भिन्न कर डालें ? क्या सेवक धर्म को डुबो देना है ? जीवन तो आज है और कल नहीं, मैं अपना धर्म कैसे छोड़ूं ?

"तो क्या करें ?"

"यही समझाता हूँ। कल सभा के बीच में महाराज के अंगरक्षक की हैसियत से मेरा वध करना ! मेरी हत्या होगी किन्तु यह हत्या इस कलह को शान्त कर देगी। मेरे शरीर के रक्तबिन्दु महाराज की आँखों का भ्रम पटल दूर कर देंगे। मंत्रीपद नहीं रहेगा। प्रजा अयोग्य अधिकारियों के भयानक कष्टों से बच जायगी। ऐसा नहीं होने पर महाराज मुझे पद भ्रष्ट करेंगे, तुझे इस जगत् से उठा देंगे। मगध के शत्रु हितैषी बनेंगे ? वररुचि का बल बढ़ जायगा। साम्राज्य भयंकर विपत्ति में पड़ जायगा। शत्रु इस साम्राज्य को बात ही बात में खा देंगे।"

"साम्राज्य की रक्षा के लिए उसके सच्चे रक्षक की हत्या ? क्या यह पाप भार साम्राज्य को रसातल में नहीं पहुँचा देगा !"

"कल की बात कल आज की रक्षा का उपाय सोच, बेटा ! पिता की हत्या तेरे कर्तव्य धर्म की सच्ची कसौटी होगी। यह बलिदान इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। जनता यह सीखेगी कि कर्तव्य के सामने कौन पिता और कौन पुत्र !"

श्रीयक कुछ न बोला, वह विचारमग्न हो गया। महामंत्री कुछ समीप आए। पुत्र के जलते हुए कपाल पर अपना हाथ रखा, शान्तिमंत्र पढ़ा। पुत्र का हाथ उठाकर अपने कपाल पर रखा।

"कैसा लगता है ?"

"पिताजी, हिम सरीखा शीतल।"

"तो पुत्र! पिता के शरीर की ओर क्यों देखता है? पिता से भी बढ़ कर संसार में कोई वस्तु है और वह है तेरा देश, तेरा धर्म! मृत्यु के द्वार पर खड़े हुए पिता को मारने से सब कुछ बच सकता हो तो बचा ले। गुप्तचरों से पता चलता है कि सिकन्दर-महान् की सेना आ रही है। प्रलय के समान उसका वेग, आँधी के समान उसकी झपट! आन्तरिक क्लेशाग्नि में जलता हुआ मगध कैसे सामना करेगा? और वह एक पराजय अर्थात जिसकी कल्पना न की जा सके वैसा सत्यानाश!"

"किन्तु पिताजी! क्या बिना हत्या के यह संभव नहीं? इस विपत्ति-काल में तो आपकी विशेष आवश्यकता है।"

"बात ठीक है किन्तु कुछ मिथ्या धारणाएँ—जनापवाद केवल प्राणार्पण से ही दूर हो सकते हैं। संतप्त मानव को मृत्यु ही उज्ज्वल कर के देव बनाती है। संतान को जन्म देने के लिए माता मृत्यु की गोद में सोती है। सर्जन तो अर्पण से ही प्रकट होता है।"

"पिताजी! दूसरा कोई मार्ग नहीं? पितृहत्या! अरे, हृदय कम्पित हो उठता है। पिता का हत्यारा घोर नरक में भी शान्ति नहीं पा सकता। संसार मेरा मुख नहीं देखेगा। मैं किस दुर्गति से मरूँगा?"

"वत्स! कर्तव्यवीरों में तेरा उच्च स्थान होगा। आज स्वार्थी बनकर एक पिता को बचायगा तो कल सारा साम्राज्य लुट जायगा। जिसने इस शासन को बनाया उसी के हाथ से इसका सत्यानाश होगा!

"धन, सत्ता, यौवन और मद चारों एकत्र हुए हैं। मैं तो ध्वज को झुकता हुआ देखता हूँ।"

"इस ध्वज को ऊँचा रखने के लिए रक्त देना चाहता हूँ। कल संसार ऐसा न कहे कि महामात्य पुत्रवाला होकर भी निपूत था, कोई ऐसा न कहे कि शकटाल की संतति वासनोत्पन्न थी। मेरे पुत्रों का जन्म मेरे कर्तव्य शरीर से हुआ था, यही बात मुझे अच्छी लगती है। श्रीयक! पिता के क्षणभंगुर शरीर की ओर न देख! कर्तव्यदेह को चिरञ्जीव कर!"

श्रीयक कुछ न बोला।

शीतल रजनी का शीतल चन्द्र शीतल चन्द्रिका बरसा रहा था।

पुत्र ने पिता की गोद में अपना सिर रखा और अश्रु की अंजलि प्रदान की।

"तयार हो न बेटा ? हाथ काँपेगा तो नहीं ?"

"नहीं !"

पिता ने नम्र बालक को फिर गोद में लिया, अरे, नम्र बालक कल अनाथ बन जायगा ! किन्तु अब परवशता दिखाने का समय व्यतीत हो गया था।

पिता और पुत्र आगे की तयारी करने लगे।

चन्द्र आकाश में डूब गया !

(५)

ज्वालामुखी का सामना करने के लिए राजसभा एकत्र हुई। महाराज नद का हृदय अशान्त था। आज की सभा में भारी भूकम्प होगा, यही सब सोच रहे थे। सनिक तयार थे। अधिकारी अपने अपने कार्य में तत्पर थे।

अचानक महामंत्री आसन से उठे और कुछ कहने के लिए आगे बढ़े। अरे, यह क्या ! जसे निरभ्र आकाश में बिजली चमकती ह वसे ही महाराज की पीठ के पीछे खड़े हुए अंगरक्षक की तलवार चमकी और इसी चमक के साथ महामंत्री का मस्तक धड़ से अलग होगया।

राजसभा में हाहाकार मच गया। महाराज नंद ने उठ कर हत्यारे का हाथ पकड़ लिया किन्तु दूसरे ही क्षण आश्चय से चिल्ला उठे—"कौन ? श्रीयक ! तूने पितृहत्या की ?"

"पितृहत्या नहीं, कर्तव्य धम का पालन !" श्रीयक ने शान्ति से उत्तर दिया।

महाराज की आँखें बंद न होसकीं—"इसलिए मेरे मंत्री का खून !"

"हाँ प्रभो ! यह राजसभा और स्वयं महाराज मानते हैं कि शकटाल को साम्राज्य की इच्छा है। इस राजद्रोही शकटाल को मने अपने हाथ से अनन्त साम्राज्य दिया !"

"क्या कह रहा ह पितृहत्यारा ? श्रीयक ! महामत्री तो मगध की शोभा थे।" राजसभा बोल उठी।

"मेरे मत्री को राजद्रोही कहने वाला तू कौन ?"

"राष्ट्र के लिए सिर कटवाने वाले प्रतापी पिता का पुत्र ! राजद्रोह के अपवाद को दूर करने के लिए आज उन्होंने रक्त दिया। मगध की सीमा पर तो शत्रुओं का बिगुल बज रहा ह और मगध यहाँ पर आन्तरिक ज्वाला में जल रहा ह। इस अग्नि को बुझाने के लिए यह बलिदान चढ़ाया गया। दूसरा बलिदान मेरा ! तयार हूँ नंदराज !"

महाराज नंद सिंहासन पर न बठ सके। उन्होंने महामत्री का मस्तक हाथ में ले लिया, वेदना भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। कसी मृत्युजय मुखमुद्रा !

"ओ मेरे मत्रीराज !' पाषाणहृदय नदराज रो पडे।

राजसभा की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। एक स्वर्णथाल लाया गया और उसमें मस्तक रखा गया। महाराज नंद ने श्रीयक को पास बुलाकर अक से भेंटते हुए कहा—"श्रीयक ! मुझे सारी बात बता, तू रोता क्यों नहीं ? मै रोता हूँ, मेरी प्रजा रोती ह और तू नहीं रोता !"

"क्यों रोऊँ ? महाराज ! आज तो हँसने का दिन ह। अरे, पिताजी कितने सच्चे थे !" श्रीयक ने धीरे धीरे सब कुछ कह सुनाया।

महाराज ने मत्रिराज के सिर का मुकुट उतार कर श्रीयक के मस्तक पर रखते हुए कहा—"आह ! पितृहत्या का कसा पुण्य ! वातावरण कसा निर्मल होगया ह ! साहित्य के उपासक महाराज के मुख से मृतात्मा की प्रशंसा के रूप में अचानक एक काव्यपक्ति निकल पडी—

' धीरस्यापि शिरश्छेदे
धीरत्वं नव मुञ्चति।"

पटेल नो मढ
मादल्पुर, एलिसब्रिज
अहमदाबाद—६

समाप्त

पुत्र ने पिता की गोद में अपना सिर रखा और अश्रु की अंजलि प्रदान की।

"तैयार हो न बेटा ? हाथ कांपेगा तो नहीं ?"

"नहीं !"

पिता ने नम्र बालक को फिर गोद में लिया, अरे, नम्र बालक कल अनाथ बन जायगा ! किन्तु अब परवशता दिखाने का समय व्यतीत हो गया था।

पिता और पुत्र आगे की तयारी करने लगे।

चन्द्र आकाश में डूब गया !

(५)

ज्वालामुखी का सामना करने के लिए राजसभा एकत्र हुई। महाराज नंद का हृदय अशान्त था। आज की सभा में भारी भूकम्प होगा, यही सब सोच रहे थे। सैनिक तैयार थे। अधिकारी अपने अपने कार्य में तत्पर थे।

अचानक महामंत्री आसन से उठे और कुछ कहने के लिए आगे बढ़े। अरे, यह क्या ! जैसे निरभ्र आकाश में बिजली चमकती है बस ही महाराज की पीठ के पीछे खड़े हुए अंगरक्षक की तलवार चमकी और इसी चमक के साथ महामंत्री का मस्तक धड़ से अलग होगया।

राजसभा में हाहाकार मच गया। महाराज नंद ने उठ कर हत्यारे का हाथ पकड़ लिया किन्तु दूसरे ही क्षण आश्चर्य से चिल्ला उठे—"कौन ? श्रीयक ! तूने पितृहत्या की ?"

"पितृहत्या नहीं, कर्तव्य धर्म का पालन !" श्रीयक ने शान्ति से उत्तर दिया।

महाराज की आँखें बंद न होसकीं—"इसलिए मेरे मंत्री का खून !"

"हाँ प्रभो ! यह राजसभा और स्वयं महाराज मानते हैं कि शकटाल को साम्राज्य की इच्छा है। इस राजद्रोही शकटाल को मैंने अपने हाथ से अनन्त साम्राज्य दिया !"

"क्या कह रहा है पितृहत्यारा ? श्रीयक ! महामंत्री तो मगध की शोभा थे।" राजसभा बोल उठी।

उत्तर—इस भयावह स्थिति से मार्ग निकालना हो तो एक ही उपाय है और वह है—गुरु और पालक दोनो अपना व्यक्तिगत चरित्र सुधार कर अपने बालकों पर योग्य संस्कार डालें। बालकों में सदभिरुचि कसे पैदा हो, उनकी प्रवृत्ति समीचीन ज्ञान प्राप्ति की ओर कैसे हो तथा बुरी आदतों से वे सदैव कैसे अलिप्त रह सकें, इन बातों का बार बार विचार और मनन करके उनको इस दिशा में आवश्यक प्रयत्न भी करना चाहिए। बालकों के बाल-मन पर सुसंस्कारों के महत्व को बार बार अंकित करना चाहिए।

प्रश्न—केवल महत्वको समझाने से क्या प्रयोजन है? उनकी कृतियों में यह चीज कैसे उतरे?

उत्तर—बच्चों के कोमल अंतःकरण पर यदि सदविचारों का बार बार सिंचन हो तो अवश्य ही इष्ट परिणाम हुए बिना नहीं रहता। विचारों के ये ही अनेक संस्कार उनमें सरलता से सत्प्रवृत्तियां पैदा करते हैं। वैद्यक शास्त्र में रसायनादिक बनाने में उनपर जो सतत भावनाएँ होती है या संस्कार किए जाते हैं वैसे ही जीवन में विचारों के संस्कारों का महत्व है।

अपने शास्त्रों में प्रत्येक व्रत की स्थिरता और दृढ़ता के लिए अलग अलग 'भावनाएँ' कही गई हैं। (तत्स्थर्यार्थं भावना पंच पंच, तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ७) अमुक व्रत का निर्दोषरूप से पालन करना हो तो अपने मन पर अमुक प्रकार की भावनाओं का और विचारों का बार-बार संस्कार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए—अहिंसाव्रत की स्थिरता के लिए वचनगुप्ति, मनोगुप्ति अर्थात् वाणी और मन पर अधिकार पाने की शक्ति मुझे कैसे प्राप्त हो, तथा जाते-आते, उठते-बैठते, खाते पीते मुझ से अधिक से अधिक सावधानी कैसे हो, इस विषय में सतत जागृति और विचार होना चाहिए। सत्यव्रत की सुरक्षा के लिए क्रोध, लोभ, भीति हास्य, विनोद इत्यादि जिस किसी विकार में असत्य बोलने का प्रसंग पैदा हो सकता है उन विकारों का उपशम करना, उन्हें हटाना, उनके पैदा होने के मौके से बचे रहना और बोलने में सदैव हित मित और प्रिय भाषा का ही उपयोग करना–ये सभी उस व्रत की भावनाएँ हैं। इन भावनाओं का जितना अधिकाधिक संस्कार अपने मन पर हो उतनी ही उन व्रतों के प्रति हमारी निष्ठा और स्थिरता दृढ़ होगी।

अच्छी या बुरी, कोई भी भावना जितनी तीव्रता से हम करेंगे उतने

जीवन निर्माण

—स्वामी श्री समन्तभद्रजी के विचार—

संग्राहक—माणिक चन्द्र ज० भिसीकर एम० ए०

प्रश्न—आजकल की नई पीढ़ी में नीतिमत्ता तथा धर्मप्रवृत्ति का ह्रास अधिकाधिक क्यों दिखाई दे रहा है ?

उत्तर—धर्म प्रवृत्ति के ह्रास का मुख्य कारण है योग्य संस्कारों का अभाव। संस्कार करने का कर्तव्य मां, बाप और गुरुजनों का होता है। बचपन से बच्चों को या शिष्यों को जैसा संस्कार मिलेगा वैसे वे आगे चल कर बनते हैं। लेकिन इसका ख्याल कितने माता पिता और गुरुओं को है ? वस्तुतः बच्चा जब गर्भ में होता है तभी से जिस प्रकार मां के आहार विहार का उस पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार उसके आचार विचारों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जो बात गर्भस्थ बालका की है वही घर में रहने वाले या विद्यालय में पढ़नेवाले बच्चों की है। अपने वातावरण तथा घर के ज्येष्ठ लोगों के आचार विचारों का बच्चों के मन पर उनके बिना समझाये ही सतत परिणाम हुआ करता है। इसलिए गुरु हो या मां-बाप हो, उनका यह प्रमुख कर्तव्य है कि वे अपना स्वयं का आचार विचार सदैव अच्छा रखें और बालकों पर बचपन से ही उत्तमोत्तम संस्कार डालने डलवाने की ओर ध्यान रखें।

पहले इस विषय में पालक और गुरु दोनों दक्ष रहते थे। लेकिन जबसे उनका इस तरफ दुर्लक्ष होने लगा, या अपने वर्तन का भला या बुरा परिणाम अपनी संतति और विद्यार्थियों पर कैसा होता है तथा उनमें योग्य परिवर्तन करने का उपाय क्या है—इसका विचार तक करना उन्होंने छोड़ दिया तबसे नीतिमत्ता और सत्प्रवृत्ति का ह्रास बालकों में होने लगा। आज सर्वत्र जो नीतिमत्ता के ह्रास होने की शिकायत सुनाई देती है और उससे जो एक प्रकार का निराशायुक्त भय का वातावरण पैदा हुआ है उसका मूल कारण यही है।

प्रश्न—तब मध्य परिस्थिति में सुधारणा कैसे हो ?

अन्यथा सभी ओर से प्रतिकूलता होने पर सिर्फ इच्छा के रखने से क्या प्रयोजन ?

उत्तर—आज जो परिस्थिति हमें प्रतिकूल या बाधक लगती है वही आगे चलकर अनुकूल और साधक भी होती है। लेकिन उसके लिए चित्त की स्थिरता और मनका निश्चय चाहिए। विवेक और आत्मविश्वास होने पर प्रतिकूल परिस्थिति से भी मार्ग निकलता है। इसलिए देश-काल और अन्य सामग्री का निमित्त बतलाना तो उनके पीछे हमारे मनकी दुर्बलता को ही छिपाना है। कहा भी है—"देश-काल-खला कि तश्चला धीरेव बाधिका"। वस्तुत अपनी अस्थिर बुद्धि ही अपनी प्रगति में बाधक है। वह अगर स्थिर हो तो काल या दुष्ट पुरुष क्या है ? परिस्थिति तो जैसी है वैसी ही बनी रहेगी। उसमें हम ज्यादा परिवर्तन नहीं कर पाएँगे। लेकिन हम अपना आत्मबल बढा सकते है क्योंकि वह हमारे अधीन है। "Every thing is in its own place, mind makes hell of heaven and heaven of hell' इस उक्ति का भी भाव यही है। इसलिए इस बात का महत्व हमें जानना चाहिए।

प्रश्न—यह आत्मबल भी हमारे जैसे सामान्य व्यवहारी लोग कैसे बढाएँ

उत्तर—जीवन के साध्य और साधनों का यथार्थ परिचय और निर्णय कर लेने से मनुष्य का आत्मबल बढ़ता है। पर आज ठीक इसी बात में हमारी भूल होती है। संपत्ति, घर, स्त्री-पुत्र, खेती-बाडी इत्यादि सब अपने 'धर्म' के अनुसार 'साध्य' के केवल साधन है। लेकिन इन साधनो को ही हम साध्य समझ कर अपनी सारी शक्ति और जन्म व्यय कर रहे है। इतना करने पर भी उनकी समाधानकारक पूर्ति हम नहीं कर पाते। वस्तुत उन साधनों में व्यस्त होकर साध्य का विचार करने का भी समय हमें नहीं मिलता। फिर आत्मबल कैसे बढ़े ! आत्मबल आत्मोपासना से बढ़ता है। आत्मोपासना माने आत्मशक्ति के अंतःसामर्थ्य की पहचान और प्राप्ति कर लेने का प्रयत्न है !

जीवन का सच्चा 'साध्य' यही है। ऐसा प्रयत्न जब तक हम नहीं करेंगे तब तक आत्मबल नहीं बढ़ेगा। इसलिए जीवन के अंतिम सत्य का और साध्य का प्रथम योग्य निर्णय करना चाहिए। "Ponder well and

अधिक प्रमाण में उनके सस्कार—परिणाम हमारे मनपर दृढ़ होंगे। अग्नि या बर्फ हम एक जगह से दूसरी जगह उठा ले जाते ह फिर भी वह जगह जिस प्रकार कुछ काल तक गरम या ठंडी रहती ह वसी ही बात भावनाओं के विषय में ह। ये भावनाएँ निर्मित होकर शीघ्र ही नष्ट होती हा तो भी अपनी ज्यादा या कम तीव्रता के अनुसार वे मनोभूमि पर अपनी मुद्रा अकित किये बिना नहीं जाती ह। तभी तो मनुष्य का मन बहुधा पूव सस्काराधीन रहता ह। पुरानी आदतें, पुराने सस्कार फिर वे बुरे ही क्यों न हो उनको हम जल्दी हटा नहीं सकते। वे तो तभी हटाये जाते ह जब उन पर नवीन सद्विचारों के पटल चढ़ जाते ह। इसीलिए सत्प्रवृत्तियों के वधन के लिए भावना और सस्कारों का महत्व कहा गया ह। विचारों की उत्कटता ही सत्कृति की जननी ह। वह जितनी अधिक, उतनी ही कृति शीघ्र होती ह।

प्रश्न—वतमान में तो विचार के अनुसार कृति होती हुई नहीं दिखाई देती है, इसका क्या कारण ह ?

उत्तर—विचार कृति में जल्दी परिणत नहीं होते, इसका कारण पूव के विरुद्ध बुरे सस्कारों की दृढ़ता ह। उस दृढ़ता को हर प्रयत्न से शिथिल करना होगा। ग्रंथिभेद होने तक जिस प्रकार की प्रयत्नों की तीव्रता चाहिए वसे ही पूव सस्कार स्मृतिशेष होने तक प्रयत्नो की पराकाष्ठा आवश्यक ह। हम में अथवा अपने बाल बच्चों में जो बुरी आदतें ह उन्हें दूर करने की हमें बहुत चिन्ता रहती ह लेकिन उस ओर स प्रयत्नों का पुरुषाथ हमारे मन में जागृत नहीं होता। तब यह कसे हो ?

कई लोगों को तो इस विषय में प्रयत्न करने की इच्छा तक नहीं होती, तब पुरुषाथ तो दूर ही रहा। ऐसे लोगों के अज्ञान और कतव्यशून्यता पर जितनी दया की जाय वह अल्प है। अमुक आदत अच्छी ह और अमुक आदत बुरी है, यह प्रत्यक्ष जानते हुए भी उसके विषय में सुधार या प्रयत्न करने की इच्छा का भी मन में नहीं होना यह जीवन में ही मृत्यु का सूचक ह।

जिसकी सद्विचार और सत्प्रवृत्ति के बारे में यत्किंचित् भी आस्था या रुचि नहीं है उसका मन जागृत या जीवन्त कसे कहा जाय !

प्रश्न—समस्त परिस्थिति अनुकूल होने पर ही यह सब शक्य ह
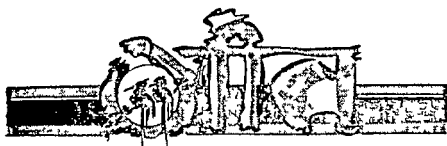
सोच लेने दो !

मेरे सम्मुख पथ इतने हैं, किस पर चलूँ सोच लेने दो !

तुम सागर के पार खड़े हो
ऊँचे स्वर से मुझे बुलाते
इधर ज्वार आते पल पल पर
कूल किनारे ढहते जाते
इतनी लहरें उठतीं गिरतीं
किसमें वहूँ सोच लेने दो !

मेरे सम्मुख पथ इतने हैं, किस पर, चलूँ सोच लेने दो !

बीते सुख गीतों को गाकर
अपना रोता मन बहलाऊँ
अथवा भावी की आशा में
टूटे तार बजाता जाऊँ
इतने स्वर आते वीणा पर
छेड़ूँ किसे सोच लेने दो !

मेरे सम्मुख पथ इतने हैं, किस पर चलूँ सोच लेने दो !

सुमन बुलाता मधु पराग ले
जग कहता–"काँटों से बचना"
मन कहता–"मत सुनो किसी की
करो वही जिसमें हित अपना"
जितने मुख उतनी ही बातें
किसकी सुनूँ सोच लेने दो !

मेरे सम्मुख पथ इतने हैं, किस पर चलूँ सोच लेने दो !

know the right onward then with all thy right"
'खूब विचार करो और सत्य को जान लो, तब अपनी सारी शक्ति से आगे बढ़ो' यह प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे का उद्‌गार कितना अर्थ पूर्ण है ?

अनुप्रेक्षाकार स्वामी कार्तिकेय ने भी यही तत्त्व अलग रीति से कहा है। वे कहते हैं—

विरला निसुणइ तच्चं
विरला जाणंति सच्चदो तच्चं।
विरला भावइ तच्चं
विरलाणं धारणा होइ॥

—बहुत थोड़े लोग सत्-तत्त्व का श्रवण करते हैं, उनसे भी कम लोग वे हैं जो उसे यथार्थतः मानते हैं, उस तत्त्व की भावना और प्रत्यक्ष धारणा का आचरण करने वाले तो और भी विरल हैं।

सारांश यह है कि तत्त्व का प्रत्यक्ष आचरण नहीं तब तक उसका बार बार श्रवण मनन और चिंतन होना जरूरी है और उसके सर्व प्रथम साध्य का निश्चय होना आवश्यक है।

अच्छे विचार और अच्छी चीजों का चिन्तन—यही नैतिक जीवन का पाया (Foundation) है और सुसंस्कार तथा दीर्घोद्योग पर ही उसका निर्माण अवलंबित है।

'सन्मति' से अनु० पद्मनाभ जैनी

(पृष्ठ २४ का शेष)

धर्म को बनानेवाले ऋषियों ने धर्म के लिये, अर्थ के लिये शरीर काम के लिए ही आयुर्वेद को प्रकाशित किया है। इसमें जो व्यक्ति अर्थ और इच्छा को छोड़ कर केवल भूत दया की भावना से प्रवृत होता है उसकी तुलना इस पृथ्वी पर नहीं है। यह है आयुर्वेदीय भारतीय चिकित्सा जिसकी इस धरातल पर आज भी तुलना नहीं।

सेवा की भावना से प्रेरित

भारतीय चिकित्सा शास्त्र

अत्रिदेव विद्यालंकार,

पौराणिक आख्यान है कि राजा सगर के एकसौ पुत्र महर्षि कपिल मुनि के शाप से मर गए थे। उनको पुन जीवित करने के लिए भगीरथ ने तप किया। तप करके गंगा को स्वर्ग से मर्त्यलोक में लाये। इसी प्रकार प्राणियों के दुख को देखकर ऋषिलोग हिमालय के आंचल में एकत्रित हुए और इस दुख से मुक्त कराने के लिए आपस में परामर्श किया। अंत में निश्चय हुआ कि इन्द्र ही इस दुख से छूटने का उपाय बता सकते हैं। इस निश्चय के अनुसार भारद्वाज मुनि को स्वर्ग में इन्द्र के पास इस उपाय या ज्ञान को सीखने के लिए भेजा गया। भारद्वाज ऋषि वहाँ से जो उपाय व ज्ञान सीखकर लाए, वही उपाय आयुर्वेद था। जिसे जानकर ऋषियों ने अपरिमित आयु प्राप्त की और उसे लोक में प्रसारित किया।

गंगा का अवतरण भी प्राणियों पर अनुकम्पा के लिए ही हुआ है। आयुर्वेद भी भूतानुकम्पा के लिए इस मर्त्यलोक में आया है, जैसा कि कहा है कि 'मया तु प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतो' प्रजा के हित की कामना से मैं आयुर्वेद को दे रहा हूँ।

यह आयुर्वेद दूसरे ज्ञान की भाँति अनादि और अनन्त है। इस ज्ञान का प्रवर्तक ब्रह्मा प्रजापति है। प्रजापति से अश्विनौ ने इस ज्ञान को प्राप्त किया, अश्विनौ से इन्द्र ने सीखा। इन्द्र से दो शाखाओं में विभक्त होकर यह ज्ञान मर्त्यलोक में आया। एक शाखा के प्रवर्तक भारद्वाज ऋषि थे और दूसरी शाखा के प्रवर्तक धन्वन्तरि थे। भारद्वाज की शाखा में आत्रेय पुनर्वसु हुए जिन्होंने वर्तमान चरकसंहिता का प्रवचन किया, जो कि काय चिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ है। धन्वन्तरि की शाखा में काशीपति दिवोदास हुए जिन्होंने सुश्रुत संहिता का प्रणयन किया, जो कि शल्यचिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ है। सम्पूर्ण आयुर्वेद ज्ञान में ये ही दो शाखाएँ मुख्य हैं। इन दोनों के ज्ञाता को 'अश्विनौ' इस उपाधि से विभूषित किया जाता है। शल्यचिकित्सा में निपुण व्यक्ति को धन्वन्तरि तथा कायचिकित्सा में दक्ष

आशाओं की रंग-भूमि पर
फिर बालू की भीत उठाऊँ
अथवा, तोड़ जगत के बन्धन
मुक्त गगन में लय हो जाऊँ
जीवन के दो चार दिनों में
क्या क्या करूँ सोच लेने दो।
मेरे सम्मुख पथ इतने हैं, किस पर चलूँ सोच लेने दो।

आदित्य कुटी,
जौनपुर, उ० प्र०

—रवीन्द्रनाथ राय 'भ्रमर'

स्मृति-गान

अतीत की वंदनीय स्मृतियों के जलते नवदीप! आशा के तिमिराचलि पथ को उस समय तक आलोकित रखना, जब तक दिगन्तगामिनी प्रतीक्षा तुम्हारी लौ में प्रकम्पन न भर दे।

हृद् तन्त्री के अनमिल तार! अपने को उस समय तक सहेजे रखना जब तक वेदना का अमार संसार तुम्हारी स्मृति में अपनी मधुमय पीड़ा का उपहार देता रहे।

जीवन मोनी! नयनों के दुकूल कजारों में अपने को उस समय तक बाँधे रखना जब तक स्मृति पथ का पथिक याद का सम्बल लिये तुम्हारी मुग्ध मनुहार का अर्घ लेने न आए।

शाश्वत वेदने! मधुमय पीड़ा की मधुर ज्वाल से हृदय को उस समय तक पल्लवित रखना जब तक चिर संगिनी वेदना के तार झंकृत न हो उठें।

कल्पने! हृदय के उस आलोक पथ पर तब तक अपनी मिलन-स्मृतियों के साकार छन्द रचती रहना जब तक 'स्मृति-गान' जीवन में स्पन्दन लाता रहे।

४५ बिड़ला होस्टल, ए ब्लाक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

—'राकेश' मिश्र

दर्शनों की परम्परा आयुर्वेद में भी आई है, क्योंकि सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान एक ही साँचे में ढला हुआ है। इसीलिए दर्शन के पंचमहाभूत और चेतना से बना यह पुरुष आयुर्वेद को मान्य है। पुरुष भी पंचतत्त्वों से बना है, द्रव्य औषध भी पांच तत्त्वों से बनी है, इसीलिए दोनों समान रूप में होने से परस्पर अनुकूल रहते हैं। इनमें पृथ्वी और जल ये दो तत्त्व भारी होने से नीचे की ओर जाते हैं इसीलिए गेहूँ, घी, मिष्टान्न, चावल, दही आदि खाने पर शरीर में भारीपन, आलस्य, निद्रा आती है। वायु, अग्नि और आकाश वाले पदार्थ हल्के हैं, ये ऊपर को जाते हैं। आग की लौ सदा ऊपर ही जायगी, वायु से भरा गुब्बारा ऊपर को ही वायु में उड़ता है। इसीलिए तेज मिर्चों वाली रसोई खाने पर हिचकी बँध जाती है, जिसके लिए पानी पी कर वायु का जोर कम किया जाता है। व्रत या उपवास के दिन में फलाहार का चुनाव करने में वायु और आकाश तत्त्व की प्रधानता वाले पदार्थों का ही चुनाव मुख्यतः किया गया है, यथा चौलाई, कुट्टू आदि का।

ये पंचमहाभूत स्वयं जड़ या क्रिया रहित हैं। इनमें चेतना या क्रिया शीलता आत्मा के मिलन से ही आती है। जिस प्रकार कि लैन्स में सूर्य की किरणें प्रविष्ट होकर नीचे रखी हुई रुई को जला देती हैं। लैन्स में सूर्य रश्मियों का प्रवेश उनके कार्य से जाना जाता है, इसी प्रकार शरीर में चेष्टा, प्रयत्न, बुद्धि आदि कार्यों से आत्मा का पंच तत्त्वों के साथ संयोग पता लगता है। आत्मा का संयोग मन के द्वारा होता है और मन पूर्वजन्म कृत कर्मों के कारण इस आयु को प्रवृत्त करता है, जिससे शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा का परस्पर संयोग हो जाता है।

इस आयु को सुखमय बनाने के लिए अत्रिपुत्र ने तीन वस्तुएँ बताई हैं। आयुर्वेद में सुख का अर्थ है आरोग्य, यह आरोग्य आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य से मिलता है। इसी बात को भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि जिस व्यक्ति का आहार विहार नियमित है, चेष्टाएँ भी नियमित हैं, सोना और जागना नियम से होता है, उसके लिए योग दुःख नाशक होता है। अधिक भोजन करने वाला अथवा बिल्कुल भोजन न करने वाला व्यक्ति योग नहीं कर सकता, इसी प्रकार बहुत सोने वाला व्यक्ति या सदा जागने वाला व्यक्ति भी योग नहीं कर सकता। अत्रिपुत्र ने इन तीनों को उपस्तम्भ नाम दिया है, क्योंकि ये तीनों ही शरीर को थामे रहते हैं—शरीर के स्तम्भरूप हैं।

इन तीन उपस्तम्भों को जीवन में घटाने के लिए दिनचर्या, ऋतुचर्या और

व्यक्ति को 'आत्रेय' नाम दिया जाता था, जिस प्रकार आज हम 'बचुलर आफ मडिसन' या 'वचुलर आफ सजरी' इन उपाधियों से विभूषित करते हैं।

यह ज्ञान परम्परा भारतीय अय ज्ञान की शृंखला से बँधी हुई है। भारतीय ज्ञान की शृंखला का प्रारम्भ वेद से होता ह इसका विस्तार दर्शनों में, उपांगों में होता ह। वद ज्ञान ह सो दशन दिखाने वाले ह, इनसे ज्ञान देखा जाता है। आयु को वेद के साथ जोडकर इस ज्ञान को दूसरे ज्ञान से थोडा विशष बनाया ह जिस प्रकार कि एक ही हाथ में चार अंगुलियाँ अपन साथी अँगूठे से अलग ह, इसका नाम और रूप अगुलियों से भिन्न ह, फिर भी साथ में रहता हुआ उन चारों पर शासन करता ह, उसी प्रकार यह आयुर्वेद नाम और रूप से दूसरे चारों वदो से पृथक रहने पर भी उनपर आधिपत्य करता है, क्योंकि आयु के ज्ञान के बिना धर्म, अथ, काम और मोक्ष इसमें से कोई भी पुरुषाथ नहीं होता। इसीलिए कविकुल गुरु कालिदास को भी कहना ही पडा कि 'शरीरमाद्य खलु धमसाधनम्' धम का आदि साधन शरीर ही ह।

आयुर्वेद शब्द आयु और वेद इन दो शब्दों से मिलकर बनता ह। आयु का अथ चलना या जाना ह यह सदा चलती रहती ह इसके रुकने का नाम मृत्यु ह। यह आयु शरीर इन्द्रिय मन और आत्मा इन चार के संयोग से बनती ह, जिस प्रकार चार पाये और तख्ते के मिलने से मेज बनती ह। भारतीय चिकित्सा शास्त्र में शरीर के साथ मन और आत्मा का भी विचार किया है। यही इस चिकित्सा पद्धति की बडी विशेषता है इसी से आत्मा और मन की चिकित्सा सिखाने वाले बोधिसत्व को भवजयगुरु के नाम से आयुर्वेद शास्त्र में स्मरण किया गया ह। शरीर के लिए जहाँ स्वस्थवृत्त का विधान ह, वहाँ आत्मा के लिए सद्वृत्त को भी बताया गया ह, सद्वृत्त शिष्टों का आचरण ह। इसी से रोग भी दो प्रकार के ह, एक शारीरिक और दूसरे मानसिक।

आयुर्वेद इस मत्यलोक में प्राणियों के उपचार के लिए ही उत्पन्न हुआ है इसीसे इसके दो ही प्रयोजन अग्निपुत्र ने बताए हैं, एक तो रोगियों को रोग से मुक्त करना और दूसरा स्वास्थ्य की रक्षा करना। इसीलिए औषध भी दो प्रकार की ह, एक रोगनाशक और दूसरी बलवर्धक। दोनों प्रकार की औषध द्रव्य और अद्रव्य भेद से फिर दो प्रकार की हैं। अद्रव्य औषध उपवास, वायु, धूप, हवा, अग्नि से संबन्धित हैं जिसे आजकल निसर्गोपचार या प्राकृतिक चिकित्सा के नाम से पहचाना जाता है।

से न पालने पर रोग होते हैं, ये रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के है। इन दोनों प्रकार के रोगो के कारण तीन प्रकार के है। भारतीय सस्कृति में तीन की सख्या बहुत महत्वपूर्ण है, इसी तीन सख्या को अग्निपुत्र ने बहुत ही सुन्दरता से अपनाया है, उन्होंने रोगों के कारण तीन कहे है, औषध तीन प्रकार की कही है, वैद्य भी तीन प्रकार के कहे है, तीन ही रोग मार्ग है, तीन ही इच्छाएँ बताई है, तीन ही दोष बताए है जो कि शरीर को दूषित करते है। रोग के तीन कारणों में पहला कारण इन्द्रियों का विषय के साथ ठीक प्रकार से सयोग न होना है जैसा कि आँख से अधिक काम लेना इसका अतियोग है। आँख से बिल्कुल न देखना जैसा गान्धारी ने किया था यह आँख का अयोग है। सूक्ष्म वस्तुओं को देखना या अँधेरे में पढना, लेट कर पढ़ना यह आँख का मिथ्यायोग है। इस प्रकार से प्रत्येक इन्द्रिय का अतियोग अयोग और मिथ्यायोग रोग का कारण होता है। दूसरा कारण प्रज्ञा का अपराध रोग का कारण है, बुद्धि से ठीक प्रकार चिन्तन न करना रोग का कारण है, अकल्याण कारक आहार विहार को कल्याण कारक मानना, अशुभ को शुभ समझना या सत्य मार्ग को असत्य, अधर्म को धर्म मानना यह प्रज्ञा का ही दोष है, इससे होने वाले रोग दूसरे प्रकार के है। तीसरा कारण काल जन्य या ऋतुजन्य, है, इसी कारण में कर्मजन्य व्याधियों का समावेश होता है। ऋतु के कारण जो रोग होते है वे तीसरे प्रकार के है।

इन तीनो प्रकार के रोगों की चिकित्सा संशोधन और संशमन भेद से दो प्रकार की है। संशोधन चिकित्सा में शरीर का दोष शरीर से बाहर कर दिया जाता है। जो दोष या कारण शरीर से बाहर हो जाता है उससे फिर रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती, इसलिए अग्निपुत्र ने सशोधन चिकित्सा को श्रेष्ठ उपचार कहा है। सशमन चिकित्सा में दोष का शरीर में शमन किया जाता है जैसा कि गिरी हुई स्याही या गिरे हुए पानी पर मिट्टी या रेत गेर कर उसे शुष्क कर देते है। रोग के कारण को उसकी प्रतिरोधक तीव्र औषध से शरीर के अन्दर ही नष्ट कर देते है। इसमें दोष शरीर से बाहर नहीं होता। अग्निपुत्र ने उत्तम चिकित्सा यही बताई है जो कि शरीर के दोष को शरीर से बाहर कर दे और अन्य कोई दूसरा रोग उत्पन्न न करे। संशमन चिकित्सा शुद्ध उत्कृष्ट चिकित्सा नहीं है, क्योंकि कई बार प्रतिरोधक औषध का दुष्परिणाम सामने आता है। भारतीय चिकित्सा पद्धति की दूसरी विशेषता यह चिकित्सा है, जिसमें शरीर की शुद्धि वमन, विरेचन

रात्रिचर्या में करणीय बातों की सूक्ष्म जानकारी बताई है। मनुष्य को चाहिए कि ब्राह्ममुहूर्त में उठे, अपने नित्य नैमित्तिक कार्य करे, दातुन करे। दातुन कैसे करे, किस वृक्ष की दातुन करे इसकी बहुत बारीक विवेचना काशीपति ने की है। इसके पीछे व्यायाम, तेल की मालिश, स्नान आदि कार्यों का वर्णन बताया है। स्नान के पीछे सुगन्धि का लेप, चन्दन आदि का अनुलेपन करने का आदेश दिया है, जो कि इस देश के लिए आवश्यक ही है, जिससे पसीने की दुर्गन्ध शरीर की त्वचा को दूषित न करे।

दैनिक चर्या में भोजन व आहार की विवेचना बहुत ही सूक्ष्मरूप में की गई है। आहारद्रव्य कौन हितकारी है, कौन अहितकारी है, उनके गुण दोष, उनका परस्पर विरोध, इन सब बातों की विवेचना आयुर्वेद में की गई है। आहार की उपमा अग्निहोत्र से दी है। जिस प्रकार घृत और समिधाओं से बाह्य होमाग्नि में यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार अन्तराग्नि में अन्नपान रूपी समिधाओं से यज्ञ किया जाता है। अन्न में ही सब कर्म प्रतिष्ठित है। इस अन्न में दूध और घी का सेवन सब रसायनों में उत्तम रसायन दीर्घायु देने वाला है। गेहूँ का सेवन स्थिरता देता है, दूध प्राण देता है, गाय का दूध सब दूध में श्रेष्ठ है, परन्तु गाय का मांस सब मांसों में अहितकर है। लाल चावल सब चावलों में श्रेष्ठ है, आलू का कन्द सब कन्द शाकों में बुरा है। वर्षाजल सब जलों में श्रेष्ठ है। आहार का सम्बन्ध मन से है, आहार की पवित्रता पर ही मन की पवित्रता रहती है, इसीलिए आहार की इतनी बारीक विवेचना आयुर्वेद भी की गई है।

ब्रह्मचारी को रोग नहीं होते। उसे रोग तभी होते हैं जब कि प्राक्तन कर्म या काल ही कारण बने। इसका उदाहरण भगवान् शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द है, दोनों ही आजन्म ब्रह्मचारी थे परन्तु मृत्युकाल में भगवान् शंकराचार्य को भगन्दर रोग हुआ और स्वामी दयानन्द में विष का प्रभाव हुआ।

ऋतुचर्या में ऋतु में होने वाले रोगों से बचने का उपाय बताया है। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में त्वचा के रोग, दाद, खुजली होते हैं, शरद ऋतु में ज्वर का और वसन्त ऋतु में चेचक, मसूरा आदि ज्वर होते है। इनसे बचने के लिए पहले ही उपाय करने का विधान ऋतुचर्या में कहा गया है। किस ऋतु में किस प्रकार का आहार विहार रखना चाहिए, क्या वस्तु अपथ्य है, क्या पथ्य है इन सब बातों की समीक्षा आयु ज्ञान की दृष्टि से इस शास्त्र में मिलती है। आहार विहार, ब्रह्मचर्य का ठीक प्रकार

से म पालने पर रोग होते ह, ये रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के ह। इन दोनो प्रकार के रोगो के कारण तीन प्रकार के ह। भारतीय सस्कृति में तीन की सख्या बहुत महत्वपूर्ण ह, इसी तीन सख्या को अग्निपुत्र ने बहुत ही सुन्दरता से अपनाया ह, उन्होंने रोगों के कारण तीन कहे ह, औषध तीन प्रकार की कही ह, वद्य भी तीन प्रकार के कहे ह, तीन ही रोग माग ह, तीन ही इच्छाएँ बताई ह, तीन ही दोष बताए ह जो कि शरीर को दूषित करते ह। रोग के तीन कारणों में पहला कारण इन्द्रियों का विषय के साथ ठीक प्रकार से सयोग न होना ह जसा कि आँख से अधिक काम लेना इसका अतियोग ह। आँख से बिल्कुल न देखना जसा गाधारी ने किया था यह आँख का अयोग ह। सूक्ष्म वस्तुओं को देखना या अँधेरे में पढना, लेट कर पढ़ना यह आँख का मिथ्यायोग ह। इस प्रकार से प्रत्येक इन्द्रिय का अतियोग अयोग और मिथ्यायोग रोग का कारण होता ह। दूसरा कारण प्रज्ञा का अपराध रोग का कारण ह, बुद्धि से ठीक प्रकार चिन्तन न करना रोग का कारण ह, अकल्याण कारक आहार विहार को कल्याण कारक मानना, अशुभ को शुभ समझना या सत्य माग को असत्य, अधम को धम मानना यह प्रज्ञा का ही दोष ह, इससे होने वाले रोग दूसरे प्रकार के ह। तीसरा कारण कालजन्य या ऋतुजन्य, ह, इसी कारण में कमजन्य व्याधियो का समावेश होता ह। ऋतु के कारण जो रोग होते ह वे तीसरे प्रकार के ह।

इन तीनों प्रकार के रोगो की चिकित्सा सशोधन और सशमन भेद से दो प्रकार की ह। संशोधन चिकित्सा में शरीर का दोष शरीर से बाहर कर दिया जाता ह। जो दोष या कारण शरीर से बाहर हो जाता ह उससे फिर रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती, इसलिए अग्निपुत्र ने सशोधन चिकित्सा को श्रेष्ठ उपचार कहा ह। सशमन चिकित्सा में दोष का शरीर में शमन किया जाता ह जसा कि गिरी हुई स्याही या गिरे हुए पानी पर मिट्टी या रेत गेर कर उसे शुष्क कर देते हैं। रोग के कारण को उसकी प्रतिरोधक तीव्र औषध से शरीर के अन्दर ही नष्ट कर देते ह। इसमें दोष शरीर से बाहर नहीं होता। अग्निपुत्र ने उत्तम चिकित्सा वही बताई ह जो कि शरीर के दोष को शरीर से बाहर कर दे और अन्य कोई दूसरा रोग उत्पन्न न करे। संशमन चिकित्सा शुद्ध उत्कृष्ट चिकित्सा नहीं है, क्योंकि कई बार प्रतिरोधक औषध का दुष्परिणाम सामने आता ह। भारतीय चिकित्सा पद्धति की दूसरी विशेषता यह चिकित्सा ह, जिसमें शरीर की शुद्धि वमन, विरेचन

और वस्ति इन तीन उपायों से की जाती है, ये तीन उपाय भी शरीर को दूषित करने वाले तीन दोषो को देखकर ही बनाये गए हैं। यही संशोधन और संशमन चिकित्सा आगे कई रूपों में विभक्त हो जाती है।

जिस प्रकार मनुष्य का स्वभाव, प्रकृति, रुचि अनन्त है उसी प्रकार यह चिकित्सा शास्त्र भी असीमित है, उसका कोई पार नहीं। इसलिए उसके ज्ञान प्रयत्न में निरन्तर बिना आलस्य के तत्पर रहना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य के लिए सब लोग आचार्य हैं इसलिए अपने शत्रु का भी धन्य, पुण्य, यशकारी वचन सुनना चाहिए और करना चाहिए। चिकित्साशास्त्र समुद्र की तरह गम्भीर है इसको लाखों श्लोकों से भी नहीं कहा जा सकता, ऐसा अत्रिपुत्र और काशिराज का कहना है। इसलिए दूसरी पद्धतियों में जो बात युक्तिसंगत लोक कल्याण के लिए उपयुक्त मिले उसे अपनाना चाहिए क्योंकि चिकित्सा से अधिक पुण्यकारी कोई धर्म इस संसार में नहीं है।

इसीलिए आयुर्वेद के आचार्यों ने अफीम, संखिया, चोपचीनी आदि इस देश के बाहर की वस्तुओं का उपयोग लोक कल्याण के लिए चिकित्सा में किया। लोक कल्याण के लिए नागार्जुन ने रस शास्त्र को जन्म दिया, जिसने थोड़ी मात्रा में भी, अरुचि आदि को बिना उत्पन्न किये रोगों को शीघ्र नष्ट किया जा सकता है।

उत्तम औषध तो वही है जिससे मनुष्य रोग मुक्त हो और उत्तम वैद्य वह है जो कि मनुष्य को रोगमुक्त करे। वह औषध भले ही कहीं की हो, चिकित्सक भी चाहे जहाँ का हो इसमें किसी देश या जाति का विचार नहीं। रोगी को आरोग्यरूपी सुख मिलना चाहिए, उसका दुःख दूर हो, बस, यही आयुर्वेद है, यही इस चिकित्सा का परम लक्ष्य है, जिसके लिए कि ऋषि लोग आयुर्वेद को स्वर्ग से मर्त्यलोक में लाए। दुःख भले ही रोग रूप हो, जरा रूप हो या मृत्यु रूप हो, यह आयुर्वेद तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करता है।

जैसा कि इसके प्रवर्तक अत्रिपुत्र ने कहा है—

धर्मार्थं चार्थकामार्थमायुर्वेदो महर्षिभिः।
प्रकाशितो धर्मपरैरिच्छद्भिः स्थानमक्षरम्॥
नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥ चरक० चि० अ० १०

(शेष पृष्ठ २६ पर देखें)

दान और अपरिग्रह

समाज की दृष्टि में दानी वही हो सकता ह जिसके पास आवश्यकता से अधिक सग्रह हो। जिन्हें हम आजकल के दानवीर कहते हैं वे बहुत बड़े पूजीपति होते ह। जिसके पास आवश्यक्ता से अधिक पसा न हो वह दान कसे दे सकता है? यह ठीक ह कि बिना पैसे वाला भी मन और तन का दान दे सकता ह किन्तु ऐसे दानी समाज में ह कितने? और जो ह उन्हें क्या आप दानवीर कहते ह? ऐसे लोगों को दानवीर की उपाधि देने वाले कितने मिलेंगे जिनके पास पसा नहीं ह किन्तु मन और तन ह और इन्हीं दो चीजों से समाज की सेवा करते ह? जहाँ तक हमारा ख़याल ह नहीं के बराबर। लखपतियों और करोड़पतियों को दानवीर की उपाधि मिल ही जाती ह यदि वे अपने धन का दशमांश भी दान में दे दें। अपने शरीर की जरा भी परवाह न करते हुए जिसने समाज के लिए अपना बलिदान कर दिया हो—अपना तन और मन सपूणरूप से समाज की सेवा में समर्पित कर दिया हो उसे क्या आपने कभी दानवीर कहा ह? नहीं। क्यों? क्योंकि वह अपरिग्रही ह—सग्रह से हमेशा दूर रहता ह। आप सग्रह का मूल्य समझते ह—परिग्रह की कीमत आँक सकते ह किन्तु आप की दृष्टि में त्याग का मूल्य नहीं ह—अपरिग्रह की कीमत नहीं के बराबर ह। आप कहेंगे—हम जो धन का त्याग करता ह उसे दानवीर कहते तो ह! और त्याग का मूल्य क्या होता ह? आप का यह उत्तर ठीक नहीं क्योंकि आप वास्तव में परिग्रही को दानवीर कह रहे ह, त्यागी को नहीं। सच्चा त्यागी वह ह जो पसा जोड़ कर त्याग नहीं करता अपितु पसा छोड़ कर त्याग करता ह। जोड़कर छोड़ने की अपेक्षा पहले से ही न जोड़ना सच्चा त्याग ह—वास्तविक दान ह। जिसकी आपको आवश्यकता ही नहीं उसका सग्रह क्यों करत ह? इसीलिए न कि आप उस संग्रह के दान से दानी कहलाएंगे। यह ठीक नहीं। इस प्रकार की आपकी मनोवृत्ति से समाज में विषमता फलती ह। समाज की विषमता दूर करने का सही तरीका अपरिग्रह ह—असंग्रह ह—सयम ह, त्याग नहीं, दान नहीं।

विद्याश्रम समाचार

महत्व के निर्णय

समिति की मनेजिंग कमेटी की बैठक ७ दिसम्बर को अमृतसर में समिति के प्रधान डा० त्रिभुवननाथ जी की अध्यक्षता में हुई। इसमें बाहर के सदस्यों ने भी उत्साह से भाग लिया। बहुत कुछ विचारणा के बाद यह बात सिद्धान्तरूप में स्वीकृत हुई कि जब भी कोई थीसिस तयार व स्वीकृत हो कहीं से सहायता न मिलने पर भी उसके प्रकाशन का अनिवार्यरूप से शीघ्र ही प्रबन्ध किया जाय। दूसरे रिसर्चकार्य में सहायक रेफरेंस की पुस्तकों को तयार कराने का काम भी शुरु किया जाना चाहिए। इस बारे में प्रकाश डालने वाले दो लेख 'श्रमण' के मई जून के अंक में निकल चुके हैं। फिलहाल डॉ० अग्रवाल जी की योजना में से किसी एक को लिया जा सकता है। कमेटी ने मंत्री जी को आदेश दिया कि सन् १९५३ के बजट में नवीन साहित्य निर्माण के इस कार्य के लिए भी अवश्य गुंजाइश रखें। समिति का इन दोनों कामों के लिए विशेष लक्ष्य है। उपस्थित सदस्यों ने इस समाचार पर हर्ष प्रकट किया कि बीकानेर के प्रमुख उदार सज्जनों में श्री इन्द्रचन्द्र जी के महानिबन्ध को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने के लिए अपना निर्णय किया है। निःसंदेह १६ साल की लंबी प्रतीक्षा और परिश्रम के बाद पहले फल को देखकर समिति और भी हिम्मत और विश्वास के साथ आगे बढ़ना चाहती है और श्री इन्द्रचन्द्र जी का इसके लिए विशेषरूप से अभिनन्दन करती है।

समिति की इस बैठक में राजस्थान और मध्यभारत में डेपुटेशन के दौरे की रिपोर्ट भी रखी गई जिसकी सफलता और सुझावों पर विचार किया गया। इस दौरे में श्रमण संघ के मुनियों ने डेपुटेशन के काम में बड़ी दिलचस्पी के साथ सहयोग दिया, उत्साह बढ़ाया, और आशा से भी अधिक स्पष्टरूप में उपस्थित जैनजनता के सामने समिति के बनारस संबन्धी कार्यों का समर्थन किया और बताया कि इसमें उसका कितना कल्याण है। इन सब बातों के लिए नीचे हम सब का नाम न देकर केवल व्याख्यानी मुनियों का ही उल्लेख करते हैं, तथा हृदय से आभार मानते हैं।

बीकानेर में—मुनि श्री नेमिचन्द्रजी व श्री हनुमान प्रसाद जी महाराज

जोधपुर में—मंत्री पं० मुनि श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज

पालनपुर में—व्याख्यान वाचस्पति मुनि श्री मदनलाल जी और कविवर श्री अमरचन्द्र जी महाराज

नाथद्वारे में—प्रधान मंत्री श्री आनन्दऋषि जी महाराज

उदयपुर में—उपाचार्य श्रीगणेशीलालजी, मंत्री श्री प्यारचन्दजी और पं० मुनिश्री श्रीमलजी महाराज

रतलाम में—प्रसिद्धवक्ता मन्त्री श्री प्रेमचन्द जी महाराज

इन्दौर में—शास्त्री श्री सुशीलकुमार जी महाराज

कन्वोकेशन

ता० २१ दिसम्बर को बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी का ३५वाँ कन्वोकेशन इसके वाइस-चान्सलर आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में सपन्न हुआ। दीक्षान्त भाषण बनारस के सुप्रसिद्ध व वयोवृद्ध विद्वान डा० भगवानदास जी ने किया। भाषण मार्मिक तथा विद्वत्तापूर्ण था। जिसमें आज की कई समस्याओं पर अनुभव एवं तर्क के बल पर गहरा प्रकाश डाला था। पहले के कन्वोकेशन जहाँ शान व शौकत से मनाए जाते थे, वहाँ इसकी विशेषता थी एकदम सादगी और शांत वातावरण। इसका बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि बाहर के किसी राजनैतिक नेता या बड़े विद्वान को नहीं बुलाया गया था। इस वर्ष डाक्टरेट आदि की सम्मानित डिग्रियाँ भी किसी को नहीं दी गई। जिन्होंने वर्षों तक जीजान से परिश्रम किया था, उन्हीं को यह मिलीं।

यह विशेष प्रसन्नता की बात है कि श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के सर्वप्रथम रिसर्च स्कालर श्री इन्द्रचन्द्र जी को इसी कन्वोकेशन पर पी० एच० डी० की डिग्री मिली है। इससे विद्याश्रम के कार्यकर्ताओं को ही नहीं, बल्कि समूचे जन समाज को प्रेरणा व प्रोत्साहन मिला है। जिसका स्पष्ट प्रमाण है उक्त महानिबन्ध को प्रकाशित करने के लिए बीकानेर के प्रमुख उदार व्यक्तियों ने सारा खर्च उठाना स्वीकार किया है। यह निबन्ध एक तरह से उच्चकोटि के नवीन साहित्य का निर्माण है। जिसमें मुख्यरूप से आत्मा और ज्ञान के विषय में गंभीर विचार किया गया है। सचमुच इस तरह का साहित्य ही विश्व के सामने रखा जा सकता है।

—अधिष्ठाता

नवम्बर १९५२ से

श्रमण

का चौथे वर्ष में प्रवेश !

'श्रमण' के विषय में कुछ सम्मतियाँ—

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—

'श्रमण' का नया अंक देखा, बहुत सुन्दर लगा। इसमें प्रकाशित लेख और कविताएँ बहुत अच्छी हैं। आशा है 'श्रमण' इसी प्रकार सदा उन्नति करता जायगा।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी—

'श्रमण' को देखकर प्रसन्नता हुई। यह अपने नाम को सार्थक करता है। इस सुरुचिपूर्ण और स्वस्थ प्रेरक पत्र का चिरन्तन अभ्युदय चाहता हूँ। आशा है इसे सबका स्नेह-सहयोग मिलेगा।

श्री वृन्दावन बिहारी मिश्र (सम्पादक-'कल्पना' हैदराबाद)—

'श्रमण' की खूब प्रगति हो, यही हमारी कामना है

'किशोर', पटना—

पाठ्य सामग्रियाँ सुरुचिपूर्ण ज्ञानवर्धक और मननीय हैं। कविता, कहानी और लेखों का मसाला पत्रिका के मानदण्ड की प्रौढ़ता प्रदान करता है।

'विशाल भारत', कलकत्ता—

जैन और अजैन सभी को इसमें कुछ ज्ञातव्य बातें प्राप्त होंगी

'अवन्तिका' पटना—

इसमें जैन धर्म सम्बन्धी लेखों का प्राचुर्य तो है ही पर वे लेख सबके लिए ज्ञानवर्धक हैं। 'श्रमण' की हम सफलता चाहते हैं।

'देशबन्धु' मथुरा—

अनुसंधान, समाज और संस्कृति, नई राह नई दिशा आदि स्तम्भ यथा नाम तथा गुण हैं। कहानी, कविताएँ भी विद्वत्तापूर्ण हैं। प्रयत्न सराहनीय है।

हमें विश्वास है कि 'श्रमण' का नया रूप आपको भी पसन्द आएगा
आज ही ४) भेजकर नए वर्ष में ग्राहक बनें
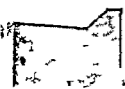
व्यवस्थापक,

'श्रमण', जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५

फरवरी १९५३

नर्ष ४ अक ४

जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ ॥
चर मे अप्पा दतो, सजमेण तवेण य ।
माऽह परेहि दम्मतो, बधणेहिं वहेहि य ॥

—जो नीर दुर्जय सग्राम म लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि नह एक अपने आपको जीतले तो यह उसकी विजय सबसे बढ़ कर होगी।

—दूसर लोग मेरा वध बधनादि से दमन करें, इसकी नजाय में सयम और तप से अपना दमन करूँ, यह कहीं अच्छा है।

—उत्तराध्ययन

★

सम्पादक

मोहनलाल मेहता एम ए

★

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

वनारस—५

इस अंक में—

श्रमण के विषय में—

१ श्रमण प्रत्येक अंग्रेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२ ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।

३ श्रमण में सांप्रदायिक वादविवाद को स्थान नहीं दिया जाता है।

४ लेखादि प्रकाशित करना या न करना संपादक की इच्छा पर निर्भर है।

५ प्राप्त हुए लेखादि वापिस नहीं भेजे जाते। लेखादि भेजते समय उनकी एक प्रति अपने पास रख लेना ठीक होगा।

६ अप्रकाशित रचनाएँ ही श्रमण में प्रकाशित होने के लिए भेजी जानी चाहिए।

७ सम्पादन-संबंधी पत्र-व्यवहार संपादक से करें एवं व्यवस्था संबंधी पत्र व्यवहार व्यवस्थापक से करें।

८ ग्राहक पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस ५

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

फरवरी वर्ष ४
१९५३ अङ्क ४

इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

जग भला बुरा जो कुछ कहता, कहने दो
वह यदि मुझ पर हँसता है तो हँसने दो
मैं यदि चुप हूँ, तो मुझको चुप रहने दो
मैं जैसा भी, जो कुछ भी हूँ—रहने दो

मुझको न जगत से कुछ लेना या देना
मैं जग से कुछ व्यवहार न हूँ अब रखता
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

जगने मुझको अब तक न तनिक पहिचाना
इतने दिन साथ रहा, पर मुझे न जाना
जो जग ने कहा, खुशी से मैंने माना
इसलिये जगत ने छला मुझे मनमाना

मैं शान्त रहा, सब सहा, न कुछ भी बोला
फिर भी जग मुझको दगाबाज है कहता
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

मैंने जग के हित अपनी सुनी बुराई
अवसर पर दे दी संचित सभी कमाई
मैंने अब तक जो जग की करी भलाई
बदले में पाई केवल सदा बुराई

सुन रहा, देखता अपनी आँखों से—'जग
नेकी को बदी, बदी को नेकी कहना'
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

मैंने न अभी तक जग से कुछ भी पाया
उल्टे मुझ पर ही जग का मन ललचाया
खुद ले प्रकाश, दी मुझको केवल छाया
मैं जान गया हूँ जग की सारी माया

जग जैसा भी है, रहने दो, मुझको क्या
मेरा न कभी कुछ बनता और बिगड़ता
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

दो दिन के सब मेहमान, चले जाएँगे—
कल या परसों, मेरा क्या ले जाएँगे
यदि समझाऊँ भी आज, न वे मानेंगे
पर कल तक स्वयं समझ सब कुछ जाएँगे

बस केवल यही सोच, चुप रह, मौजीमन
मैं अपने में ही मस्त हूँ रहा करता
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

क्यों बनूँ जगत के लिए आज दीवाना
है शमा न बुझती, जल जाता परवाना
मेरे रोदन को सुख का एक तराना
जग समझा करता अफसाने को गाना

सीमित मेरा अस्तित्व जगत में ही, पर
मैं उससे बचकर दूर-दूर ही रहता
इसलिए न मैं परवाह जगत की करता !

—महेन्द्र 'राजा'

बन्धन से अलंकार

सुश्री मोहिनी शर्मा

अलकारों की उत्पत्ति कैसे हुई, नारी इनकी ओर आकर्षित क्यों हुई ? आदि कुछ ऐसे प्रश्न ह जिनके विषय में मेरे विचार से अधिकाश व्यक्ति अनभिज्ञ होंगे। और वास्तव में यह ह भी आश्चय की बात। अलंकार—जो आज नारी का सुहागचिह्न माने जाते ह, उन्हीं के विषय में नारी स्वय कुछ न जाने ? कितना बडा अज्ञान ह यह नारी का।

उपरोक्त प्रश्नो की दृष्टि से यदि म अलकारों की उत्पत्ति बतलाने के लिए उनकी उत्पत्ति से अब तक की स्थिति को तीन कालों में विभक्त करूँ तो अनुचित न होगा।

वे तीन काल हो सकते ह—आदि काल, मध्य काल एव उत्तर काल।

आदि काल—यह सृष्टि का प्रारम्भिक काल था। उस समय सम्पूण विश्व पर एकमात्र प्रकृति का आधिपत्य था और प्रकृति के आश्रय में रहने वाला मानव जगली जानवर का प्रतिरूप था। विवस्त्र रहने वाली एव पहाडी कन्दराओं में निवास करने वाली आदि मानव जाति के जगली फल एव जगली जानवर ही मुख्य आहार थे। उस समय सामाजिक विधान न थे। न ही कोई धम था। आदि मानव जाति क्षुधा निद्रा, काम और क्रोध के अतिरिक्त और कुछ जानती ही न थी। प्रकृति की प्रत्येक शक्ति से वह अपरिचित थी।

उस समय कोई भी सामाजिक विधान न होने के कारण विवाह आवश्यक न था। नारी एक भोग्य वस्तु थी जिसे जब जो चाहता, अपना लेता था। यही अलंकारों का उत्पत्ति काल था।

सृष्टि के इस आरम्भिक काल में भी मानव में अन्य वृत्तियों के साथ ही साथ रागात्मक वृत्ति भी विद्यमान थी। अत एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से उदासीन रहना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। यही कारण ह कि उन लोगों के अपने अपने दल होते थे, जिनमें नर नारी दोनों ही सामान्य रूप से रहते थे।

यदा कदा उन दलों में आपस में युद्ध भी हो जाया करते थे। युद्धों के प्रधान कारण होते थे—सुन्दर वासस्थान, आहार की सुविधा और वासना तृप्ति का साधन नारी। नारी में उस समय भी सौन्दय था। प्राकृतिक नग्न सौन्दय।

युद्ध में जो दल जीत जाता था वह अपनी इच्छित वस्तुओं पर अधिकार कर लेता था जिनमें नारी भी एक थी। परन्तु एकमात्र अधिकार कर लेने से ही नारी उसकी नहीं हो जाती थी। वह अपने पूर्व दल में भाग जाने की चेष्टा करती थी उस दल में—जिसमें उसने जन्म लिया था, जिसके साथ खेल कूद कर, पल कर वह बड़ी हुई थी और जिसके प्रत्येक अंग प्रत्यंग से वह पूर्णतया परिचित थी।

नवीन दल में नवीन व्यक्तियों के मध्य रह कर वह ऊब उठती थी और वहाँ से निकल भागने का प्रयत्न करती थी।

और प्रायः भाग भी जाती थी।

आरम्भ में पुरुष उससे धोखा खाता रहा पर धीरे धीरे उसका मानसिक विकास हुआ और उसने उसे बन्धनों में बद्ध करना प्रारम्भ किया। वह उसे उस समय तक बन्धनों में रखता था जब तक कि वह अपने पूर्व दल को पूर्ण रूप से विस्मृत नहीं कर देती थी।

उस समय मानव सिवाय पाषाण—खण्डों के अन्य किसी भी वस्तु को पहचानने की क्षमता नहीं रखता था। नारी के हाथों और पैरों में पाषाण खण्ड इस प्रकार बाँध दिए जाते थे जिससे वह सुविधानुसार कुछ चल फिर तो सके पर दौड़ नहीं सकती थी।

चिह्न-स्वरूप वह नारी के नाक-कानों में भी कभी कभी पत्थर की कई छोटी मोटी चीजें डाल देता था जिससे वह पहचानी जा सके।

प्रारम्भ में ये समस्त वस्तुएँ नारी को खलती रहीं, वह उनसे छूटने का प्रयत्न करती रही। उनसे उसे घृणा थी अत्यधिक घृणा क्योंकि ये सब वस्तुएँ उसकी स्वतंत्रता में बाधक थीं। पर पुरुष के समक्ष शारीरिक बल में कम और कोमल नारी उनसे किसी प्रकार भी स्वतन्त्र न हो पाती और मन मसोस कर रह जाती थी।

मध्यकाल—धीरे धीरे समय बदलता गया और उसके साथ साथ मानव बुद्धि का भी विकास होता गया। अब वह नग्न न रहकर वृक्ष की छाल, पत्तों और जानवरों के चमड़ों से अपने शरीर को ढकने लग गया।

बुद्धि के साथ साथ उसकी हृदयगत भावनाओं में भी वृद्धि हुई और वह प्रत्येक वस्तु में कलात्मक सौंदर्य देखने का इच्छुक रहने लगा। वह अपने व्यवहार में आनेवाली सामान्य वस्तुओं को कलात्मक रूप देने लगा।

उसने नारी के बन्धनों को भी काट छाँट कर सुन्दर बना दिया। आरम्भ में जो वस्तुएँ बदसूरत और बेडौल लगती थीं वे ही अब सुन्दर लगने लगीं। नारी को आजन्म उन्हीं को धारण करना पड़ता था और वह उन्हीं में बँधी अपने अस्तित्व का बलिदान कर, घुट घुट कर समाप्त हो जाती थी। उसकी स्वतन्त्रता समाप्त हो चुकी थी, यहाँ तक कि वह उसे शनै शनै भूलती जा रही थी। पर फिर भी अपनी विवशता पर उसे दुःख था, उन बन्धनों से उसे घृणा थी। यही कारण था कि अनेकों युग बीत जाने पर भी वह उन्हें देख सिसक पड़ती थी और चाहती थी कि पुरुष उसे उन बन्धनों से मुक्त कर दे।

उत्तर काल—अब तक मानव बुद्धि का काफी विकास हो चुका था। अब वह असभ्य और जंगली जाति का न रहकर सभ्य नागरिक बन रहा था। सामाजिक विधानों का निर्माण हो रहा था।

इसी समय मनुष्य ने विभिन्न धातुओं की खोज की जिनमें प्रमुख थीं—सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात आदि। इन वस्तुओं में चमक थी और था आकर्षण। मनुष्य अपने पर गर्व कर उठा। यही वह समय था जब नारी के बन्धनों ने अलंकारों का रूप धारण किया।

पाषाण निर्मित बन्धन अब सोना, चाँदी आदि धातुओं के अलंकार बन गए। और तब पुरुष ने ये चमकते हुए अलंकार नारी के विभिन्न अंगों में पहना दिए। उनमें चमक थी, कला थी और था आकर्षण। उन्हें अंगों में धारण कर नारी का सौंदर्य द्विगुणित हो उठा। नारी उन पर मुग्ध हो उठी और उसने उन्हें अपना लिया। पर वह नहीं जान सकी कि पुरुष ने उसे अलंकार पहना कर कितना विवश कर दिया, उसकी उन्नति के समस्त पथ अलंकारों की चमक द्वारा बन्द कर दिए गए। नारी उन्हीं में खो गई।

× × × ×

और फिर वे अलंकार बन गए नारी का सुहाग चिह्न !

और वर्तमान युग की नारी इसी तर्क में पड़ी है—बन्धन या अलंकार ?

उसकी आत्मा कहती है—बन्धन !

नहीं अलंकार !—मन विद्रोह कर उठता है।

और अन्त में वह अपने आप में ही उलझ कर रह जाती है—कुछ हर्षित सी, कुछ पीड़ित भी

आलोचक

श्री विजय मुनि

एक बार ब्रह्मा अपार जलराशि के मध्य कमलासन पर बैठे थे। शून्य में बैठे-बैठे उन्हें अपना एकत्व अखरने लगा। सोचने लगे—"संसार की रचना करूँ, तो कैसा रहे? संसार—एक ऐसा संसार, जिसमें कीड़ी से कुञ्जर तक के पशु हों, मच्छर से गरुड़ तक के पक्षी हों, वानर से नर तक के मनुष्य हों, और ! और क्या हो? सुख-समृद्धि से पूर्ण स्वर्ग तथा क्लेश संताप से पूर्ण नरक ! जिससे कि स्वर्ग के लोभ से और नरक के भय से मेरी प्रजा पाप न कर सके।"

"मैं संसार रचना का प्रयत्न कर रहा हूँ? पर, मेरी कृति अच्छी है अथवा बुरी, इसकी परीक्षा कौन करेगा? उसके गुण-दोषों की मीमांसा कौन करेगा?" यह प्रश्न ब्रह्मा से संसाररचना से पूर्व ही समाधान माँगता था।

ब्रह्मा ने बहुत-कुछ सोच विचार कर निर्णय किया—"सर्व प्रथम एक टीकाकार अथवा आलोचक रचूँ, जो मेरी कृतियों में गुण-दोषों की मीमांसा कर उन्हें उपयोगी सिद्ध कर सके। अन्यथा मेरी सृष्टि-कृति सुन्दर न बन सकेगी।"

ब्रह्मा ने एक समर्थ टीकाकार की रचना कर उससे कहा—"देखो, मैं कुछ भी न रचूँ, उसकी जाँच पड़ताल तुम करते रहना। मेरी कृतियों के गुण-दोषों की सूचना मुझे देते रहना। पर इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारी दृष्टि केवल दोष-दर्शन में ही स्थिर न हो जाए। टीकाकार अथवा आलोचक का कर्तव्य तो यह है कि वह प्रामाणिकता के साथ जहाँ दोषों को देखता है, वहाँ वस्तु के गुणों का प्रकाशन भी करता है। तभी किसी कृति की उपयोगिता या अनुपयोगिता सिद्ध हो सकती है। एक पक्षपातिनी दृष्टि वस्तु के स्वरूप को नहीं समझ सकती।"

ब्रह्मा ने संसार रचना का कार्य प्रारम्भ कर दिया। कार्य इतनी तेजी से चला कि टीकाकार को अवकाश ही न मिलता। जब तक वह एक वस्तु

— परीक्षण कर पाता, पचासों दूसरी कृतियाँ उसके सम्मुख उपस्थित हो
तीं। वह तंग आ गया। पर, इन्कार भी कैसे करे? अपनी नाक का
ाल आगे खड़ा था। अन्त में टीकाकार ने अपनी द्वेष बुद्धि का सहारा
कर आलोचना के तीखे तीर छोड़ना प्रारम्भ किए ताकि ब्रह्मा अपनी रचना
द कर दे।

"ब्रह्मा! जरा विराम करो! तुम्हारी कृतियों में उत्तरोत्तर दोष बढ़ते
ा रहे ह। यह मुझ से सहन न हो सकेगा। तुम्हारी यह कीडी! इतनी
की फुल्की ह कि मेरी फूँक से ही गज भर दूर जाकर पडती ह। तुम्हारा
ह कुञ्जर! इतना भारी भरकम ह कि इसके मरने पर इसे श्मशान भूमि
क ले जाने की ताकत किसी में नहीं। तुम्हारा यह उष्ट्र! इस की ग्रीवा
तनी लम्बी और इस का शरीर इतना ऊँचा ह कि यह तुम्हारी सष्टि के सारे
रे भरे वक्षों को खाकर समाप्त कर देगा। तुम्हारा यह वानर! इतना
चल और इतना शतान ह कि मत्त रावण की लका में आग लगा कर उसे
स्म कर देगा। कलियुग में जब इसे वनों में फल फूल न मिलेंगे, तब किसानों
ी खेती को हानि पहुँचाएगा। तुम्हारा यह मानव! इसकी छाती में एक
खिडकी आवश्यक थी जिससे इसके मानस में रचे जाने वाले कुचक्रों का
ंडाफोड हो जाता।"

ब्रह्मा अपनी इस मानव रूप सवश्रेष्ठ कृति की दुरालोचना से तिलमिला
उठे। उन्होंने आवेश को रोक विवेक पूण स्वर में कहा, "मने तुझे ही
हले रचा, यही मेरी एक भूल ह। प्रतीत होता ह कि तेरी बुद्धि द्वेषपूण हो
ई ह। तभी तो तुझे मेरी कृतियों में दोष ही दोष नजर आते ह।" ब्रह्मा
े मुख से सहज ही निकल पडा—

"विद्वांसो यदि मम दोषमुदगिरेयु, यद्वा ते गुण-गणमेव कीतयेयु।
तत् तुल्य बत मनुते मनो मदीयम, सत यप्ट पुनरव मात मन्द॥

कला का पारखी विद्वान् यदि मेरी कृतियों में दोष ही दोष अथवा
गुण ही गुण देखे, तो मेरा मन सन्तोष पा सकता है। पर एक मूख यदि
मेरे दोष को भी गुण कहता ह तो वह मुझे अखरता—बुरा लगता ह।

जन स्थानक }
लोहामडी, आगरा }

क्रोध आदि वृत्तियों पर विजय कैसे

अरविंद

क्रोध की घटना पर विचार करो और देखो कि कितनी छोटी सी बात पर तुम्हें क्रोध आ गया और तुम उबल पड़े। यूं तो आगे चलकर तुम्हें बिना बात के भी क्रोध आने लगेगा। विचार करो कि ऐसी चेष्टाएँ कितनी मूर्खतापूर्ण होती हैं। जब क्रोध आए तुम उसे इसप्रकार शान्तिपूर्वक देखो मानो तुम्हारी सत्ता के अंदर किसी और को क्रोध आया हो। ऐसा करने से उसे दूर करने में सचमुच ही कोई कठिनाई नहीं होगी। यह पूर्णतया सम्भव है कि जब क्रोध फूट आए तब भी हम अपनी सत्ता के एक भाग में पीछे हट कर स्थित हो जाएँ और निर्लिप्त समचित्तता के साथ काम का निरीक्षण करें। कठिनाई यह है कि तुम डर और घबरा जाते हो। इस कारण क्रोध तुम्हारे मन को अधिक आसानी से वश में कर लेता है जो हमें नहीं करना चाहिए।

अगर हमारी प्रकृति में क्रोध प्रबल तत्व है तो हम उसे थोड़े समय के लिए कोरे बल प्रयोग से दबा सकते हैं और इसे आत्मनियंत्रण कह सकते हैं, परन्तु अन्त में अतृप्त प्रकृति हमें हटा देगी और यह विकार आसुरी आवेश शक्ति को लिये हुए अप्रत्याशित क्षण में हम पर लौट आएगा। केवल दो तरीके हैं जिनसे हम विकार को जो हमें गुलाम बनाने की चेष्टा करता है, निश्चित रूपेण जीत सकते हैं। एक तो है अन्य भाव के स्थापन की प्रणाली, अर्थात् जब कोई विकार उठे तब उसके विरोधी गुण को ला बैठाना—क्रोध के स्थान पर क्षमा, प्रेम या सहिष्णुता के विचारों को, काम के स्थान पर पवित्रता के ध्यान-मनन को, अभिमान के स्थान पर नम्रता और अपने अवगुणों या अपनी तुच्छता के विचारों को, यह राजयोग की विधि है, परन्तु कठिन, धीमी और अनिश्चित है क्योंकि प्राचीन परम्पराएँ और योग का आधुनिक अनुभव दोनों यह दिखाते हैं कि वे लोग जिन्होंने नियम ही वर्षों तक उत्कृष्ट आत्म प्रभुत्व प्राप्त किया हुआ था, उस बीज की उपेक्षापूर्ण यामिनी से सहसा

आश्चर्यचकित रह गए जिसे उन्होंने मृत या सदा के लिए वशवर्ती समझ लिया था। परन्तु यह स्थापन शली यद्यपि धीमी ह तथापि यह प्रकृति की साधारणतम विधियो में से एक ह और अधिकतर इस उपाय से ही जिसे बहुधा अनजान में या जान अनजान में प्रयुक्त किया जाता ह, मनुष्य का चरित्र एक जीवन से दूसरे जीवन में या एक जीवन की अवधि में भी बदलता और विकसित होता ह। यह शली चीजों को उनके बीज तक नष्ट नहीं करती और वह बीज जिसे योग से जलाकर राख नहीं कर दिया जाता फिर फूट निकलने और पूण तथा शक्तिशाली वृक्ष के रूप में पनप उठने में सदा समय रहता ह। दूसरा तरीका ह विकार को भोग (Enjoyment) भोगने देना ताकि उससे जल्दी छुटकारा हो जाय। जब वह अति भोग से तृप्त अथवा श्रान्त कर दिया जाता ह तो वह दुबल और जजरित शक्तिवाला हो जाता ह और उसके बाद एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती ह जो कुछ समय के लिए विरोधी शक्ति, प्रवृत्ति या गुण को स्थापित कर देती ह। अगर योगी उस अवसर को निग्रह के लिए ग्रहण कर लेता ह तो प्रत्येक उपयुक्त अवसर पर उस प्रकार दुहराया हुआ निग्रह अत्यधिक प्रभावजनक हो जाता है यहाँ तक कि वह उस वृत्ति के बल और जीवन शक्ति को इतनी पर्याप्त मात्रा में न्यून कर देता है कि फिर अन्तिम प्रक्रिया रूप सयम का प्रयोग किया जा सकता ह। भोग और प्रतिक्रिया की यह विधि भी प्रकृति की एक प्रिय और सावभौम विधि ह, परन्तु यह अपने आप में कदापि पूण नहीं ह और अगर इसे स्थिर शक्तियों या गुणा पर प्रयुक्त किया जाय तो यह विरोधी प्रवत्तियों के उतार चढ़ाव क ऐसे खल को जारी कर देती ह जो प्रकृति की क्रियाओं के लिए अत्यधिक उपयोगी ह परन्तु आत्मप्रभुत्व की दृष्टि से व्यथ और अनिर्णायक ह। यह विधि तभी प्रभावजनक हो पाती ह जब इसके बाद सयम का प्रयोग किया जाता ह। योगी वत्ति को केवल एक खेल के रूप में देखता ह जिससे उसका कुछ सबंध नहीं ह, जिसका वह केवल द्रष्टा ह, क्रोध काम या मद उसका नहीं ह, वह विश्वजननी का ह जो अपने प्रयोजनो क लिए उसे पैदा करती और शांत करती ह। तो भी जब वृत्ति प्रबल, प्रभुत्व जमाने वाली और अक्षीण शक्तिवाली होती ह तब यह मनोभाव सच्चे हृदय मे धारण नहीं किया जा सकता और सचाई से इसे अनुभव किए बिना बौद्धिक तौर पर इसे धारण करने का प्रयत्न मिथ्याचार झूठा आचरण या मक्कारी ह। जब वृत्ति बार बार किए गए भोग और निग्रह से कुछ कुछ नि सत्व हो चुकी हो तो प्रकृति, आत्मा या पुरुष की आज्ञा से, अपनी ही पदा की हुई उस वस्तु के

साथ वस्तुत बर्ताव कर सकती है। यह सर्वप्रथम वैराग्य द्वारा अपने स्वनत्व रूप में घृणाभाव के प्रकट हुए वैराग्य द्वारा उसके साथ पेश आती है, परन्तु यह भाव इतना उग्र है कि स्थायी नहीं रह सकता, तो भी यह उस वृत्ति के मूल कारण से मुक्त होने की गहरी इच्छा के रूप में अपना एक संस्कार पीछे छोड़ जाता है, जो विकार की प्रत्यावृत्ति और अल्पकालिक राज्य के बाद भी जीवित बचा रहता है। तदनंतर उसकी प्रत्यावृत्ति को अधीरतापूर्वक किन्तु असहिष्णुता की किसी तीव्र भावना के बिना देखा जाता है। अन्त में परम उदासीनता प्राप्त हो जाती है और प्रकृति की साधारण प्रक्रिया से प्रवृत्ति के अन्तिम निष्क्रमण का उस संयमी की सच्ची भावना से निरीक्षण किया जाता है जिसे यह ज्ञात है कि वह साक्षी आत्मा है और उसे किसी वृत्ति के निरोध के लिए उससे केवल संबंध विच्छेद कर लेना है। उच्चतम अवस्था वृत्ति से मुक्ति को प्राप्त कराती है या तो लय के रूप में जब वृत्ति सर्वथा और सदा के लिए नष्ट हो जाती है, या फिर अन्य प्रकार के छुटकारे के रूप में जब आत्मा जानती है कि वृत्ति ईश्वर की लीला है और वह इस बात को उस पर छोड़ देती है कि वह (ईश्वर) वृत्ति को बाहर निकाल दे या उसे अपने उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करे। यह कर्मयोगी की मनोवृत्ति है, उस कर्मयोगी की जो अपने आप को परमेश्वर के हाथों में सौंप देता है और केवल उसके लिए काम करता है यह जानते हुए कि जो शक्ति उसमें काम करती है, वह ईश्वर की ही शक्ति है। आत्मसमर्पण की इस वृत्ति का परिणाम यह होता है कि सर्वभूत महेश्वर निज भक्त का सब भार स्वयं संभाल लेते हैं और गीता की प्रतिज्ञा के अनुसार अपने सेवक और प्रेमी को सब पाप और बुराई से मुक्त कर देते हैं। उस अवस्था में वृत्तियाँ आत्मा पर प्रभाव डाले बिना शरीर की मशीन में काम करती रहती हैं जब महेश्वर अपने प्रयोजन के लिए उन्हें उभारते हैं। यह है निर्लिप्तता, लीला के अन्दर पूर्ण स्वतन्त्रता की स्थिति।

—जीवन साहित्य

अपरिग्रहवाद

रघुवीर शरण दिवाकर

[गताङ्क से आगे]

(८)

मजबूरी क्यों ?

इस तरह हम देखते ह कि 'ट्रस्टीशिप की विचारधारा अपने में ही गठी हुई नहीं ह, वह अस्त-व्यस्त ह। और उसे मजबूरी का इलाज समझना भी बेमानी ह। पहले तो यह ही बेतुकी बात ह कि माग सामने नहीं ह तो मंजिल को ही आँखों से ओझल कर दें, या व्यवहार को इतना महत्त्व दे दें कि उसके लिए आदर्श को ही नीचे गिरा दें। साधन ठीक हों, यह आग्रह माना जा सकता ह और इसे मानकर साधनों का अनुसधान चालू रह सकता ह। आखिर, यह मजबूरी का रोना रोना कहाँ तक शोभनीक ह ? गांधी जी ने कहा ह कि जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं के साधनो पर जनता का अधिकार होना चाहिए, उन्हें लेन-देन की चीज हरगिज नहीं बनने देना चाहिए।[1] स्पष्टत यहाँ समाजीकरण का आग्रह ह, भले ही वह एक हद तक ही हो। पर प्रश्न तो यह ह कि इन साधना पर व्यक्ति को आज जो आवश्यकता से अधिक अधिकार प्राप्त ह, उन्हें जनता को सौंपने के लिए किस उपाय का सहारा लेना होगा ? वह रजामन्दी से न दे, तो ? कानून बनाना नहीं ह, क्योकि यहाँ हिंसा' ह। फिर क्या किया जाय ? सत्याग्रह, पिकेटिंग, असहयोग आन्दोलन ? तो फिर क्या न अपरिग्रह की साधना ही इन अहिंसास्त्रा से की जाय ? क्यों फिर अकारण चोरी को जायज बनाने की

[1] मेरी राय में हिन्दुस्तान की और सार ससार की अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसमें बिना खान और कपडे के कोई भी रहने न पावे। यह आदर्श तभी सिद्ध होगा जबकि जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताएँ पूरी करने के साधना पर जनता का अधिकार रहगा। जिस प्रकार भगवान की पदा की हुई हवा और पानी सब को मुफ्त मुयस्सर होना ह, या होना चाहिए उसी तरह य साधन भी सबको बरोकटोक मिलने चाहिए। उन्हें दूसरा के हडपने के लिए लेन देन की चीज हरगिज नहीं बनने देना चाहिए।

—सर्वोदय, जनवरी १९३९

मजबूरी में अपने को डाला जाय[1] ? गुलाम राष्ट्र को आजाद करने के लिए इन अस्त्रों का संचालन हम कर सकते हैं और संसार की एक सब से बड़ी शक्ति का मोरचा ले सकते हैं, फिर क्या कारण है कि अपने ही भीतर के पूंजीवादी वर्ग को नहीं झुका सकते ? क्या उनकी मिलों, फैक्टरियों, दुकानों या गोदामों पर पिकेटिंग नहीं की जा सकती है ? क्या उनके साथ असहयोग नहीं किया जा सकता है ? क्या उनके माल का बायकाट नहीं किया जा सकता है ? क्या उनका पूर्ण बहिष्कार नहीं किया जा सकता है ? आखिर अहिंसा के भी शस्त्रागार में क्या कमी है जो दीनता से भरी बातें कही जायें और अपनी विवशता व असहायता पर आँसू बहाए जायें ? एक बाहरी शत्रु का हृदय-परिवर्तन कराने का दावा किया जा सकता है तो फिर अपने ही कुछ भाइयों को राह पर लाना क्या कठिन है ? न लें कानून का सहारा, पर अहिंसा के दिव्यास्त्र को तो जंग न लगाएं ? अहिंसात्मक उपाय सामने नहीं हैं यह कह कर अहिंसा को उपहास का विषय न बनाएं ? अहिंसा की दुहाई देते न थकें, अहिंसा के पुजारी बनें, फिर क्यों इसे विवशता व अकर्मण्यता का परिधान पहिनाएं ? जैसे जैसे परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहेगा, अहिंसात्मक अस्त्रों के उपयोग का तरीका बदलता रहेगा। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। पर आविष्कार का मार्ग तो प्रशस्त रखें। फिर क्यों न अपरिग्रह के महत् आदर्शों की बात साफ साफ कहें और घोषणा करें कि हम अहिंसा के पथ पर चलकर अपरिग्रहवादी क्रान्ति का सूत्रपात करेंगे, और तब तक चैन न लेंगे जबतक पूंजीवाद या परिग्रहवाद निर्मूल न हो जायगा, कोई भी व्यक्ति आवश्यकता से अधिक पदार्थों पर अधिकार जमाए न रख सकेगा, कोई चोरी न कर सकेगा तथा उत्पत्ति व उपभोग के समस्त साधनों पर जनता का अधिकार न हो जायगा ? आखिर, अपने लक्ष्य को ही गिराकर 'ट्रस्टीशिप' से आँसू पोंछने का शिकवा हम क्यों करें ?

यहाँ अहिंसात्मक पद्धति को लेकर भी कई प्रश्न खड़े होते हैं। उनमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सत्याग्रह भी हिंसा है ? जब प्रतिपक्ष जनता परेशान होकर विधि-विधान बनाए तो क्या वह विधान हिंसा पर

१—प्रत्येक उद्यमी मनुष्य का आजीविका पाने का अधिकार है मगर धनोपार्जन का अधिकार किसी का नहीं। सब कुछ या धनोपार्जन ग्राम है चोरी है। जो आजीविका से अधिक धन लेता है वह जान में हो या अनजान में, दूसरों की जीविका छीन लेता है। —हिन्दी नवजीवन १-०-२०

आधारित ह ? और इस कारण क्या समाज का हर नियम, राज्य का हर कानून हिंसात्मक ह ? यदि हिंसा—अहिंसा को देखने का यही दृष्टिकोण ह, तब तो मानव जीवन एक ऐसी पहेली बन जाएगा जो सुलझाए न सुलझेगी ? फिर तो फौज, पुलिस, कचहरी, न्याय प्रणाली, दण्ड व्यवस्था, सभी का अंत करना होगा। पर क्या कभी यह हो सकेगा ? जिस अराजकता का स्वप्न, क्या गांधीवादी और क्या साम्यवादी, सभी अपने-अपने ढंग से देखने ह, कभी साकार हो सकेगा ? कल्पना आखिर कल्पना ही ह। उसे लेकर आज के जीवन-संघर्ष की तदजन्य परिस्थितियों की अवहेलना करना क्या उचित ह ? और क्या यह संभव भी ह ? कल्पना का एक मूल्य ह, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कल्पना आविष्कार की जननी ह। वह बुद्धि की सखी व सहायिका ह। वह आदर्श प्रेरणा का स्रोत ह। वह निरन्तर यह चेतावनी देती ह कि हमारी आखिरी मंजिल क्या है ? जब भी हम लड़खड़ाते ह वह बांह पकड़ कर हमें संभालती ह। जब भी हम भटकते हैं, वह अंतर्ज्योति जगा कर हमें मार्ग दिखाती ह। इस तरह कल्पना महत्त्वपूर्ण ह, मूल्यवान ह। पर इसका यह अर्थ नहीं ह कि उसका ऐसा उन्माद हम पर छा जाए कि हम धरती पर न चलें, आकाश में ही उड़ने लगें। बहुमत को, अथवा हर नियम व कानून को हिंसा कहना बहुत कुछ ऐसी ही हवाई बात ह। उसे लेकर वर्गहीन, शोषण विहीन समाज-व्यवस्था के आदर्श को ही नीचे गिरा देना और मजबूरी का रोना रोना व्यर्थ ह, असह्य है।

पूँजीवाद का संरक्षण

हां, एक दृष्टि से मजबूरी की दुहाई काम की ह। वह पूँजीवाद को संरक्षण दे सकती ह, देती भी ह। 'ट्रस्टीशिप' की आड़ में पूजीवाद को किलेबंदी करने का अवसर मिलता ही ह। एक ओर कहा जाता ह कि आवश्यकता से अधिक धनग्रहण या धनसंचय करना चोरी ह, पर दूसरी ओर 'ट्रस्टी' का लेबिल लगा कर चोर को खुले आम चोरी करने की छूट दे दी जाती है। साथ ही जहां समाजवादी शक्तियों प्रवृत्तियों पर रोक लगाने के लिए अहिंसक साधना की कड़ाई पर बेतरह जोर दिया जाता ह वहां दूसरी ओर धन-संग्रह के साधनों के प्रति उपेक्षा दिखाई जाती ह। आखिर इसका क्या परिणाम हो सकता ह। भले ही बेईमानी से या गरकानूनी तौर पर धन का संग्रह किया गया हो, वह 'ट्रस्ट' की सम्पत्ति बन सकता ह ? श्री मश्रूवाला

के ये शब्द इसी ओर इंगित करते हैं—"कोई भी सम्पत्ति किसी के अधिकार में हो या अनेक व्यक्तियों से बने किसी मंडल के अधिकार में हो, और यह अधिकार उन्होंने उस समय के कायदे के अनुसार पाया हो या गैर कानूनी तौर पर पाया हो, लेकिन वे उसे अपने पास निजी उपयोग के लिए नहीं बल्कि समाज की ओर से समाज के उपयोग के लिए ही रख सकते हैं, अर्थात् उन्हें व दूसरों को समझना चाहिए कि वे उस सम्पत्ति के 'ट्रस्टी' या संरक्षक हैं।" इस तरह चोरबाजारी व रिश्वतखोरी करने वाला, इनकमटैक्स बचाने वाला, रकम गबन करने वाला, चोरी या डकैती करने वाला, गरज यह कि कैसे भी अनीतिपूर्ण उपायों से धन बटोरने वाला समाज का डाकू भी 'ट्रस्टी' बन सकता है, या यों कहिए कि पापाजीविका से संगृहीत धन 'ट्रस्ट' का विषय बन सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा ट्रस्टीशिप क्या नैतिक मूल्य रख सकता है? यहाँ तो साफ साफ पूँजीवाद व उसके सारे पापों का संरक्षण है।

प्रश्न—ट्रस्टीशिप भीतरी सुधार की अपेक्षा रखता है, बाहरी दबाव की नहीं। भीतरी सुधार ही सच्चा सुधार है। मजबूरी से दब कर यदि व्यक्ति किसी बात को माने या आचरण करे तो अंतःकरण से वह वफादार न होगा, और यह स्थिति भयप्रद ही होगी।

उत्तर—यही दृष्टि भ्रम है। यह ठीक है कि भीतरी सुधार ही सच्चा सुधार है। यह भी ठीक है कि मजबूरी से दब कर व्यक्ति किसी बात को माने या आचरण करे, तो अंतःकरण से वह वफादार न होगा। पर यह सब ठीक है एक हद तक ही। भीतर और बाहर का निकटतम संबंध है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं या एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। बाहर की परिस्थिति व वातावरण का व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है, अतः व्यक्ति के सुधार की दृष्टि से बाहर या समाज से आँख नहीं मींची जा सकती। हम पहले कह आए हैं कि व्यक्ति अपनी जगह महत्त्वपूर्ण है पर समाज भी तो आखिर व्यक्ति का ही प्रतिबिम्ब रूप है, वह व्यक्ति से पृथक् नहीं है। अतः व्यक्ति के सुधार के लिए यह आवश्यक है कि समाज का भी सुधार हो। खराब हालतों में पड़ कर भले से भला आदमी भी बिगड़ जाता है। बुरी संगति से बचना जो आम बात है वही तो यह है कि मन को दूषित वातावरण से बचाया जाय। अतः वातावरण का शुद्धीकरण व्यक्ति की शुद्धि के लिए अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि बाहरी दबाव भी भीतरी सुधार के लिए आवश्यक है।

हाँ, वह दवाव सही दिशा में हो, उस का तरीका ठीक हो, यह सतकता जरूरी ह। पर दवाव ही न हो, यह आग्रह हेय ह। अहिंसा का भी तो असर होता ही ह, और हर असर एक तरह का दवाव ह। शुरू शुरू में दवाव अवश्य खलेगा, पर जब वह अपना लक्ष्य सिद्ध कर लेगा या जब वह व्यक्तित्व के भीतरी सुधार का, व्यक्ति की मनोवृत्ति व दृष्टि बदलने का, काम निवटा लेगा तब वही प्रिय बन जायगा। अत बाहरी दवाव को ग़लत दिशा में बहकने से रोकने की बात हम कह सकते ह और कहना ही चाहिए, पर भीतरी सुधार के मुकाबले में उसे रखकर उसके विरुद्ध फतवा नहीं दे सकते। देंगे तो अन्याय करेंगे। सच यह ह कि भीतरी सुधार से बाहरी वातावरण बदलने में सहायता मिलती ह और बाहरी दवाव भीतरी सुधार करने में सहायक होता ह। दोनों एक दूसरे के विरोधी नहीं, सहायक ह। अत 'ट्रस्टीशिप' के समथन में जो भीतरी सुधार की इकतरफा बात कही जाती ह, उसमें काइ तथ्य नहीं ह।

जिला सूचना विभाग
रामपुर (उत्तर प्रदेश)

[क्रमश]

(पृष्ठ २२ का शेष)

करें। युग के अनुकूल नये नये साहित्य का अध्ययन एव चिंतन-मनन करके जीवन को कतव्यमय अथवा रचनात्मक बनाएँ।

यह निश्चत समझें कि साध्वी समाज के सहयोग से ही समाज में क्रान्ति हो सकती ह, नया जीवन आ सकता ह, तथा संगठन को अत्यधिक बल, नव उत्साह एव नव चेतना प्राप्त हो सकती ह। परन्तु सफलता तभी प्राप्त होगी जब साध्वी समाज अपने जीवन को परखकर प्रगति क पथ-पर कठोर एवं दृढ़ कदम उठाएगा।

अमर दांपत्य

जयभिक्खु

राजकुमारी राजुल का आज विवाह हो रहा था। राजा उग्रसेन की नगरी उत्सव व आनन्द में मग्न थी। नगरी के प्रत्येक द्वार पर सुवर्ण के स्तंभों पर इन्द्रनीलमणि के तोरण लटक रहे थे। राजमार्ग मुक्ता के रंगीन स्वस्तिकों से सुशोभित थे। कई नववधुओं ने अपने गृहांगणों में सुन्दर सुन्दर रंगीन चित्र बनाए थे।

श्रावण के आकाश में मेघ छाये हुए थे। ईशान कोण का वायु किसी बादल को तो खींच ले जाता था और किसी को धरती पर बरसा देता था। ऊँचे ऊँचे भवनों के शिखरों पर बैठे हुए मयूर नृत्य कर रहे थे। वे मानों मेघों के पीछे छिपे हुए किसी प्रियजन को अपनी कला का चातुर्य दिखा रहे थे।

द्वारका के राजा श्रीकृष्ण अपने लघुभ्राता नेमिकुमार की विशाल बारात लेकर विवाह कराने के लिए चले आ रहे थे। हस्ती, अश्व और शिविकाओं से भरी हुई यह बारात जहां ठहरती वहां एक छोटी सी नगरी बस जाती। उसकी शोभा और सजावट को देखने के लिए दूर दूर से लोग पंक्तियों में चले आ रहे थे। उत्सवप्रियता तो आर्यों का स्वभाव ही है।

राजा उग्रसेन आतुर थे। ज्यों ज्यों समय नजदीक होता जाता, बारात समीप आती जाती थी। आज द्वारका के यदुवंशियों का पूर्ण सम्मान करना था। प्रत्येक नृपति का स्वागत के मुक्तास्तंभों से सुशोभित शिविर देना था। दंतधावन के लिए आठ मधुयष्टि, अभ्यंग के लिए शतपाक व सहस्रपाक तेल, स्नान के लिए क्षीरसागर से लाया हुआ शीतल जल, सुगंध के लिए अगर, कुंकुम और चंदन, मुखवास के लिए सब सुगंधयुक्त तांबूल, [illegible] व गौ घी से बनाये हुए खाद्य पदार्थ और इक्षुरसादि मिष्टान्नों की योजना की

गई थी। अपूर्व सम्मान करना था। बारात का स्वागत ऐसा हो कि द्वारका के महारथी भी एक बार दांतो तले अंगुली दबाने लगें !

राज्यद्वार पर नगाड़े बज रहे थे और शहनाइयों के अमृत-स्वर तो समाप्त ही नहीं होते थे।

महारानी अन्तःपुर में तैयारियाँ करा रही थीं। अभी बारात आ पहुँचेगी, नगरद्वार पर मोतियो से स्वागत करने के लिए जाना पड़ेगा। वे तैयारी की शीघ्रता में कोमल गलीचो को दबाती हुई आगे बढ़ रही थीं। राज्यकुल की नववधुओं के उत्साह का कोई पार न था। उत्साहसूचक पादनूपुर शोर मचा रहे थे। तुरन्त ही गूँथे हुए केशकलापों से जब सिंदूर का प्रवाह गोरे गोरे गालो पर आकर रुक जाता तब एक दूसरे को देखकर हँसती हुई युवतियों के हास्य से सारा भवन हंस पड़ता।

यह सब तो ठीक, किन्तु राजकुमारी राजुल कहाँ थी ? शृंगार करने के निमित्त गई हुई राजकुमारी इतनी देर तक शृंगार भवन में ही क्यों रुक गई ? चार चार कुशल दासियाँ सेवा में हों और इतना विलंब !

वास्तव में इसमें कुशल दासियों का दोष न था। राजकुमारी एक आभूषण पहनती और तुरन्त दौड़कर झरोखे में खड़ी हो जाती। दूर दूर से आने वाले जनसमूह को देखती रहती। केश बिखर जाते, गूँथे हुए मोती वापिस निकल जाते।

'राजुल ! अभी से यह पागलपन ! नमिकुमार तो तेरा ही होने वाला है। बाद में खूब देखा करना। अभी तो धैर्य रख !" दासियाँ व्यंगबाण छोड़तीं। राजकुमारी बोलनेवाली पर चिढ़ जाती और वापिस आकर शान्त होकर बैठ जाती।

किन्तु हृदय की अभिलाषा को कौन रोक सकता है ? राजकुमारी कभी तो दासियों से नमिकुमार के पराक्रम की बातें पूछती, कभी किसी बहाने से रूपगुण की चर्चा करती, कभी विदूषिका मालती को आयुधशाला के शंखप्रसङ्ग का वर्णन करने के लिए कहती। इसी ढंग से शृंगार में विलम्ब होता जाता।

"राजुल ! बुरा न मानो तो कहूँ ! द्वारिका के अधिपति श्रीकृष्ण तो

नेमिकुमार के एक हाथ को भी नहीं झुका सके किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि तुम तो उनको पूरे के पूरे झुका दोगी।"

राजकुमारी चिढ़ गई और दासी के गाल पर धीरे से एक हल्की सी चपत जमा दी। यह देखकर अन्य दासियाँ भी हँस पड़ीं।

राजकुमारी चिढ़ती ही गई। इसी ढंग से समय व्यतीत होता गया।

बारात समीप आ पहुँची थी। सब राजा नगर प्रवेश के पूर्व सर्वनिर्मित शिविरों में चले गए और अपने पार्थिव शरीर को सजाने लगे। नेमिकुमार सारथी के साथ अचल रथ में बैठे थे।

लग्नवेला समीप आ रही थी। राजमहल के प्रांगण में तैयारियाँ हो रही थीं। पुरोहित और पुजारी आ गए थे। वेदिका पर कुंकुम और अक्षत रख दिये गए थे। कुलगुरु भी मण्डप में पहुँच चुके थे। सुन्दरियों के कण्ठों का कलरव प्रारम्भ हो चुका था।

यादवकुल शिरोमणि नेमिकुमार का रूप अद्भुत था। श्यामसुन्दर देह में ऐसी सुश्री विराजित थी कि नयन देखते ही रह जाते। सिर पर मुकुट, भुजाओं में भुजबंध, कानों में कुण्डल, आजानबाहु में सुन्दर चाप! आज यहाँ पर कामदेव का दूसरा अवतार आया था।

वरराजा के आते ही काम प्रारम्भ होने वाला था। मंगल मुहूर्त समीप आ पहुँचा।

यह क्या ?

एक दूत हाँफता हुआ द्वार पर आकर खड़ा हो गया। उसने वेदना भरी एक चीत्कार की।

"महाराज ' किन्तु वह आगे न बोल सका। शान्त महासागर में एक महाशिला के गिरते ही जैसी अशान्ति छा जाती है वैसी ही अशान्ति वहाँ पर छा गई। समारम्भ सभी स्तब्ध रहे।

"महाराज!" दूत ने अग्निपुंज कहा 'नेमिकुमार विवाह करने से इन्कार करके अर्धमार्ग से ही वापिस लौट रहे।'

"क्यों ?" महाराज ने धड़कते हुए हृदय से प्रश्न किया ।

"पाकशाला के पास में बँधे हुए पशुओं की चीत्कारों ने उनके हृदय को भारी आघात पहुँचाया । वे वहाँ गए और सब पशुओं को बन्धनमुक्त कर बिना कुछ कहे सुने सारथी को रथ वापिस लौटाने का आदेश दिया । महाराज ! म वहाँ उपस्थित था । वे कुछ न बोले किन्तु उनकी आँखों में अदभुत चमत्कार था । म उनके नेत्रों की ओर देखता रहा किन्तु 'हँसना अथवा रोना' इसका कुछ भी निणय न कर सका ।"

चहल-पहल रुक गई, महाराज उग्रसेन तुरन्त अश्वारूढ़ हो कर घटनास्थल पर पहुँचे । महारानी भी दो चार दासियों के साथ शिबिका में बठकर रवाना होने की तयारी करने लगी । शहनाई के स्वर शिथिल पड़गए ।

राजकुमारी राजुल तो मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

"बच्ची ! बेटी !"

महारानी राजुल को धय बँधा रही थी । श्रावण का घनघोर आकाश गजना कर रहा था । मेघों से वारिधारा बह रही थी । दूर दूर से वाटिकाओं की सुरभिगध लेकर बहता हुआ पवन राजकुमारी को मानो आश्वासन दे रहा था ।

कमलदल के समान छोटी सी आँखें खुलीं । "माता जी ! वे वापिस आए ?" पहला प्रश्न यही था ।

"बेटी ! राजकुमार ने हमारी बात नहीं मानी । वह वापिस चला गया । हजारों युक्तियों का एक ही उत्तर था और वह था उसका अवलोकन ! सभी उसके सामने अकिंचित्कर सिद्ध हुए । बेटी, हमारा दुर्भाग्य ! ऐसे रत्न सरीखे जामाता को देख कर मेरा हृदय कितने उल्लास से भरता !" महारानी ने दुःखी हृदय से कहा ।

"माता जी ! यदि वे वापिस नहीं आए तो मेरा क्या होगा ?"

"बेटी ! वे तो साधु हो गए । अब तो गए हुए को भूल जाना ह । किसी नए राजकुमार की खोज करेंगे ! कुँआरी कन्या के सौ वर ! ऐसे संन्यासी का क्या विश्वास ? बेटी ! जो हुआ सो ठीक ही हुआ । पाँच फेरे फिर गए होते तो न जाने क्या होता ?" राजमाता को सतोष था ।

"माता जी ! आप क्या कहती हैं ?" राजकुमारी के महल में जगमगाने वाले सहस्रों सुगन्धित दीपक डराने लगे। "यह प्रीति इस भव में बन हो सकती है ? राजकुमार को देखते ही मेरे मन में अनन्त भवों की प्रीति उत्पन्न होती थी। मैं तो उनसे कभी का विवाह कर चुकी थी।"

"पुत्री ! लग्नसंस्कार तो होना चाहिए न ! बिना उसके विवाह कैसा ? राजमति ? मूर्खता न कर ! भावावेश में अपना भव न बिगाड़ ! यह रूप, यह यौवन, यह विद्या !"

राजकुमारी हँसी—माता जी ! इसीलिए कहती हूँ कि मेरा विवाह तो हो चुका था। लग्नसंस्कार और विधि से क्या प्रयोजन ? मैं तो हृदय में कभी के हो चुके थे। यह अग्नि, यह लग्नमंत्र, यह राजगुरु तो आन्तरिक लग्न होने के पश्चात् होने वाली शोभा के पुतले हैं। राजकुमार मेरे हैं और मैं उनकी हूँ। भव भव की प्रीति आज कैसे तोड़ूँ ? बस, हमारा विवाह अमर है।

राजकुमारी खड़ी हो गई ? देखते ही देखते नयनकोरों में घिरी हुई अश्रुघटाएँ खाली हो गईं। नेत्रों में अपूर्व आनन्द छा गया। वर्षाऋतु में वसन्त ऋतु आ गई।

राजकुमारी राजुल हृदय विवाहिता ही रही। नेमिकुमार आत्मश्री की साधना करने के लिए योगी बने तो राजुल भी साध्वी बनी। न देहलग्न में थे, आत्मलग्न थे। वहाँ वासना का पंथ न था, साधना के पंकज थे। नेमिकुमार ने राजुल को ब्रह्माण्ड के भेद बताए, माया, मोह और ममत्व के साथ ही साथ त्याग, तप और संयम का सत्स्वरूप समझाया।

गर्वी गिरनार आज भी इस विवाह की साक्षी दे रहा है।

नारी राष्ट्र नारी दिशा — साध्वी समाज से !

मुनि श्री आईदानजी 'निर्मल'

वर्तमान विकासवादी युग में स्त्री जाति ने महत्वपूर्ण प्रगति की ह। राजनैतिक क्षेत्रों में तो उसने पर बढ़ाया ही ह, अब तो ओलम्पिक खेलों में भी उसने भाग लेना प्रारंभ कर दिया ह। परन्तु दुःख का विषय ह कि जन साध्वी समाज अभी उसी अंधेरे कोने में टकराता फिर रहा ह। आज भी वह अपनी बुद्धि एवं शक्ति को छोड़ साधु समाज की परतंत्रता में पड़ा हुआ अनादर एव उपेक्षा का जीवन यापन कर रहा ह।

यह भी कोई जीवन ह ! जीवन का कोई उद्देश्य तो होना ही चाहिए। केवल बाह्य क्रियाओं में ही जकड़े रहना, खान पान एव इधर-उधर की बातों में जीवन व्यतीत कर देना तथा वरागिनियों की फौज तयार कर लेने का नाम ही सयम नहीं ह। सयम का अर्थ ह—पुरुषार्थ के पथ पर गतिशील होकर जीवन क्षेत्र में प्रगति करना, प्रतिक्षण चिन्तन, मनन के द्वारा नए नए मार्गों का अन्वेषण करके जनता के अज्ञान को दूर करने का प्रयास करना, पुरातन वाद एव कुरूढ़ियों से सघर्ष करने के लिए जीवन में नई स्फूर्ति, नव उत्साह एव अपूर्व क्रांति पदा करना तथा समाज के बिगड़े हुए पतनोन्मुख जीवन को सन्मार्ग की ओर प्रगतिशील करने का प्राणपण से प्रयत्न करना।

यह स्पष्ट ह कि सामाजिक सुधार एव सघ-ऐक्य को स्थायी रखने का कार्य साध्वी समाज जितनी सुगमता से पूर्ण कर सकता है, उतना एक शक्ति सम्पन्न आचार्य भी शायद ही कर सके। क्योंकि समाज एव सगठन का मूल पाया—बहनों का साम्राज्य साध्वी समाज के हाथ में ही ह। वे उसे चाहे जिस दिशा में ले जा सकती हैं।

यदि हमारा साध्वी समाज आने वाली बहनों से इधर-उधर की निकम्मी एव सारहीन बातों के व्यामोह को त्याग, उन्हें सुसंस्कारित बनाने की प्रतिज्ञा लेकर गति करें अथवा आने वाली बहनों से उनके जीवन सुधारने एवं अकर्मण्य जीवन से दूर करने के अतिरिक्त गृहस्थ जीवन की झंझटों की बातें करना त्याग दें तो समाज, धर्म एव राष्ट्र के जीवन में उन्नति होने देर ही न लगे।

अतः मैं समझदार साध्वी समाज से कहूँगा कि समय के साथ साथ अपने जीवन को परखें एव अन्तर्मानस में घुसे हुए अबलापन की कायरता को

निकालकर कर्तव्य पथ पर डट पड़ें। यह सोचकर चुप मत हो जाओ कि हम पुण्यवान हैं हम स्त्री जाति ठहरीं, क्या कर सकती हैं? इस मुर्दादिली ने ही साध्वी समाज को पंगु एवं आलसी बना दिया है, तुम्हारा पुण्य भी कोई कम नहीं है। यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो तुम्हारे महान पुण्यमय प्रकाश को लेकर ही मानव आगे बढ़ता है। अस्तु तुम्हारा जीवन बड़ा महत्त्वपूर्ण है तुम्हारे अन्तर्जीवन में महती शक्ति अन्तर्निहित है। राम के गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली सीता एवं वासना के व्यामोह में फँस कर पतन के गर्त में गिरते हुए रथनेमि को प्रगति के शिखर पर चढ़ाने वाली महासती राजमति नारी ही ही थी। तुम भी चाहो तो विश्व को उलट सकती हो, जन-जन के जीवन में क्रान्ति की आग पैदा कर सकती हो।

अब सोने का समय नहीं रहा, युगों की कुम्भकर्णी निद्रा को तोड़कर जागृति के पथ पर गतिशील होने का अपूर्व अवसर है। आज जीवन में सुस्ती नहीं प्रत्युत अपमान एवं तिरस्कार के प्रति विद्रोह होना चाहिए पारस्परिक द्वेष एवं ईर्षा के स्थान में प्रेम, वात्सल्य एवं संगठन का रंग संचरित होना चाहिए, स्थान, सम्प्रदाय, शहरों एवं चेलियों के व्यामोह की जगह जन-जन जीवन सापेक्ष अपूर्व उत्साह पैदा होना चाहिए।

साध्वी समाज के पास साधु समाज से भी सुन्दर एवं सरल काम है। संसर्ग में आने वाली बहनों के अज्ञान को दूर करने के लिए उन्हें व्यावहारिक एवं धार्मिक जीवन यापन करने की कला सिखायें—जिससे गृह कलह, ईर्षा एवं विद्वेष की भावना कम हो, फलतः नखरे फिजूल खर्चों एवं जेवरों के बोझ से दबा हुआ जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य चमक उठे गन्दे गीतों, रेडियो फिल्मों एवं कामोत्तेजक हँसी-मजाक से जीवन विलासी न बनने पावे तथा अकर्मण्यता का स्थान पुरुषार्थ ग्रहण कर ले व जड़ क्रियाओं के साथ चेतनामय जीवन का भी प्रादुर्भाव हो। इस प्रकार के कार्यक्रम से उनका जीवन प्रगति की ओर होगा ही परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण फायदा यह होगा कि भावी पीढ़ी जो हमारी समाज का उत्तरदायित्व संभालने वाली है—बाह्य दुनिया में एक महान ज्योतिर्मय जीवन लेकर ही कदम रखेगी।

अन्त में इतना और कहूँगा कि साध्वी समाज अपने जीवन का ज्ञान के साथ विकास करें, आपस अन्य साम्प्रदायिक व्यामोह स्थान चेलियों एवं शहरों के संकुचित वातावरण को छोड़कर विश्व के विशाल प्रांगण में विचरण

(शेष पृष्ठ १५ पर देखिए)

आरोग्य

प० सुदरलाल जैन वैद्यरत्न

संसार का कोई भी काय बिना आरोग्यता के नहीं हो सकता। धर्माय-काममोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम्' अर्थात धम, अथ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का मूल कारण आरोग्य ही ह। आरोग्य हो तो मनुष्य धम के कार्यों को अच्छी तरह कर सकता ह, धन (अथ) स्वेच्छानुसार कमा सकता ह तथा सदाचार का पालन करते हुए व्रत, त्याग, यम, सयम, आदि का पालन अच्छी तरह से करते हुए मोक्ष की प्राप्ति कर सकता ह।

जो मनुष्य रोगी ह, दुर्बल ह और शक्तिहीन ह, वह न तो ईश्वर का स्मरण कर सकता ह, न दीन-दुखियो की सेवा सहायता करता ह, न व्यापार-नौकरी आदि से धन कमा सकता ह और न किसी भी प्रकार के आनद का पात्र ही बन सकता ह। ऐसे व्यक्ति के लिए सब व्यथ ह। ऐसे व्यक्ति को स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन अप्रिय मालूम होते ह। व्याधिग्रसित अवस्था में पड़े हुए व्यक्ति को लाखों रु० के लाभ की सूचना मिलने पर भी उसके समक्ष स्वास्थ्य-लाभ का प्रश्न सबसे पहले होगा। आरोग्य प्राप्त होने पर भोजन अच्छा लगगा, अथ प्रसन्नतादायक होगा और धम में रुचि होगी।

आरोग्य बाल्यावस्था में माता पिता के अधीन ह और वृद्धावस्था में सन्तान के अधीन रहता ह। केवल युवावस्था ही एक ऐसी अवस्था ह जब हम स्वतः अपनी रक्षा कर सकते ह। अपनी चीज की रक्षा मनुष्य जितनी स्वयं कर सकता ह दूसरा उतनी नहीं कर सकता।

दुर्भाग्य से आज ऐसा समय आ गया ह कि हम स्वयं अपने स्वास्थ्य के प्रति जितने उदासीन रहते ह, उतने अन्य नहीं। जितने भी व्यसन आरोग्य को नष्ट करने वाले ह, वे सब इसी युवावस्था में होते ह। खानपान में कुपथ्य, सिनेमा आदि के द्वारा मस्तिष्क को दूषित करना, युवावस्था से पूव ही विवाह, अश्लील साहित्य पढ़कर, कुसग में पडकर जीवन के तत्व को खोकर

गीत

छोड़ अपना नीड़ नभ में विहग उड़ता जा रहा है।

स्वस्थ जीवन शक्ति का नव स्रोत फिर से बह रहा है
चेतना के साथ स्मृति—नेत्र खोले आ रहा है
मिल गया वरदान कोई लक्ष्य अपना पा गया है
इसलिए तो वेदना से दूर भागा जा रहा है

खुल गया है द्वार विहरण को मिला उन्मुक्त पथ है
मुक्त खग है मलयवेला, वेग भरता जा रहा है।

अब न छू सकती निशा की कालिमा जो धुल चुकी है
और जीवन पथ में नव प्रेरणा भी मिल चुकी है
जो कि आहों में कसकती वेदनाएँ जो रही थीं
जा रहीं निःशेष होने प्राण रस जो पी रही थीं

मुक्त चारों ओर नभ में वह विहँसता जा रहा है
गान पंछी नव सृजन के मृदुल स्वर में गा रहा है।

प्राण दीपक बुझ चुके तो, क्या हुआ उस कालिमा में
ज्योति उनसे मिल रही अब भी उषा की लालिमा में
मृदुल अधरों पर सहज मुस्कान फिर आने लगी है
नव समीरण छू गया तो चेतना फिर से जगी है

वन्दना के पवनों से मिल रही राहत इसे तो
नव प्रगति के शीर्ष पथ पर पग बढ़ाता जा रहा है।

छोड़ अपना नीड़ नभ में विहग उड़ता जा रहा है।

[illegible]
[illegible]

—धर्मपाल 'कुमार'

वर्तमान शिक्षा का मार्मिक चित्रण

काश ! मैं अध्यापिका होती !

सुश्री शरवती जैन, साहित्यरत्न

मेरा दृढ़ निश्चय ह कि इस महत्वपूर्ण, सात्विक, सौम्य पद को पाकर म शिक्षा की रूपरेखा एक दम पलट दूगी। सचमुच म वह रणभेरी बजाऊगी जिसकी ध्वनि से विद्यालय का प्रत्येक छात्र स्वावलम्बी, कर्तव्यपरायण और विद्वान बन जायगा। कागज के टुकडा पर विद्या बेचने वाले शिक्षकों को अपनी अदूरदर्शिता, स्वार्थलिप्सा, लाभदृष्टि का पूर्णतया परिज्ञान हो जायगा। म उस शिक्षण प्रणाली का उच्छेदन करूगी जिसकी कृपा से आज के विद्यार्थी मानवता को ठुकरा कर दानवता का पल्ला पकड रहे ह। म प्राचीन और नवीन शिक्षा का 'मज्झिम माग' के समान मध्यममार्ग निकालूगी। मैं अपने विद्यार्थियो को स्वार्थ और सकीर्णता से मुक्त करूंगी जिनके फेर में पड़कर ये अपने मनुष्यत्व को खोते ह, अपनी मानसिक शक्ति को अधविकसित रखते ह, अपने चरित्र को घणित और नतिक स्तर को निम्न बना लेते ह। उस समय का स्मरण आते ही मेरा हृदय सिसकने लगता ह, जब म अपने शिक्षकों को शरीर तोड़ते, जभाई लेते और मुह से धुआं उडाते देखती थी, और देखती थी कतिपय भावी कर्णधारों को उनका अनुकरण करते। क्या इस प्रकार रगे सियार शिक्षकों का प्रतिबिंब बच्चों के उद्धार का कारण हो सकता ह, उनका प्रभाव बच्चो का पथ प्रदर्शक हो सकता ह ? नहीं, कदापि नहीं।

म इस प्रकार की शिक्षिका नहीं रहूगी। म तो उन्हें उदाहरण देने की अपेक्षा स्वय उदाहरण स्वरूप बन कर उनके सामने उपस्थित होऊगी। आज देखती हू कि चकमक ड्रस वाले, बाबू की पोशाक में शिक्षक अपना गौरव समझते ह। यदि कोई प्रतिभा—सम्पन्न विद्यार्थी भारत को छोड अन्य देश के विषय में कुछ पूछ लेता ह तो या तो उसे उनकी उपेक्षा दृष्टि का शिकार होना

पड़ता है अथवा गालियों या थप्पड़ का पात्र। क्या इस हृदयविदारक परिस्थिति में उनकी मानसिक शक्ति का विकास हो सकता है ?

मैं स्कूल में कदम रखते ही उस खाई को जिसे आज के स्वार्थ पूर्ण व्यहार ने गुरु शिष्य के मध्य में डाल रखा है, स्नेह, ममता, निस्वार्थता और मातृवत्सलता से भर दूंगी। मैं शिष्यों के समक्ष वह वातावरण उपस्थित कर दूंगी कि वे इस बात को भूल जावें कि वे विभिन्न परिवार के सदस्य हैं। मैं उन्हें वह सबक सिखलाऊंगी कि कलह, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा और अहंकार की विदाई के लिये उनसे करबद्ध प्रार्थना करेंगे। वास्तव में मैं विद्यार्थियों को धर्मनिष्ठ, सच्चे देशोद्धारक, कर्तव्यशील, त्यागी, सेवक और सच्चे नागरिक बनाऊंगी। मैं उस शिल्पी का काम करूंगी जो एक बेडौल शिला को छैनी द्वारा काट-छाँट कर देवत्व पद को प्राप्त करा देता है। मैं विद्यार्थियों के सुकोमल हृदयांगण में मानवता ही नहीं देवत्व का बीजारोपण करके उसे खिला दूंगी। मैं संसार को प्रत्यक्ष कर दिखलाऊंगी कि इन्हीं [illegible] शिशुओं में महात्मा गांधी, वीर जवाहर, भक्त संत विनोबा भावे प्रभावशाली सरोजनी नायडू और देशभक्त विजयलक्ष्मी विद्यमान हैं। सचमुच यदि सौभाग्य से मुझे यह पद नन्हें पौधों को सींचने के लिये प्राप्त हो जाय तो मैं 'मॉंटीसरी' शिक्षा पद्धति के आधार पर वह समय लाऊंगी कि उनमें आत्मिक तेज, जातीय गौरव और सामाजिक बन्धुत्व भाव खिल उठें। मैं वह दृश्य उपस्थित करूंगी जो एक प्रेमवत्सला मां और दुधमुंहे-बच्चे के बीच होता है।

इस समय मुझे अमेरिका की शिक्षा प्रणाली याद आ जाती है और हृदय पुकार उठता है — काश ! मैं वह अवसर पा जाऊं ? मैं उस प्यार के भाव से कक्षा में प्रवेश करूं कि छात्र छात्राएं खड़ी और ध्यान लगाए रह जावें। मेरे विद्यार्थी मुझसे आतंकित न हों बल्कि आत्मीय भाव दिखलाएं।

मैं तुम्हें रटाकर परीक्षा पास कराने वाली शिक्षिका नहीं बनूंगी बल्कि उन्हें जीवनोपयोगी ज्ञान प्राप्त कराऊंगी। मैं उनकी दिलचस्पी जगाकर उनके मानसिक और शारीरिक विकास का पूर्ण प्रयत्न करूंगी। आज के विद्यार्थियों की धंसी हुई आंखें, पिचके हुए गाल, रक्त के अभाव से मुरझाई हुई भुजाएं, लड़खड़ाते हुए पांव, मरी हुई भावना, निष्प्राण हृदय, शिथिल कल्पना और शुष्क विचारों को देख कर मेरा हृदय रो पड़ता है। मैं निश्चय करती

लगती हूँ स्वप्न लोक में। मैं वे केहरी तैयार करूंगी जिनकी भुजाओं में असीम शक्ति हो, नेत्रों में अपार तेज हो, उमड़े हुए गाल और वृषभ स्कंध हों, गठीला बदन हो। जिनमें विचारपूत भावनाएं और महत्वाकांक्षाएं भी हों।

मैं छटपटाने लगती हूँ अपनी वर्तमान स्थिति का अनुभव कर। मुझे अच्छी तरह स्मरण है उस दिन की घटना का, जब मेरी अंगुलियाँ इतिहास सुनाने के समय कमल का फूल बनाने से कुचल डाली गई थीं। क्या ही अच्छा हो कि वही पद मुझे मिल जाय तो मैं जी खोल कर अपने अरमानों को कार्य रूप में परिणत कर दूं। आज मैं सोचती हूं कि मेरे समक्ष वही परिस्थिति आ उपस्थित हो और मैं उसे प्रोत्साहन दूं, प्रशंसा करूं, प्यार करूं और तैयार करूं उसकी मनोवृत्ति को स्वतंत्र चौकड़िया भरने को चौरस स्वच्छ मैदान।

मैं देखती हूँ कि आज विद्यार्थी छुट्टियों में मनबहलाव के लिये सिनेमा देखते हैं, मित्रों के साथ नाटक देखते हैं, जिससे कुसंगति में पड़कर अपने जीवन को अंधकारमय बना डालते हैं। मुझे तो इस दशा को देखते ही उन पर तरस आ जाता है। बस, मेरा कल्पना भवन बनना तैयार हो जाता है। यदि मैं शिक्षिका होती तो इस प्रकार शिक्षा देती जिससे मनोरंजन के साथ साथ ज्ञानवर्धन भी होता। विद्यार्थियों को अवकाश का समय प्रतीत नहीं होता। वे कला कौशल में ही अपना जीवन बिताते। यह सच है कि आज की शिक्षा विद्यार्थियों के मन को खराब बनानेवाली है जिससे उन्हें कुसंगति का आश्रय लेना पड़ता है। मैं अपने स्कूल में विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार विभिन्न विभाग स्थापित करूंगी। चित्रकला प्रेमियों के लिए चित्रांकन मण्डल, काव्य प्रेमियों के लिए काव्य अनुशीलन विभाग, इतिहास प्रेमियों के लिए पुरातत्वान्वेषण विभाग, तथा अन्य कलादि प्रेमियों के लिए उनके अनुसार भाग निर्धारित करूंगी। अपने विद्यार्थियों को मूक ज्ञानी न होने दूंगी। प्रत्येक अवकाश के दिन वाद विवाद तथा भाषण दिलाया करूंगी। मैं यह देख कर तिलमिला उठती हूँ कि आज के भावी राष्ट्र निर्माता छात्र छात्राएँ अपनी संस्कृति भावना से अछूते हैं, उनमें सामाजिक चेतना का अभाव है। मैं नहीं चाहती कि शिक्षक कुटुम्ब के पालनार्थ भय पायें। मेरा अभिप्राय है कि वे अपने शिष्यों के साथ कर्तव्य पथ पर आ डटें। किसी स्कूल में जाते ही विद्यार्थियों का तीन चौथाई समय गप्पों में बीतता देखकर मेरा हृदय

भारतीय दर्शन महासभा

अपने अपने विषय के विद्वान् परस्पर मिलते रहें व एक दूसरे के विचारों से परिचित होते रहें, इसी दृष्टि से विविध विषयों की विविध संस्थाएँ संघटित होती रहती हैं। भारत में इस प्रकार की अनेक समितियाँ, संस्थाएँ या मण्डल हैं। वर्ष में, दो वर्ष में अथवा अन्य किसी निश्चित समय पर एकत्र होकर एक दूसरे से परिचय बढ़ाने तथा विचारों का आदान प्रदान करने के हेतु ये संस्थाएं अपने अपने अधिवेशन किया करती हैं। इन अधिवेशनों में भिन्न भिन्न समस्याओं पर भिन्न भिन्न विद्वान् अपने निबन्ध पढ़ते हैं, प्रश्नोत्तर होते हैं और उन पर वाद विवाद होता है। भारतीय दर्शन महासभा भी एक ऐसा ही संगठन है।

सिंहावलोकन—

सन् १९१४ में भारतीय विज्ञान-महासभा की स्थापना हुई। उस समय भारतीय दार्शनिकों की भी इच्छा हुई कि दर्शन के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना की जाय। इस इच्छा की पूर्ति का सारा श्रेय डा० एस० राधाकृष्णन स्वर्गीय डॉ० एन० एन० सेनगुप्त और प्रो० ए० आर० वाडिया को है जिनके सक्रिय सहयोग के कारण भारतीय दर्शन-महासभा की स्थापना हो सकी। सन १९२५ में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की अध्यक्षता में कलकत्ता में सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन करने वाले थे बंगाल के गवर्नर लार्ड लिटन। कार्य-कारिणी समिति के प्रमुख हुए डॉ० एस० राधाकृष्णन् और मंत्री चुने गए डॉ०एन०एन० सेनगुप्त। उस समय इसके पाँच विभाग थे—भारतीय दर्शन, न्याय और तत्त्वज्ञान, धर्म का दर्शन, दर्शन का इतिहास तथा आचार-नीति और सामाजिक दर्शन। 'भारतीय दर्शन' विभाग के अध्यक्ष चुने गए प्रो० आर० डी० रानाडे बम्बई, 'न्याय और तत्त्वज्ञान' विभाग के अध्यक्ष थे ए० जी० होग, मद्रास, 'धर्म का दर्शन' विभाग के अध्यक्ष हुए प्रो० जी० एच० लांगाले ढाका, 'दर्शन का

इतिहास' विभाग के अध्यक्ष चुने गए प्रो० फणिभूषण अधिकारी, बनारस तथा 'आचार-नीति और सामाजिक दर्शन' विभाग के अध्यक्ष हुए प्रो० ए० आर० वाडिया, मसूर। इस अधिवेशन से भारतीय दार्शनिकों के उत्साह में आशातीत वृद्धि हुई। दूसरा अधिवेशन बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में हुआ। महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता करना स्वीकार किया। प्रो० ए० बी० ध्रुव आदि विविध विभागों के अध्यक्ष चुने गए। तीसरा अधिवेशन सन् १९२७ में डॉ० एस० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में बम्बई में सम्पन्न हुआ। इस प्रकार प्रतिवर्ष भारतीय दर्शन-महासभा के अधिवेशन अलग अलग स्थानों में होने लगे। मद्रास, लाहौर, ढाका, पटना, मसूर, पूना वाल्टेयर, दिल्ली, नागपुर, इलाहाबाद, हैदराबाद, अलीगढ़, लखनऊ त्रिवेन्द्रम् आदि स्थानों में इसके अधिवेशन हुए। बनारस कलकत्ता, बम्बई आदि स्थानों में दो बार अधिवेशन होने का मौका भी आया। इन अधिवेशनों में अध्यक्ष का स्थान ग्रहण करने वालों में से प्रमुख ये हैं—डॉ० रवीन्द्रनाथ टगोर, डॉ० गंगानाथ झा डा० एस० राधाकृष्णन्, प्रो० ए० बी० ध्रुव, प्रो० ए० आर० वाडिया, प्रो० जी० एच० लांगले, प्रो० के० सी० भट्टाचार्य डॉ० जे० मर्केजी, प्रि० एस० एन० दासगुप्ता प्रो० आर० डी० रानडे, प्रो० एम० हिरियन्ना, प्रो० पी० एन० श्रीनिवासाचारी प्रो० एच० डी० भट्टाचार्य, डॉ० एम० एन० सरकार, प्रो० एस० के० मैत्र, प्रो० जी० आर० मलकानी। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष अलग अलग निर्वाचित होते रहे। इस प्रकार भारतीय दर्शन-महासभा को भारत के सभी प्रमुख दार्शनिकों का सहयोग प्राप्त होता रहा। अध्यक्षों के भाषण एवं मुख्य मुख्य निबन्ध पुस्तक के रूप में प्रकाशित होते रहे जिनका उपयोग दर्शन के क्षेत्र में बराबर होता रहा और आज भी हो रहा है तथा भविष्य में भी होता रहेगा। इन सब बातों को देखते हुए हमें यह मानना पड़ेगा कि इस महासभा की बहुत उपयोगिता है। इसके अधिवेशनों में सम्मिलित होने वाले विद्वानों में परस्पर सहयोग, परिचय एवं विचारों के आदान प्रदान की भावना बढ़ती है। परिणाम स्वरूप भारत की विचार धाराएँ एक दूसरे के समीप आती जाती हैं। जिन विचार धाराओं के विद्वानों का परिचय कम होता है अथवा बिल्कुल नहीं होता उनमें भी धीरे धीरे परिचय बढ़ता जाता है। फलतः अखिल भारतीय विचारधाराओं का संगम होता है और इस संगम से नई दिशा व नवीन चेतना उत्पन्न होती है।

२७ वाँ अधिवेशन

भारतीय दशन महासभा का २७ वाँ अधिवेशन २८, २९ और ३० दिसम्बर १९५२ को मसूर में हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे प्रो० धीरेन्द्र मोहन दत्त, अध्यक्ष—दशन विभाग, पटना विश्वविद्यालय। भारतीय जनतत्र के उपाध्यक्ष डॉ० एस० राधाकृष्णन् जो कि प्रारभ से ही महासभा के प्राण रहे ह, अधिवेशन के उदघाटन के लिए निमन्त्रित किए गए। दो सिम्पोजियम के अतिरिक्त लगभग चालीस निबन्ध पढ़े गए। यह प्रसन्नता की बात ह कि निबध पढ़ने वालों में दो जन भी रहे। डा० नथमल टाटिया के साथ मुझे भी जन दशन का प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। डा० टाटिया का निबन्ध नयवाद पर था। नय की महत्ता एव व्यापकता पर प्रकाश डालकर प्रत्येक नय की सीमा का युक्तियुक्त विधान करते हुए डा० टाटिया ने अपना निबन्ध समाप्त किया। श्रोताओं ने नय की समस्या में काफी रस लिया। विविध प्रकार के प्रश्नोत्तर हुए। मेरा निबन्ध था 'कम सिद्धान्त और नियतिवाद' पर। कम और नियति की समस्या केवल जनदर्शन की समस्या नहीं ह। प्रत्येक विचार धारा में इसके बीज मौजूद ह। नियतिवाद और इच्छा-स्वातन्त्र्य में क्या विरोध ह? कम सिद्धान्त इन दोनो में से किसका समथन करता ह? इस समर्थन की क्या सीमा ह? क्या कम सिद्धान्त नियतिवादी ह? यदि नहीं तो इस पर आने वाला नियतिवाद का आरोप कसे दूर किया जा सकता ह? कम सिद्धान्त की अपने आप में क्या मर्यादा ह? इन सारी समस्याओं का सक्षिप्त समाधान करना, यही इस निबन्ध का उद्देश्य था। विभागीय अध्यक्ष ने निबन्ध पर अपना मत अभिव्यक्त करते हुए कहा कि कर्म सिद्धान्त की जितनी अच्छी अच्छी बाते ह सबका सग्रह इस निबन्ध में कर दिया गया ह। इस दृष्टि से यह निबन्ध अच्छा बन पड़ा ह, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन दो निबन्धों के अतिरिक्त जन दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाला अन्य कोई निबन्ध न था। इन निबन्धों क कारण विद्वान सभासदों का जन विचार-धारा से परिचय हुआ। विविध प्रकार के प्रश्नोत्तरों से शकाओं का समाधान भी हुआ। यदि यह परम्परा किसी भी रूप में रह सकेगी तो लोगों को जन दृष्टि का सम्यक् ज्ञान होने में काफी सहायता मिलेगी, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

जैन मिशन सोसायटी

दक्षिण में जैन संस्कृति के प्रचार के लिए काम करने वाली संस्थाओं में जैन मिशन सोसायटी बेंगलोर का मुख्य स्थान है, इस बात को बहुत कम सज्जन जानते हैं। आज से थोड़े दिन पूर्व हमारा भी यही ख्याल था। दक्षिण के भ्रमण से और विशेषकर बेंगलोर में चार पाँच दिन तक ठहरने के बाद हमें इस बात का पता लगा कि इस संस्था के कार्यकर्ता कितने उत्साह से काम कर रहे हैं। कार्यकर्ताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे मूक सेवक बन कर काम कर रहे हैं। वे न तो किसी पत्र में अपने काम का विज्ञापन भेजते हैं और न किसी मंच पर जाकर अपनी कहानी सुनाते हैं। इस सोसायटी का कोई विशेष विधान नहीं है और न कोई बड़ा फण्ड ही है। जो लोग इस संस्था से सम्बद्ध हैं वे स्वयं सारा भार अपने सिर पर उठाने के लिए तैयार रहते हैं। ये लोग हमेशा इसकी बात चिन्ता में रहते हैं कि जैन धर्म, संस्कृति, दर्शन, कला, इतिहास आदि विषयों पर अच्छे से अच्छा साहित्य मिले। इस प्रकार के साहित्य को दुनिया के विद्वत्समाज तक पहुँचाना इस सोसायटी का एक प्रमुख उद्देश्य है। इस काम के लिए जितना भी धन लगाना पड़ता है, कार्यकर्ता अपनी ओर से लगाने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। वे किसी सेठ के पास जाकर हाथ नहीं जोड़ते, किसी धनवान के घर नहीं भटकते। जितना व्यय करना अपने बल पर करना, यही इन लोगों की मुख्य दृष्टि है। अच्छे एवं प्रामाणिक जैन ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए भी यथाशक्ति व्यय करना इस सोसायटी के कार्यकर्ताओं का मुख्य ध्येय है। जैन समाज का तो कहना ही क्या किसी भी समाज में इस प्रकार की संस्थाएँ नहीं के बराबर हैं जिनके कार्यकर्ता अपने बल पर संस्था को चलाते हों। जैन मिशन सोसायटी एक ऐसी संस्था है जिसका आधार उसके कार्यकर्ता स्वयं हैं। उसे किसी का मुँह नहीं ताकना पड़ता। उसे किसी की खुशामद नहीं करनी पड़ती। उसके कार्यकर्ताओं का आत्मबल, उत्साह व लगन ही उसके प्राण हैं। इस प्रकार की संस्था हमारे लिए एक आदर्श है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हम इस सोसायटी के मूक सेवकों का अभिनन्दन करते हैं व चाहते हैं कि जैन समाज की अन्य संस्थाएँ इससे प्रेरणा लें।

—सम्पादक

महत्व के दो प्रकाशन

स्वयम्भू स्तोत्र—हिन्दी अनुवादक—श्री जुगलकिशोर मुख्तार प्रकाशक—वीरसेवा मन्दिर, सरसावा जिला सहारनपुर, मूल्य २) रु०

स्वामी समन्तभद्र का स्वयम्भू-स्तोत्र कहने को तो चौबीस तीर्थकरों की स्तुति है, पर भक्ति रस में आत्म विभोर होते हुए भी अनेकान्तवाद आदि उच्च व गंभीर सिद्धान्तों का जिस सरल एवं आकर्षक शैली में निरूपण किया है, वह अद्भुत है। उसका आनन्द स्वयं पढ़ने व समझने से ही मिल सकता है।

इसी स्तोत्र का हिन्दी अनुवाद श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार ने किया है। वह भी वर्षों की साधना व गहरे चिन्तन मनन के बाद। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि अनुवाद भी सोने में सुगन्धि का काम देता है। विशेषता यह है कि अनुवादक स्वयं बड़े सुधारक और तर्कशील होकर भी अनुवाद लिखते समय भक्तिरस में तल्लीन से हो जाते हैं, हरएक चीज को थोड़े में खोल कर रखने का प्रयत्न करते हैं। पाठक के हृदय पर असली भाव को अंकित करने में कसर नहीं रखते। ऐसे अनुवाद कम ही होते हैं। हिन्दी अनुवाद पढ़ने से भी मूल का आनन्द लिया जा सकता है।

इतने महत्व के ग्रन्थ और अनुवाद के बारे में एक बात कहनी है। मालूम होता है, कागज की महँगाई का असर इस पर भी हुआ है। अनुवाद को बाँध कर छापा है, जिससे पाठकों को कुछ असुविधा का सामना करना पड़ता है, हालांकि मूल अर्थ को मोटे टाइप में रखा गया है। फिर भी अनुवाद एक जंगल सा बन जाता है। कागज और छपाई के खर्च का ज्यादा खयाल न करके मूल और अर्थ को बहुत ही आकर्षक ढंग से रखा जा सकता था। इससे जिन पाठकों का संस्कृत पर अधिकार नहीं, उन्हें भी मूल का अर्थ समझने में बड़ी सुविधा मिलती और ग्रन्थ की सुन्दरता भी बढ़ जाती।

एक बात और है। कई जगह कुछ वाक्य शायद इस विचार से मोटे टाइप में दिए गए हैं कि वे मूल का अर्थ हैं। पर ऐसा नहीं है। जैसे कि शुरू में ही 'भावना एवं परिणति से युक्त साक्षात्' दिया है, इससे पाठकों को थोड़ा भ्रम होता है। वे यह समझने लगते हैं कि मूल का यह भी अर्थ है। इस तरह की कुछ बातें हैं जिनको दूर किया जा सकता है। इसमें संदेह

त्र जगत्

साहित्य, कला, संस्कृति और समाज की नवीन चेतना के प्रतीक 'पाटल' ने चार महीने के अल्प समय में ही हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिकाओ में अपना स्थान कर लिया ह। प्रत्येक विषय के नये मानदण्ड एव नये मूल्य की स्थापना 'पाटल' की अपनी विशेषता ह। 'पाटल' ने यद्यपि अपने विषय में 'न भूतो न भविष्यति' की घोषणा की ह, जो कुछ अशों में ठीक भी ह, पर भविष्य क लिए हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। हिन्दी के सभी विश्रुत विद्वानों का सहयोग 'पाटल' को प्राप्त ह। 'पाटल' का प्रत्येक अक एक कलापूण नयनाभिराम चित्र से सज्जित एव अलकृत होकर प्रतिमास मोहन प्रेस, कदमकुआँ, पटना ३ से प्रकाशित होता ह। हाथरस के 'सगीत' ने अपना जनवरी अक 'बिलावल-अक' के रूप में प्रकाशित किया ह जो करीब पौने दो सौ पृष्ठों का एक अच्छा प्रामाणिक ग्रथ ही बन गया ह। जहां तक हमारा विचार ह हिन्दी में संगीत सबधी कोई भी पत्रिका नहीं निकलती, इस दृष्टि से 'सगीत का अपना अलग महत्त्व ह। प्रान्तीय भाषा भोजपुरी के महत्त्व-स्थापनार्थ आरा से 'भोजपुरी' का प्रकाशन होने लगा ह। इसके प्रत्येक अंक में भोजपुरी भाषा में सभी प्रकार के विषयों की रचनाएँ निकलती हैं। लोकभाषा एव साहित्य की दृष्टि से कहा जाय तो 'भोजपुरी' पहली पत्रिका ह जिसने अपन प्रकाशन के साथ ही अपना महत्त्व स्थापित कर दिया ह। हिन्दी की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी इसी प्रकार की पत्रिकाओं की आवश्यकता ह। ऐसी पत्रिकाओं से ही लोक साहित्य की उन्नति के लिए किया जानेवाला सास्कृतिक अनुष्ठान सफल होगा। देश में बढ़ती बेकारी को लक्ष्यकर स्वतन्त्र भारत प्रेस, दमोह (म० प्र०) से 'बेकार बन्धु' का प्रकाशन इसी जनवरी से प्रारम्भ हुआ ह। यद्यपि इस विषय के अन्य पत्र भी पहले से निकल रहे ह पर 'बेकार बधु' के पहले अंक में ही अनुभव मंजूषा, सुगन्धित तेल, साबुन शिक्षा, पान के मसाले, दन्तमजन, कार्बन पेपर, बस्तुत्य कला आदि विषयों पर अनुभवी लेखकों की रचनाएं देखकर विश्वास होता ह कि यह पत्र सामयिक आवश्यकता की पूर्ति में पूरा सहयोग देगा। मथुरा के देशबन्धु पुस्तकालय से 'देशबन्धु' का प्रकाशन शुरू हुआ ह, जो अन्य सभी विषयों के साथ पुस्तकालय विज्ञान सबधी साहित्य विशेष रूप से देता है। उपरोक्त सभी पत्र-पत्रिकाओं क प्रति हम अपनी शुभ कामनाएँ प्रकट करते ह। —महेन्द्र 'राजा'

जैनेन्द्र गुरुकुल पचकूला का वार्षिकोत्सव

जनेन्द्र गुरुकुल पचकूला, पजाब के स्थानकवासी जन समाज की एक सुप्रसिद्ध शिक्षण सस्था ह। यह देहली-कालका रेल्वे लाइन पर जिला अम्बाला में ह। इसकी स्थापना आज से २४ साल पहले सन १९२९ में २१ फरवरी को हुई थी। सौ बीघे से अधिक विशाल भमि और दो ढाई लाख की बिल्डिगें इसकी अपनी ह। आज कल ६०० के करीब विद्यार्थी पढ़ रहे ह। पढ़ाई १० वीं कक्षा तक ह। अब यह सरकार द्वारा मान्य होने जा रहा ह। पजाब भर में इसका परीक्षा परिणाम अच्छा रहता ह। सन् १९५२ में दो विद्यार्थिओ को स्कालरशिपें भी मिली ह। पजाब विभाजन के समय यह गुरुकुल देश के सकडों बच्चों के लिए एकमात्र सहारा बना। यहाँ आकर वे अपना दुख दद भूल गए। पढ़ लिख कर अपने परो पर खड़े हुए। इस साल सरकारी सहायता से डेढ-दो लाख की और भी कई नई बिल्डिगें बनी ह। पजाब की राजधानी चण्डीगढ़ गुरुकुल से तीन मील के फासले पर बन रही ह। इससे इस स्थान का महत्व बहुत बढ़ गया ह।

तारीख २७, २८ फरवरी और १ माच को गुरुकुल का २१ वाँ वार्षिकोत्सव हो रहा ह। उत्सव क प्रधान ह जन समाज तथा कांग्रेस के सुप्रसिद्ध कायकर्ता आगरानिवासी सेठ अचलसिह जी M P, और देहली के सुप्रसिद्ध व देशभक्त श्री आनन्दराज जी सुराना M L A स्वागताध्यक्ष बने ह। गणावच्छेदक श्री रघुवरदयाल जी महाराज और मधुर व्याख्यानी श्री विमलमुनि जी आदि कई प्रसिद्ध मुनि महाराज भी पधारेंगे।

हम देखते ह कि इस गुरुकुल क वार्षिकोत्सव पजाब के जनसमाज में एक नया ही उत्साह भर देते ह। लोग भी एक तरह से गुरुकुल यात्रा की भावना लेकर उत्सव पर पहुँचते ह। तीन दिन तक सुबह-दोपहर रात्री क समय विद्यार्थिओं के भजन भाषण, व्यायाम, खेल आदि के मनोरजक प्रोग्रामों क साथ प्रसिद्ध मुनिओ व विद्वानों क व्याख्यान आदि भी सुनने को मिलते ह।

गुरुकुल के प्रधान मंत्री जी ने सभी गुरुकुल प्रमियो व हितैषियों को अपने इष्ट मित्रो के साथ इस अवसर पर पधारने का आमन्त्रण दिया ह।

—अधिष्ठाता

'श्रमण' के विषय में कुछ सम्मतियाँ—

डॉ० बनारसीदास जैन, पटियाला—

जब भी 'श्रमण' मिलता है, मैं बड़े चाव से पढ़ता हूँ। इसमें विविध प्रकार के विषय होते हैं। जैन समाज संबंधी समाचार, उसके दोष और सुधार का उपाय, सैद्धान्तिक चर्चा, ऐतिहासिक वृत्त, रोचक ढंग से लिखी हुई कहानियाँ इत्यादि। इस कारण से 'श्रमण' भिन्न भिन्न रुचिवाले पाठकों की आकांक्षाओं को भी पूरा कर सकता है। इससे न केवल संपादकों का कौशल ही प्रकट होता है बल्कि 'श्रमण' की उपयोगिता भी। इस महँगी के समय में किसी पत्र-पत्रिका को चलाते रहना बड़ी उदारता का सूचक है। आज के युग में किसी समाज की भी सत्ता और उन्नति में पत्र-पत्रिकाएँ बड़ी सहायता देती हैं, इसलिए ये बहुत उपयोगी और आवश्यक हैं।

मैं आशा करता हूँ कि जैन समाज की ओर से 'श्रमण' को हर प्रकार का उत्साह और साहाय्य मिलता रहेगा।

पं० सुन्दरलाल जैन वैद्यरत्न, इटारसी—

'श्रमण' में दर्शन, तत्त्वज्ञान, धर्म, समाज, साहित्य, स्वास्थ्य और संस्कृति आदि विविध विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों के ज्ञानपूर्ण लेख प्रकाशित होते हैं। जिनसे जीवन की महत्तम समस्याओं का समाधान होता है।

'पाटल' पटना—

'श्रमण' उदार और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण रखता है। यह जैन समाज की उदारता और साहित्यानुराग का परिचय देता है और हिन्दी की अमूल्य सेवा कर रहा है। 'श्रमण' काशी जैसे सांस्कृतिक केन्द्र के सर्वथा अनुरूप ही है।

'जय-भारती' पूना

'श्रमण' के नए वर्ष का प्रथम अंक देखकर प्रसन्नता होती है। इधर आए दिन कई पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं पर वे सब की सब कुछ ही समय तक निकल कर बन्द हो जाती हैं। 'श्रमण' की अपनी एक विशेषता है और वह उसकी सादगी और दार्शनिक विचारधारा का प्रकाशन।

हमें विश्वास है कि 'श्रमण' के सभी प्रेमी पाठक भी अवश्य अपना
[illegible] ४) भेजकर ग्राहक बनें

व्यवस्थापक,

'श्रमण', जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५

कर्णाटक की मूर्तिकला में

महामानव की मानसिक भूमिका

डॉ० राजबली पाण्डेय, एम ए डी लिट्

कर्णाटक के जीवन और संस्कृति को जन धर्म से बड़ी प्रेरणा और बहुत सामग्री मिली है। विशेषकर मूर्ति-कला तो उससे बहुत ही प्रभावित है। जीवन में स्वच्छ और सादे आचरण, त्याग और तपस्या तथा मनुष्य के पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की प्राप्ति मूर्तिकला में बड़ी सफलता और प्रभावोत्पादकता के साथ अङ्कित है। इनमें से ऐश्वर्य ने मूर्तिकला में चमत्कारी प्रभाव दिखलाया है। मनुष्य स्वभावतः अपने शरीर—साढ़े तीन हाथ के पुतले—की शोभा में सन्तुष्ट नहीं रहता। उसकी बुद्धि और भावना इन्द्रियों के झरोखों से बार बार बाहर झाँकती है। वह अपने शरीर और मन के अतिरिक्त बाहर के संसार पर भी आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, वह केवल मनुष्य नहीं, ईश्वर होना चाहता है। इसी प्रयत्न में मानव बड़े माप दण्ड से अपने शरीर और व्यक्तित्व की कल्पना करता है। मानव से महामानव होने की यही प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया कर्णाटक की जनमूर्ति-कला में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन में से कुछ महामूर्तियों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

गोम्मटेश्वर अथवा बाहुबली की महामूर्तियाँ श्रवणबेल्गोला, कारकल और येणूर नामक स्थानों में मिलती है। इनमें से प्रथम ५६½ फीट, द्वितीय ४२½ फीट तथा तृतीय ३५ फीट ऊँची है। ये तीनों एक एक विशाल प्रस्तर खण्ड को काट कर निर्मित हुई है। सबसे बड़ी मूर्ति तौल में १०० टन से अधिक ही होगी। इन महाकाय प्रस्तर-खण्डों अथवा मूर्तियों को पहाड़ियों के शिखरों पर चढ़ाना स्वयं एक महाक्रम है। इस संबंध में फर्ग्युसन आश्चर्य के साथ लिखता है—"अपने स्थान में खड़ी इनसे दूने आकार की शिलाओं को काट कर उनको रूप देने में हिन्दू मस्तिष्क कभी विचलित नहीं होता, किन्तु इतने विशाल पिण्ड को पहाड़ी के चिकने और खड़े ढाल से चढ़ाना उसकी

हुए एक स्तम्भ से होता हुआ एक विस्तृत आँगन को पार किया। वहा पर राजा मयूरपक्ष से युक्त सिहासन पर विराजमान था। दानव ने अपने हाथ उठा कर उसे नमस्कार किया। राजा ने उत्तर में कहा, 'कालकूड ! आओ और आसन पर बठो।' 'मुझको आपने किस लिये बुलाया ?' कालकूड ने राजा से पूछा। राजा ने उत्तर दिया—यह सन्ध्या ह और भोजन का समय हो गया ह। पाँच सेर चावल लो और अपने स्थान पर जाओ। क्या काम करना ह कल प्रात बतलाऊँगा और तुम ठीक तरह काम करना। दूसरे दिन प्रात राजा ने उसको पाँच काम करने को बतलाये—१००० स्तम्भों और १२० मूर्तियों से युक्त एक विशाल मंदिर, सात मूर्तियो के साथ सात मदिर, भीतर एक छोटा मदिर और बाहर एक उपवन, आँगन में एक हाथी और एक महाकाय गुम्मत नामक मूर्ति। राजा ने उसको इस प्रकार काम करने को कहा कि यदि सम्पूर्ण वास्तु मदिर में एक द्वार खोला जाय तो एक सहस्र द्वार बन्द हो जाँय और यदि एक सहस्र द्वार खोले जाँय तो एक द्वार बन्द हो जाय। कालकूड ने अपने प्रस्तर का चुनाव स्वय किया। यह एक बडी चट्टान के पास पहुँचा जिसको पेय कल्लुणी कहते थे। चारा दिशाओ में उसने देवताओं का स्मरण किया। इसके पश्चात उसने चट्टान में दरार का पता लगाया। उसमें रुखानी रखी और फरसे से आघात किया। पत्थर-खण्ड अलग हो गये जिस प्रकार मांस रक्त से अलग हो जाता ह। उसने बहुत सुन्दर काम किया और राजा के आदेशानुसार सभी मदिरों, मूर्तियों आदि का निर्माण किया।[1]

महामूर्तियों का निर्माण और उसके सबन्ध में लोक-गीतों में कल्पना एक बात को स्पष्ट करती ह। मनुष्य अपनी भौतिक सीमा को पार कर महामानव होना चाहता ह। ५६⅔ फीट ऊँची गोम्मटेश्वर की मूर्ति तो एक प्रतीक मात्र ह। मनुष्य की कल्पना का महामानव तो असीम ह। यहां तक मनुष्य का हाथ नहीं पहुँच सकता, सभवत कोई यत्र और मनुष्य की बुद्धि भी नहीं। महामानव की चोटी तक मनुष्य की कल्पना अथवा भावना ही उड़ सकती ह। वास्तव में भारत के धार्मिक इतिहास में ईश्वर, देव, मानव और दानव के परस्पर सबन्ध की मनोरञ्जक कहानी ह। मानव विकास के प्रारम्भ में जब मनुष्य ने प्रकृति की विभूतिमती शक्तियों को देखा

[1] Burnell The Devil Worship of the Tuluvas, Ind Ant XXV MS, 25

संन्यास मार्ग और महावीर

प्रो० दलसुख मालवणिया

वेदका मार्ग यज्ञमार्ग है। यज्ञ करके देवों की तृप्ति से संपत्ति और पुत्रादि ऐहिक सुखसाधनों को जुटाने का प्रयत्न वैदिक आर्य लोग करते थे। उस समय धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की प्रधानता थी। मोक्ष पुरुषार्थ वैदिकों के लिए नहीं था। यह पुरुषार्थ और उसका साधन ये दोनों वैदिकों के लिए नयी बात थी। वैदिक आर्य जैसे जैसे हिन्दुस्थान में फैलते गये वैसे वैसे यहाँ की प्रजा की कई बातें उन्होंने अपनाई। उनमें मोक्ष पुरुषार्थ और उसका साधन संन्यास मार्ग भी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जब आर्य लोग कुरु-पांचाल को छोडकर इधर पूर्व प्रदेश के संपर्क में आते हैं तब ही आर्य ऋषियों के मुख से उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान प्रकट होता है। वे वेदप्रतिपादित यज्ञों को फूटी नाव के रूप में देखने लगते हैं। बाह्य सम्पत्ति के मूल्य को तुच्छ समझने लग जाते हैं और अनन्त सुख की खोज के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं। जैन और बौद्धशास्त्रों में उस समय के भारत का जो चित्र है वह कुरु पांचाल का नहीं है किन्तु वह मगध, बिहार, मिथिला, और बनारस के आसपास की तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर है। इन शास्त्रों के प्रकाश में यदि हम उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान और याज्ञिकधर्म का विरोध देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि संन्यास प्रधान श्रमण संस्कृति की ही यह देन है जो ब्राह्मणों के उपनिषदों में प्रतिबिम्बित हुई है। जो ब्राह्मण यहाँ भौतिक संस्कृति को जुटाने में ही और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करने में ही पुरुषार्थ की इतिश्री समझते थे वे ही यहाँ की श्रमण संस्कृति के प्रभाव में आकर कर्मकाण्ड को तुच्छ मानने लग गये और ज्ञान तथा त्याग मार्ग का आश्रय करके मोक्ष में ही परम पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करने लग गये।

तब उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनके द्वारा जीवन व साधनों की उत्पत्ति सा उसे स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। इसलिए वातदेव, वीपदेव, सोमदेव आदि से देवों की सहज कल्पना हो गयी। दृश्य जगत् के मापने अथवा उसको फाड़ कर उसका रहस्य जानने का कोई यन्त्र—भौतिक अथवा बौद्धिक—उनके पास नहीं था। [अभी मनुष्य ने विश्व के एक अणु को फोड़ कर उसकी आंतरिक शक्ति और उसके परिणाम को देखा है।] परन्तु मनुष्य की कल्पना अवश्य कहती थी कि इन देवों की कोई नियामिका शक्ति है, नहीं तो ये परस्पर टकरा कर अपना तथा सम्पूर्ण जगत का विनाश कर देंगे, इनके ऊपर नियंत्रण करने वाला कोई ईश्वर है और उसमें ऐश्वर्य है। मनुष्य की भावना उस कल्पित शक्ति का आदर भी करने लगी और फिर तो भगवद् भक्ति, पूजा, वन्दना आदि भी प्रारम्भ हो गये। बाहर जिस शक्ति की कल्पना मनुष्य ने की थी उसका एक छोर—अणुमात्र—उसको कुछ समय के पश्चात् अपने भीतर भी दिखायी पड़ने लगा, वही उसका अन्तरात्मा अथवा आत्मा था। वास्तव में विश्व के रहस्य के संबन्ध में मनुष्य का यह काल्पनिक अथवा भावुक अनुभूति थी, बौद्धिक अथवा वैज्ञानिक नहीं। मनुष्य अभी तक विश्व को माप या जान नहीं सका है। असीम और अनन्त को भांपने—जानने नहीं—के माध्यम अभी तक मनुष्य के पास ये हैं—कल्पना और भावना ही—है। कला के भी ये ही माध्यम हैं। सत्य बात तो यह है कि कला स्वयं असीम और अनन्त को खोजने और भांपने का एक मात्र माध्यम अथवा प्रतीक है। परन्तु मनुष्य की कल्पना के पंख उड़ते उड़ते थक जाते हैं। यह भावना, अनन्त और असीम से भी घबड़ा जाता है और फिर वह अपनी शारीरिक सीमा के भीतर लौट आता है और बुद्धि के द्वारा विश्व का रहस्य जानने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में मानव शरीर का महत्व बढ़ जाता है, बुद्धि का भी। बुद्धि का क्षेत्र शरीर से बड़ा है, किन्तु उसकी भी प्राकृतिक सीमा है जिसको वह पार नहीं कर सकती। मनुष्य अपने व्यक्तित्व और पुरुषार्थ का यथासंभव बढ़ाता है, स्वर्ग की भी कामना करता है। पुरुषार्थ भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक और मानव विकास के लिए आवश्यक है लेकिन शरीर और बुद्धि की सीमाओं से बंध कर वह अन्त में निरुत्साह हो जाता है। बन्धन कितना भी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण क्यों न हो वह मनुष्य के लिए असहनशील बन जाता है, उसके पुरुषार्थ का लक्ष्य भी मोक्ष ही है। इसलिए वह अपने शरीर और बुद्धि की सीमाओं को लांघ कर

(शेष पृष्ठ ५८ पर देखें)

संन्यास मार्ग और महावीर

प्रो० दलसुख मालवणिया

वेदका मार्ग यज्ञमार्ग है। यज्ञ करके देवों की तृप्ति से संपत्ति और पुत्रादि ऐहिक सुखसाधनों को जुटाने का प्रयत्न वैदिक आर्य लोग करते थे। उस समय धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की प्रधानता थी। मोक्ष पुरुषार्थ वैदिकों के लिए नहीं था। यह पुरुषार्थ और उसका साधन ये दोनों वैदिकों के लिए नयी बात थी। वैदिक आर्य जैसे जैसे हिन्दुस्थान में फैलते गये वैसे वैसे यहाँ की प्रजा की कई बातें उन्होंने अपनाईं। उनमें मोक्ष पुरुषार्थ और उसका साधन संन्यास मार्ग भी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जब आर्य लोग कुरु-पांचाल को छोड़कर इधर पूर्व प्रदेश के संपर्क में आते हैं तब ही आर्य ऋषियों के मुख से उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान प्रकट होता है। वे वेदप्रतिपादित यज्ञों को फूटी नाव के रूप में समझने लगते हैं। बाह्य सम्पत्ति के मूल्य को तुच्छ समझने लग जाते हैं और अनन्त सुख की खोज के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं। जैन और बौद्धशास्त्रों में उस समय के भारत का जो चित्र है वह कुरु पांचाल का नहीं है किन्तु वह मगध, विहार, मिथिला, और बनारस के आसपास की तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर है। इन शास्त्रों के प्रकाश में यदि हम उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान और याज्ञिकधर्म का विरोध देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि संन्यास प्रधान श्रमण संस्कृति की ही यह देन है जो ब्राह्मणों के उपनिषदों में प्रतिबिम्बित हुई है। जो ब्राह्मण यहाँ भौतिक संस्कृति को जुटाने में ही और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करने में ही पुरुषार्थ की इतिश्री समझते थे वे ही यहाँ की श्रमण संस्कृति के प्रभाव में आकर कर्मकाण्ड को तुच्छ मानने लग गये और ज्ञान तथा त्याग मार्ग का आश्रय करके मोक्ष में ही परम पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करने लग गये।

बौद्ध त्रिपिटक और जैन आगमों में परिव्राजक और श्रमण-संन्यासियों के आचार और दर्शन का वर्णन है। परिव्राजक लोग अपना घर छोड़कर अपने कुटुम्ब का परित्याग कर इधर उधर घूमते थे और भिक्षा वृत्ति से जीवन यापन करते थे। जीव और जगत् के विषय में ज्ञान सम्पादन करना-कराना ही उनका काम था। उनके विविध आचारों का वर्णन बौद्ध और जैन ग्रन्थों में मिलता है और उनके विचार दर्शन का भी वर्णन हम वहीं प्राप्त करते हैं। उससे पता चलता है कि उस युग में विभिन्न मतवादों—सम्प्रदायों की बाढ़ आई थी। उन सभी का एक लक्षण यदि कुछ कहा जा सकता है तो यही था कि उन सबने अपना निर्वाह भिक्षावृत्ति से करना स्वीकार किया था। बाह्यवेश का स्थूलरूप से साम्य होने पर भी सभी सम्प्रदायों में अपने-अपने बाह्य चिह्न होते थे। ऊपर विचारों में भी मतभेद था। भ्रमणशील परिव्राजकों को छोड़कर कुछ ऐसे भी त्यागी थे जो एकान्त जंगलों में ध्यान और तपस्या में लगे हुए थे और इस प्रकार अपना समस्त समय आत्मा और जगत् के रहस्य की खोज में लगाते थे। जिज्ञासु लोग उन्हीं के पास जाकर अपनी शंकाओं का समाधान करते थे और आध्यात्मिक साधना में प्रगति करते थे। ऐसे ही संन्यासियों की खोज में भगवान् बुद्ध ने अपनी साधना का बहुभाग बिताया था, यह बात त्रिपिटक से मालूम होती है। किन्तु किसी से उनको संतोष नहीं हुआ और उन्होंने अपना नया ही मार्ग खोज निकाला और वह था आत्मवाद का निषेध। आत्मवाद का निषेध करके भी उन्होंने निर्वाण—मोक्ष और उसके मार्ग का प्रतिपादन किया है, दूसरे संन्यासियों की तरह निर्वाण के लिए गृहत्याग को आवश्यक बतलाया है अर्थात् विचार में मतभेद रहते हुए भी संन्यास दीक्षा का महत्त्व उन्होंने भी स्वीकार किया। उस समय त्यागियों का एक बहुत बड़ा भाग उनके विचार से सहमत हुआ और कई परिव्राजकों ने उन्हीं के मार्ग को अपनाया। ऊपर इस प्रकार बौद्ध धर्म के रूप में एक नये संन्यास मार्ग—श्रमण मार्ग प्रचलित हुआ। इस नये संन्यास मार्ग का प्रारम्भ इसी बनारस में हुआ था। इतना तो इस बात का हम सहज निश्चय कर सकते हैं कि उस समय भी अर्थात् आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भी बनारस त्यागियों का अखाड़ा बना हुआ था। अन्यथा भगवान् बुद्ध को ज्ञानप्राप्ति तो बिहार के गया में हुई किन्तु उनका प्रथम उपदेश यहीं क्यों होता?

यदि हम इतिहास के पन्ने उलटें तो पता चलता है कि भगवान् बुद्ध से भी ढाई सौ वर्ष पूर्व इसी बनारस में भगवान् पार्श्वनाथ नामक जैन तीर्थंकर हुए

और उन्होंने भगवान बुद्ध के श्रमण माग के लिए क्षत्र तयार किया था। बौद्ध वेद्वान कोशाम्बी जी का कहना ह कि भगवान बुद्ध ने अपने जीवन में जो उग्र तपस्या की और उन्होंने भिक्षु के लिए अहिंसादि व्रतों की जो योजना बनाई वह भगवान् पार्श्वनाथ की ही परम्परा की देन ह। पार्श्वनाथ की ही परपरा में भगवान् महावीर जन तीर्थंकर हुए। ये भगवान् बुद्ध के समकालीन थे। किन्तु सन्यासमाग के विषय में भगवान् बुद्ध से काफी बडे थे।

भगवान बुद्ध के संन्यासमाग का नाम ह मध्यमाग जब कि भगवान महावीर का सन्यासमाग उत्कट ह। जिस तपस्या को बुद्ध ने निकम्मी बताया उसी तपस्या को महावीर ने सन्यासियों के लिए परम आवश्यक बतलाया ह। यदि उसी का अवलम्बन बुद्ध करते तो उन्हें तपस्या से घृणा नहीं होती। भगवान महावीर ने तपस्या दो प्रकारकी बतलाई ह। बाह्य और आभ्यन्तर। मुख्य तपस्या आभ्यन्तर ही ह और उसी की पुष्टि के लिए बाह्य तपस्या साधन मात्र ह। बाह्य तपस्या में उपवास मुख्य ह और आभ्यन्तर तपस्या में सेवा स्वाध्याय और ध्यान मुख्य ह। बाह्य तपस्या तब तक ही ठीक है जब तक ध्यान स्वाध्याय में बाधा न हो। यदि उसके प्रतिकूल हो तो बाह्य तपस्या को भगवान महावीर ने निरथक बतलाया ह अर्थात् उपवासादि बाह्य तपस्या ध्यान धारणा को सफल बनानेमें यदि सहायक सिद्ध होते हों तब तो ठीक ह किन्तु यदि उपवास से अध्यात्मिक शान्ति में बाधा आती हो तो वह तपस्या नहीं किन्तु तपस्याभास ह।

परिव्राजकों द्वारा तपस्या में पचाग्नि तप, कांटा पर सोना आदि शरीर के लिए कष्टदायक और हिंसक साधनोंका अवलम्बन लिया जाता था। उसका विरोध तो भगवान पार्श्वनाथने ही इसी बनारस में किया था और देहदमनका माग-श्रेष्ठ माग है यह बताया था। तब से सन्यासियों में उपवास की प्रतिष्ठा बढ़ी थी किन्तु भगवान् बुद्ध ने देहदमन के इस प्रकार को भी अच्छा नहीं समझा। भगवान महावीर ने देखा कि भिक्षुओं को यदि खाने के लिए कमाना नहीं ह और स्वोपार्जित धनसे भी जीवन निर्वाह नहीं करना ह सिफ भिक्षा वृत्ति पर जीना है तब उसके लिए कम से कम खाना यह अनिवाय होना चाहिए अन्यथा वह समाज के लिए बोझ रूप बन जायगा और जीवन निर्वाह के लिए नाना प्रपंच-मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष आदि में पड़ जायगा और उसकी आध्यात्मिक साधना एक ओर रह जायगी। खाने-पीने की चिन्ता ही उसे सताया करेगी। और उसी के प्रपंच में पडकर अपना भिक्षु-जीवन निष्फल बना लेगा।

भिक्षावृत्ति के नियमों में जितनी कड़ाई भगवान् महावीर ने त्यागियों के लिए की उतनी शायद भारत के इतिहास में किसी ने नहीं की। भगवान् बुद्ध स्वयं और उनके शिष्यों को यह इजाजत थी कि वे किसी का निमंत्रण पाकर उसी के यहाँ भोजन के लिए जायँ। भोजन भगवान् बुद्ध के निमित्त और उनके शिष्यों के निमित्त बनाया जा सकता था। एक समय तो ऐसा भी हुआ कि भगवान् बुद्ध के लिए और उनके संघ के लिए एक बड़ा पशु मारा गया और पकाकर उन्हें खिलाया गया। भगवान् महावीर के शिष्यों ने इस बात की निन्दा की। इस बात की खबर जब भगवान् बुद्ध को मिली तो उन्होंने नियम बनाया कि अब से कोई भिक्षु वह मांस नहीं खायगा जो उसके लिए बनाया गया हो। इसका जिक्र बौद्धों के विनयपिटक में है। महावीर ने तो अपने साधुओं के लिए यह नियम बनाया था कि वह किसी का निमंत्रण स्वीकार ही नहीं कर सकता। भोजन के समय जैन साधु भिक्षा के लिए निकले और जहाँ से ग्राह्य आहार मिल जाय ले ले। आहार लेने में भी बड़े कड़े नियम हैं—मांस, मक्खन, घी, दूध एवं रसवर्धक आहार की मनाही है। रूखा-सूखा भोजन ही लिया जा सकता है। और वह भी उसके लिए न बना हो ऐसा प्रतीत होने पर ही। इतना ही नहीं, किन्तु वह उतनी मात्रा में ही ले सकता है जिससे दाता को फिर से अपने लिए कुछ न बनाना पड़े। जिसके मकान में वह ठहरा हो उसके यहाँ से भिक्षा नहीं ले सकता। किसी का द्वार बंद हो तो उसको खोलकर या आवाज देकर बुलवाकर वह भिक्षा नहीं ले सकता। इतना ही नहीं किन्तु भिक्षा में भी सचित्त-सजीव, अचित्त-निर्जीव का विवेक करना चाहिए। वह कोई ऐसा पदार्थ भिक्षा में नहीं ले सकता जिसमें बीज हो और जीव होने की संभावना हो। इसके कारण स्वयं भगवान् महावीर के जीवन में ऐसा कई बार हुआ है कि उन्हें अपने नियमानुसार भिक्षा नहीं मिली। और वे खाली हाथ लौट आये और कई दिन के फाके किए। किन्तु उन्होंने अपने नियमों में कोई ढिलाई नहीं की।

भगवान् महावीर स्वयं नग्न रहे और अपने संघ के भिक्षुओं को भी उपदेश दिया कि जहाँ तक हो सके नग्न रहने का ही प्रयत्न भिक्षु को करना चाहिए। रहने के लिए उसी मकान का उपयोग करना चाहिए जो भिक्षु के निमित्त बनाया न गया हो। वृक्ष के नीचे, गुफागृह, श्मशानगृह—यही भिक्षु के लिए योग्य निवास स्थान हैं, अन्य नहीं। भिक्षु किसी सवारी का उपयोग नहीं कर सकता। उसे सदैव पादविहारी होना चाहिए। अनुयोग—स्वाध्याय में

छोडकर किसी एक स्थान पर स्थायी निवास जनभिक्षुओं के लिए महावीर ने निषिद्ध किया ह । वे स्वय भी सतत विहारी थे और सदव नये नये अपरिचित स्थानों में जाते थे और अपनी तपस्या करते थे । अपरिचित स्थानों में कई बार वे गुप्तचर समझकर पकडे भी गए और लोगा ने भी काफी कष्ट दिया किंतु वे अपने सतत विहार के नियम से विचलित नहीं हुए और जन भिक्षुओं के लिए भी सतत विहार का नियम बना दिया। इस प्रकार निर्मोही--निष्परिग्रही होने के लिए उन्होने भिक्षुओ के जीवन में काफी कडाई की। और इस बात का ध्यान रखा कि ये भिक्षु लोग समाज में अपने जीवन निर्वाह के लिए किसी प्रकार से भी बोझ रूप न बनें। उनका ध्येय तो यही रहे कि लोगा से सिफ सदाचार और जीवनशुद्धि की आशा रखें और स्वय भी अपने जीवन को उन्नत बनावें। अर्थात सवपर कल्याण का ध्येय रहने पर भी समाज से अपने स्वाथ की सिद्धि में अन्न, वस्त्र, निवास या किसी भी वस्तु की ये आशा न रखें। प्रेमपूवक कोई दे दे तो ले लें किंतु लेना अपना अधिकार और देना अन्य का कतव्य है ऐसी भावना न रखें। किसी इष्ट वस्तु क मिलने पर खुशी और न मिलने पर नाराजी--इन दोनों बातों से भिक्षु दूर रहें। शापानुग्रह यह भिक्षु का काम नहीं। यदि इन सब बातों को देखा जाय तो कहना होगा कि भगवान् महावीर ने जो सन्यास माग का उपदेश दिया वह लोक कल्याणकारी था।

एफ० ३
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस--५

स्वप्न और सत्य !

श्रावण मास की निस्पन्द मेघमालाओं के कोमल अंचल में विश्राम करने वाली तरल जल बिन्दु ! कुछ क्षणों तक सुवासित मलय समीर के शीतल झकोरों में जीवन का आनन्द लूटो और शुभ्र गगन मंडल की उज्ज्वल तारिकाओं के साथ आँखमिचौनी खेलो, पर अंतिम क्षण में जब धरती के विस्तृत गर्भ में सदा के लिए अपना अस्तित्व विलीन करने लगो तब तनिक भी शोक न करना क्योंकि जगत परिवर्तन शील है !

सुरभित पंखुड़ियों की मादकता से समस्त उपवन का वातावरण सुवासित करने वाले मृदुल पुष्प ! उषा की लाली मुस्कान से उत्पन्न मोती से स्वच्छ धवल ओस कणों को लूटो और अलौकिक यौवन की मदमाती बहार का उपभोग करो, पर दूसरे दिन ग्रीष्म ऋतु के प्रखर ताप से म्लान और शुष्क होकर जब धूलि-कणों में अपना पराग और पंखुड़ियाँ हमेशा के लिए मिलाने लगो तब दुखित न होना क्योंकि जगत असार है !

शून्य व निस्तब्ध अमावस्या की रात्रि में भयानक और सघन तिमिर को चीरकर ज्योति की उज्ज्वल किरण प्रदान करने वाले दीपक ! अपने क्षीण और आहत शरीर से भी जगत को आलोकित करो और भोले मानव के अंधकारमय नयनों में प्रकाश भर दो ! पर जब वही गहन तिमिर तुम्हें अपने विशाल अन्तस्तल में आत्मसात करने लगे और ज्योति किरणें धीरे धीरे क्षीण होकर, उसमें सदा को विलीन हो जाएँ तब विचलित न होना क्योंकि जगत स्वप्न है !

[illegible]
२ [illegible]

—[illegible]

जैन शिक्षण संस्थाओं में

धार्मिक शिक्षा

卐 卐 卐 卐 卐 श्री धनदेव कुमार 'सुमन' 卐 卐 卐 卐 卐

एक समय आया जब सम्पूर्ण भारतवर्ष पर ब्रिटिश सामन्तशाही का अधिकार हो गया। शासन संचालकों के हृदय में भारत को येन केन प्रकारेण सदैव के लिए परतन्त्रता की शृंखलाओं में आबद्ध रखने की विचारधाराएँ उद्वेलित हो उठीं। उपाय सोचे जाने लगे। पाश्चात्य संस्कृति के उद्भट विद्वानों में विचार विनिमय हुआ। मैक्समूलर के इन विचारों से कि यदि आप किसी देश को परतन्त्रता के पाशजाल में बांधना चाहते हैं तो आवश्यक है उसकी संस्कृति तथा साहित्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाए, लोग प्रभावित हो उठे। बस फिर क्या था? इन्हीं विचारों को भारत में क्रियान्वित किया जाने लगा। पाश्चात्य सभ्यता तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार करने वाली शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की जाने लगीं। शीरीं फरहाद, लैला मजनूं तथा अरेबियन नाइट्स जैसी अनमोल कथाओं से परिपूर्ण साहित्य से चरित्र निर्माण किया जाने लगा। वे होनहार नवयुवक जिन्हें देश और समाज की डगमगाती नैया को पार लगाना था, चरित्र भ्रष्ट हो अश्लील गीत गाते हुए इतस्ततः परिभ्रमण करने लगे। कहाँ इनका यह पतित जीवन और कहाँ प्राचीन संस्कृति की एक यह घटना जिसकी स्मृति मात्र से ही मस्तक गौरवान्वित हो हो उठता है!

जब औरंगजेब की सेनाएँ पराजित हो युद्ध से भाग उठीं, तब शिवाजी के सैनिकों ने नगर को लूटना प्रारम्भ कर दिया। एक मरहठा सैनिक एक स्त्री को पकड़ लाया और शिवाजी को सम्बोधित करते हुए कहने लगा, 'देखिए! मैं आप के लिए कैसी सुन्दर एवं अनुपम वस्तु लाया हूँ।" शिवाजी ने उस रमणी के अनुपम लावण्य को देखा और कहा, "मैं बहुत ही भाग्यवान् होता यदि मेरी माँ इतनी रूपवती होती। सरदारो? आदर सहित इन्हें इनके निवासस्थान पर पहुँचा दो।" जनता पाषाणवत मन्त्रमुग्ध हो देखती रही। मुक्त कंठ से शिवाजी का गुणानुवाद किया जाने लगा। जय जयकारों

से आकाश और पाताल गूंज उठा। और वह सरदार यहां रहा था गुरु आंसू। उसे डूब कर मरने के लिए कहीं जगह भी प्राप्त न हो रही थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य सभ्यता के विषैले प्रभाव से वातावरण अत्यन्त दूषित हो उठा। इस शिक्षा के विरुद्ध लोगों के हृदय में विद्रोह की चिनगारी सुलगने लगी। यह चिनगारी हवा पाकर एक दिन भयंकर विद्रोह की ज्वाला में भड़क उठी। सुधारकों ने समय की गति विधि को पहचाना। बढ़ते हुए इस रोग की औषधि का अनुसन्धान किया। प्राचीन गुरुकुल तथा सामाजिक शिक्षण संस्थाओं की पद्धति को श्रेयस्कर समझ कर तब इसका श्रीगणेश किया।

विश्व में वही समाज जीवित रह सकता है जो समय के साथ साथ चले। जैन समाज भी इन विचारों से अछूता न रहा। स्थान २ पर जैन हाई स्कूल, पाठशालाएं, गुरुकुल तथा महाविद्यालय स्थापित किए गए। कार्यकर्ता अदम्य उत्साह और अद्भुत लगन से इनके संचालन में जुट गए। इस दृष्टि से हम गत चौथाई शताब्दि को महान क्रान्ति का युग कह सकते हैं। इन पच्चीस वर्षों ने शिक्षा संस्थाओं में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। संचालकों ने अपने सतत अनवरत प्रयत्नों से देश और जाति में जागृति की एक लहर पैदा कर दी। विद्यार्थियों के हृदयों में समाज सेवा के भाव अंकुरित होने लगे और यह आशा होने लगी कि वह समय दूर नहीं जब जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रसार भारत में ही नहीं प्रत्युत विश्व के कोने २ में हो उठेगा।

समय निर्बाध गति से चलता रहता है। समय आया जब कि हमें इन्हीं आशाओं पर तुषारपात होता हुआ दृष्टिगोचर होने लगा। धार्मिक महाविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले नवयुवकों के सम्मुख आजीविका का प्रश्न उपस्थित हो उठा। समाज में आज कल एक विचारधारा प्रचलित हो उठी कि इन धार्मिक शिक्षा प्राप्त युवकों की आजीविका का उत्तरदायित्व समाज के कन्धों पर ही रहेगा। यह विचारधारा इतनी प्रबल हो उठी कि समाज में लौकिक बजाय धार्मिक शिक्षा का मूल्य घट गया। विद्यार्थी स्वयं भी इसे अनुभव कर लौकिक शिक्षा की ओर अग्रसर होने लगा। ये संस्थाएं दुर्भाग्य से विद्वानों की परम्परा के रूप में चलती रहीं। यह पद केवल धार्मिक शिक्षा के केन्द्र हुए स्कूल तथा पाठशालाएं।

ये शिक्षण संस्थाएं वर्तमान समय में जिस रूप में चल रही हैं उसे देखते

हुए यदि यह कह दिया जाए कि इन पर 'जन' का केवल साईन बोड ही लगा हुआ ह तो कोई अत्युचित न होगी। इससे अधिक हीन दशा और क्या होगी कि निरतर कई वर्षों से चलने वाली इन सस्थाओ में 'जयजिनेन्द्र' शब्द की ध्वनि भी कहीं कणगोचर नहीं होती। यदि सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया जाए तो इसके निम्न कारण प्रतीत होते ह—

(१) समाज की उदासीनता—जन समाज की अनेक शिक्षण सस्थाएँ शिक्षा के प्रसार में जुटी हुई ह। इन शिक्षण सस्थाओ में लौकिक शिक्षा के साथ २ धार्मिक शिक्षण भी दिया जा रहा ह। परन्तु समाज के नेताओ ने कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि धार्मिक शिक्षण इन संस्थाओ में किस रूप में दिया जा रहा है। कहीं कुछ पढ़ाया जाता ह और कहीं कुछ। अर्थात् प्रत्येक सस्था अपनी डेढ़ इट की मस्जिद बनाए बैठी ह। आवश्यकता तो इस बात की थी कि समाज के कणधार कई वष पूव इस विषय पर दृष्टि पात करते परन्तु आज तक भी किसी के कान पर जू नहीं रेंगी। समाज को चाहिए कि वह कई वर्षों से छाई हुई उदासीनता के प्रगाढ़ आवरण को छिन्न भिन्न कर आबाल वृद्ध में एक नवीन चेतना सचारित कर दे। एक ऐसी सस्था का निर्माण किया जाए जो समस्त सस्थाओ को एक केन्द्र के अधीनस्थ करे। अर्थात जब तक हमारी सस्थाओ का एकीकरण नहीं होता तब तक प्रगति के उच्च पद पर आसीन होना दुष्कर ह।

(२) काय संचालकों की उदासीनता—प्रत्येक सस्था के कायकर्ताओ तथा प्रबन्धकारिणी समितियों का विशेष ध्यान इस बात की ओर रहता ह कि लौकिक विषयों की परीक्षा का परिणाम शत प्रतिशत रहे। इसके लिए वे विशेष चिन्तित रहते ह। यदा कदा स्कूल में अन्य विषयों का निरीक्षण भी करते ह परन्तु धर्मशिक्षा की क्या अवस्था ह और क्या पढ़ाया जाता ह? इस पर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करते। इनकी यह उदासीनता पढ़ाने वालों को निरुत्साहित कर देती ह और वे इस विषय को अनावश्यक समझ इसके उद्देश्य को समाप्त कर देते ह।

(३) धार्मिक अध्यापकों का आदर न रखना—काय वाहकों के हृदय में इस मनोवृत्ति की प्रधानता रहती ह कि हमें काय करने वाले व्यक्ति अल्प से अल्प वेतन पर प्राप्त हो जाएँ। बेकारी रूपी महा विकराल दत्य का भीषण साम्राज्य जब चतुर्दिक छाया हुआ ह तो अल्प वेतन पर काय करने वालों का मिल जाना कोई कठिन नहीं। परिणामत डाक व तीन पात

वाली सहायता पर्याप्त होती है। कहीं अधिक वेतन मिल जाने पर वे उस संस्था को छोड़ अन्यत्र चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो सम्मान [illegible] हमारे हृदयों में अंगरेजी शिक्षा प्राप्त युवकों के प्रति होती है वह धार्मिक शिक्षकों के प्रति नहीं। अल्प वेतन प्राप्त होने के कारण उन्हें इधर उधर हाथ फैलाने पड़ते हैं।

धार्मिक शिक्षण देने वालों को चाहिए कि वे समय की गतिविधि को पहचानते हुए देश, काल और भाव के अनुसार चलें। यह वर्त्तमान युग है और जैन धर्म के सभी सिद्धान्त विज्ञान की कसौटी पर परखने पर [illegible] निकलते हैं। उसी के अनुरूप सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाए तो छात्रों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ सकता है। पढ़ाने के अतिरिक्त हमारा मुख्य उद्देश्य उनके चरित्र निर्माण पर ही होना चाहिए। धार्मिक शिक्षा [illegible] जीवन को समुन्नत बनाने के लिए आवश्यक है। परन्तु उसकी रूपरेखा क्या हो यह विषय अत्यन्त ही विचारणीय है। यदि ये शिक्षण संस्थाएँ मात्र [illegible] साम्प्रदायिकता का पाठ नहीं पढ़ातीं, बालकों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों शक्तियों को पूर्ण विकसित नहीं करतीं तो हम छात्रों के जीवन से खेलते हैं जिसका हमें अधिकार नहीं है। हम समाज के उन धनिकों को [illegible] दिन रात के पसीने की गाढ़ी कमाई है, व्यर्थ में व्यय कर रहे हैं। इससे [illegible] अच्छा नहीं होगा कि हम उन शिक्षण संस्थाओं का जो हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं करतीं बन्द कर व्यर्थ में व्यय होने वाले द्रव्य को दु:खियों, अनाथों [illegible] उन स्वधर्मी भाइयों का सहायतार्थ लगा दें जिनके मुँह में कई दिनों से अन्न का एक ग्रास भी नहीं गया।

जैन भवन,
[illegible]
[illegible]

कहानी

आत्म-धर्म

श्री जयभिक्खु

उषा की लालिमा जिस समय पृथ्वी को चूम रही थी उस समय आततायी को ज्ञान हुआ कि जिसे वह रस्सियों से बाँध कर पीट रहा था वह तो वैशाली के महान् गणतन्त्र का ज्ञातवंशीय राजकुमार है। वर्धमान उसका नाम है। इतनी मार के सामने तो भूत भी भाग जाता है किन्तु यहाँ तो क्रोध की एक रेखा तक नहीं, वेदना का एक शब्द तक नहीं।

वाह, कुमार वाह! चेहरे पर कैसी शान्ति है! ललाट पर कैसा अक्षुण्ण तेज है! नयनों में कैसी प्रेमभरी प्रीति है! स्वर्ण के समान पीतवर्ण काया है। उसके शरीर पर रस्सी के काले चिह्न इन्द्रनील मणि की रेखा के समान शोभित हो रहे हैं! अनिष्ट भी इष्ट को प्राप्त करके कैसा शोभित हो रहा है! देह की पीड़ा के साथ मानो इस मानव का कोई संबन्ध ही नहीं!

पीड़ा पहुँचाने वाला किसान आखिर रो पड़ता है, पैर पकड़ कर आक्रन्दन करता है—"ओ करुणापति! मुझे क्षमा करो।"

क्षमा करने की बात ही क्या थी? अपने कर्म का ही तो फल था। जन्मान्तर के अपने अपराध का ही तो कार्य था। इस अपराध के आगे एक और नया अपराध खड़ा करके अपराधों की माला बनाने से क्या लाभ? अपराध को भोग लेने पर वह स्वयं शान्त हो जाता है।

वर्धमान शान्त है। आँखों से तेज निकल रहा है। किसान बिना बोले ही समझ जाता है कि कुमार ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया है।

उषा अरुणिमा को ले आई। अरुणिमा आकाश में अपने स्वामी सूर्य को ले आई। सूर्य के ताप से पृथ्वी जलने लगी।

वनमार्ग शून्य सा पड़ा है। लू की लपटें चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य फैला रही है। राजमहल और राजवाटिकाएँ दूर रह गई हैं। शरद् ऋतु के

एकाकी मेघ के समान वर्धमान महावीर आगे आगे कदम बढ़ाए चले जा रहे हैं। पैर तो पृथ्वी पर चल रहे हैं किन्तु मस्तक मानो गगनमण्डल को भेदने के लिए आकाश में चल रहा है।

कितने ही देवालय, कितने ही यक्ष-यक्षिणियों के स्थान चले जा रहे हैं किन्तु उनके हाथ बद्धाञ्जलि नहीं होते। देव-देवियों की कृपा प्राप्त करने के लिए मानवजाति ने स्थान स्थान पर मंदिरों का निर्माण कर बड़ी सुविधा प्रदान की है। देव के प्रसन्न होने पर क्या नहीं मिल सकता! किन्तु इस सुविधा की उन्हें कोई चेष्टा नहीं।

अरे वर्धमान! बाल हठ छोड़ दे। तेतीस कोटि देवताओं के सामने तेरी क्या हिम्मत! तूने करोड़ों अनुयायियों के इष्ट देवता की अवहेलना आरम्भ की है। तेरा उपजाया हुआ तत्त्वज्ञान कहीं तुझे ही न खा जाय!

वायु का वेग बढ़ रहा है। सहस्रमुखी शेषनाग की विषपूर्ण फुत्कार के समान लू की लपटें शरीर को जला रही हैं, धूल उड़ उड़ कर आँखों में गिर रही है। दिशाएँ तरह तरह की भाषाओं से गरज रही हैं। मतवाला मयूराकार और गजमुखाकार रथ आकाश में उड़ रहे हैं।

जयजयकार करो! ऐरावत के स्वामी, शचीपति, देवाधिदेव और स्वर्ग के सम्राट् इन्द्रदेव आ रहे हैं। पधारिए इन्द्रदेव! आप की प्रसन्नता से क्या सिद्धि नहीं होती? धन मिलता है, धान्य मिलता है, स्वर्गसुख मिलता है, देवांगनाएँ मिलती हैं, अप्सराएँ मिलती हैं।

"वर्धमान! ठहर जाओ।" इन्द्रराज का गम्भीर स्वर सुनाई दिया "कुमार! एक कदम भी आगे न बढ़ना, मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

वर्धमान वहीं पर शान्ति से खड़े रहे।

"तुमने इन्द्र और इन्द्रपूजा का निषेध किया है?"

वर्धमान ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

"यज्ञादि में मारने न देने का उपदेश दिया है?"

वर्धमान ने पूर्ववत् सिर हिलाया।

"और इस प्रकार ऐसे कितने देव देवियों की पूजा का भी निषेध किया है?"

इन्द्रराज के शब्दों में उत्तेजना झलक रही थी।

वधमान का प्रत्युत्तर यही था। मुख पर निर्भयता का वही तेज था।

इन्द्रराज इस प्रकार के प्रत्युत्तर की आशा से नहीं आए थे। उन्होंने अपने वचनों की अवज्ञा करने वाला अभी तक कोई नहीं देखा था। इन्द्रराज वेग में जरा आगे बढ़े। उनके रत्नजटित मुकुट के हीरे क्रोध से कांपने लगे। मुद्रिका अंगुली पर चक्कर काटने लगी। चक्षुओं में लालिमा पैदा हो गई। वज्रदण्ड चंचल हो उठा।

पर वधमान तो उसी निर्भयता से खड़े हैं।

सामंत खड्ग लेकर इन्द्र के पीछे आकर खड़े हो गए। वे मारने के लिए अत्यन्त अधीर मालूम होते थे। इन सामन्तों के पीछे तलवारों से भी अधिक शक्तिशाली देवांगनाएँ झूमती हुई आइं। उनके पीछे अर्धनग्न अप्सराएं नृत्य करती हुई पहुँचीं। यह सारी इन्द्रराज की सेना की अनुपम शक्ति थी।

किन्तु वधमान पाषाण की प्रतिमा के समान शान्तभाव से खड़े थे। इस क्रोध, मोह और माया का मानो साधन और सर्वत्तिहीन इस महामानव पर कोई प्रभाव न था। पत्थर पर पानी कैसे टिक सकता है?

"तुमने आत्मा को ही सर्वोपरि पद पर स्थापित किया है? और लोगों को आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति के—ईश्वर के सामने भी झुकने की मनाही की है?"

"हाँ", वधमान ने स्वीकार किया।

"वधमान! मैं तुम्हारा हितचिन्तक हूँ। मुझ से अपना संबंध न बिगाड़ो। तुम जिस आदर्श को लेकर निकले हो उसका मार्ग लम्बा है। ये घन-पर्वत, ये ग्राम नगर, ये सरिता तट और जलाशय मेरे साम्राज्य के अन्तर्गत हैं। मंदिरों में मेरी पूजा होती है। स्थान स्थान पर मेरा जय जयकार होता है। पद पद पर मेरे अनुचर हैं। वचन पर नियंत्रण रखना। जगत् को विपरीत मार्ग की शिक्षा न देना!"

वधमान इन्द्र के वक्तव्य का मुद्रांकित भावों से मानो तिरस्कार कर रहे थे।

'वधमान! मन में गर्व न रखो। मेरे उपासकों और अनुचरों की अगणित सेना तुम्हारे गर्व को चूर कर देगी। मुझ से न उलझो। मेरा सहयोग तुम्हारे लिए सहायक होगा। किसी समय अवसर पड़ेगा तो मैं ही काम आऊँगा।'

"कीर्ति और मान ने ही अनेक त्यागों को निष्फल बनाया ह। इसी का मने सब प्रथम त्याग किया ह। ससार को पार करने वाले कई बार कीर्ति के कूल पर ही डूब कर मर जाते ह। इसीलिए म विस्मृति के अधकार में जाने की इच्छा रखता हूँ। अनाय देश की ओर प्रवास करने की भी इच्छा ह।"

"अनाय देशो में साथ रहूँगा तो काफी सुविधा होगी।" इन्द्र की सहनशीलता सीमातीत हो रही थी, चर्चा में बहुत समय व्यतीत हो गया था और मदिरों में अप्सराओं के नृत्य की राह देखी जा रही थी।

"मुझे सुविधा की चिता नहीं। सुविधा की चिता करने वाला धर्म, पंगु होता ह। ससार को देव-देवियों के मिथ्या-जाल से छुडाना ही सच्ची सेवा है। सिह सरीखी आत्मा की आज कसी दुदशा की जा रही ह ! आत्मा के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं। आत्मा ही ईश्वर ह। इन्द्र ! यदि आराम की इच्छा होती तो घर क्यों छोडता ! व्यापारी नश्वर व्यापार के लिए कष्ट सहता ह, क्षत्रिय क्षणिक कीर्ति के लिए मदान में उतरता ह। सांसारिक स्वाथ के लिए भी इतने कष्ट उठाये जाते ह तो आत्मा के लिए क्या नहीं किया जा सकता ?"

"आत्मा आत्मा क्या करते हो ? चोर के समान तुम्हारी आत्मा कहाँ छिपी हुई ह ? इस देह को तो देखो, दोनों में से कौन सुदर ह ?" सुन्दरतम नवयुवती अप्सरा ने अग भग करते हुए कहा। उसके यौवन से रस छलक रहा था। शरीर से सौगंध झर रहा था।

वधमान यह दृश्य देखते रहे। किन्तु यह क्या ? अप्सरा स्वयं लज्जित हुई। कमल पत्र से अपना निलज्ज वक्षस्थल ढाँक लिया।

"आकाश विद्युत के कभी दशन किये ह। इन्द्र के इस वज्र से भी नहीं डरते ?"

"मेघखण्ड आपस में टकराते ह इसलिए विद्युत उत्पन्न होती ह। घषण बिना तेज की प्राप्ति असंभव ह।" मानो कोई अप्रतिरथ महारथी शीतल शक्ति का घोषणा कर रहा था।

"और यह गडगड़ाहट ? इससे भी डर नहीं लगता ?"

"आन्तरिक गड़गड़ाहट से कम !"

"राजकुमार !" इन्द्रराज का महासामन्त समीप आया, "कभी इन्द्र [illegible] देखा है ? उसके पीछे की सुहावनी नगरी की कल्पना की है। कभी [illegible] के समय आकाशगंगा देखी है ? उसके किनारे मुक्ता-कन्दुक से खेलती [illegible] नग्न अप्सराओं की कल्पना की है ?"

"कल्पना-विहार को छोड़ दो। आत्मधर्म के पुजारी के लिए यह साधारण बात है।"

"साधारण !" महासामन्त ने क्रोधभरी आँखों से वर्धमान की ओर देखा किन्तु अंगार मानो पानी में गिरकर बुझ गया।

इन्द्रराज दंग हो गए। यह साधारण मानव इन्द्र के कृपा प्रसाद को ठुकरा रहा था। इन्द्र ने शंख फूंका और प्रचण्ड स्वर से कहा "कुमार ! तुम्हें समझाना असम्भव है। दीपक पर गिरते हुए पतंग को नहीं बचाया जा सकता। आज्ञा दे देता हूँ अपने अनुचरों को-उपासकों को ! स्वतन्त्र होकर चलना, आँधी आए, उल्कापात हो, कोई पिछाड़े अथवा मारे तो मुझे दोष न देना। सहायता के लिए बढ़ाये हुए मेरे हाथ का तुमने स्वयं तिरस्कार किया है।"

आकाश में गड़गड़ाहट होने लगी। वृक्ष की शाखाएँ कम्पित होने लगीं। आकाश में मेघ के पत्थर बरसने लगे। अप्सराओं ने आभूषण उतार दिये। वातावरण में तूफान के शंख बजने लगे।

"मैं आ पहुँचा अन्तिम पार ! मेरी आत्मा का मरण नहीं होगा,-[illegible] तुम्हें क्या मालूम ! यह आँधी नहीं आ सकती इसकी तुम्हें क्या खबर !"

वर्धमान महागिरि की तरह अविचल थे।

इन्द्र क्रोध से विक्षिप्त हो उठा। अंतिम समय तक उसे अपनी पराजय का भान न हुआ। आत्मधर्म के पुजारी ने ईश्वर के नाम से चलने वाले [illegible] को मानव से बिल्कुल इनकार कर दिया।

[illegible] }
[illegible] अहमदाबाद-१ }

दौरे के संस्मरण

श्री हरजसराय जैन

अभ्यास न होने से संस्मरण लिखना आसान नहीं है। सिर्फ कार्य व उद्देश्यवश भ्रमण में गए हुए व्यक्ति के लिए तो बहुत सी बातें कुछ उलझी हुई सी जान पड़ती है। उन्हें पृथक करके लिखना और भी मुश्किल हो जाता है। संभव है कि यह कठिनाई अभ्यास या ज्ञान की कमी के कारण मुझे ही लगती हो जो वास्तव में हो ही न।

इस वर्ष राजस्थान और मध्यभारत के भ्रमण की प्रेरणा इसलिए भी हुई कि समिति के बनारस में बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र व विकास के साथ साथ इसकी माँगें विशाल और बहुरूपी होती जा रही है। इनकी व्यवस्था की प्रेरणा दिनों दिन बलवती हो रही है। ऐसी हालत में जैन जनता को पार्श्वनाथ विद्याश्रम शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय, और 'श्रमण' आदि वर्तमान प्रवृत्तियों से परिचित कराना जरूरी होता जाता है, इसके अलावा और भी आवश्यक प्रवृत्तियों एवं भावी साहित्य निर्माण आदि योजनाओं का दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक था। जैन समाज में साधुओं का विशेष स्थान है। प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक अच्छे कार्य के साथ उनकी सहानुभूति तभी मिल सकती है, जब कि उनको तसल्ली हो जाय कि जैनोलाजी (जैन विद्या के क्षेत्र) में रिसर्च का काम करने वाले विद्वान उसकी अवहेलना नहीं करते, बल्कि उसी वस्तु को नए रूप में, नई भाषा में अधिक प्रामाणिक रूप से रखने का प्रयत्न करते हैं। दार्शनिक और सांस्कृतिक गुत्थियों को जैन तीर्थंकरों व जैन आचार्यों के दृष्टिकोण को लेकर सुलझाने की चेष्टा करते हैं, उनके गौरव को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं और यह दिखाते हैं कि अपने अपने काल में उन सभी ने अपने स्वीकृत विचारों के विरोध में भी विपक्षियों के वज्रसमान प्रहारों को खुली छाती से सहन किया था। इतना ही नहीं उन्हीं की विचार सामग्री से बल्कि अपने पक्ष का समर्थन किया था। इस बारे में रतलाम में विराजमान प्रसिद्ध मुनि श्री प्रमचन्द्र जी महाराज का उदाहरण ही काफी होगा। उन्होंने बड़े ध्यान से डॉ०

बारे में खासकर साधुसमाज को काफी परिचय था। जैनजनता में भी उत्साह पाया। हमारे विचारों को सभी ने प्रेम व श्रद्धा से सुना। नौजवानों में विशेष जिज्ञासा देखी। इन सब बातों से हमें संतोष तो हुआ ही, साथ ही अपने काय में निष्ठा भी बढ़ी। 'श्रमण' पत्र के बारे में भी उत्सुकता पाई गई। खासकर साधुलोग इसे पढ़ते सुनते भी ह। यह भी पता लगा कि उनके पास 'श्रमण प्राय पहुँच जाता ह। 'श्रमण' में बनारस की प्रवृत्तियों के बारे में हर महीने थोड़ा बहुत निकलता रहता ह इससे बहुतों को पता लगता रहता ह कि यहाँ क्या काय हो रहा है। इससे सब जगह हमारा काम भी सरल हो जाता था। अधिक परिचय देने की जरूरत नहीं रहती थी। भूमिका पहले से बनी हुई थी।

देहली से हम लोग १६ अक्तूबर को सीधे बीकानेर पहुँचे थे। सेठिया जी के यहाँ ठहरे। समिति के प्रधान ला० त्रिभुवननाथ जी यहाँ सीधे आए थे। हमने देखा कि श्री भैरोदान जी सेठिया ८५-८६ वय की अवस्था में भी सर्वांग स्वस्थ, चलते फिरते, अपनी प्रवृत्तियों में निरन्तर नियत समय पर भाग लेते हं। जिनको देख कर प्रसन्नता के साथ श्रद्धा भी होती ह। श्री अगरचन्द जी नाहटा की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ दशनीय ह। आप का पुस्तक संग्रह बड़ा सुन्दर व सुव्यवस्थित है। इंदौर में राज्यभूषण कन्हैयालाल जी भंडारी से मिल कर विशेष प्रेरणा मिलती ह। आप भंडारी मिलों और व्यापारिक सभी प्रवृत्तियों को छोड कर योग साधना और जन हिताय चिकित्सा में ही प्रवृत्त रहते ह। आप का औषधालय भी अन्य कामों की भाँति विकसित और सुव्यवस्थित देखा। भीनासर में सेठ चम्पालाल जी बाँठिया का नानाविध सामाजिक प्रवृत्तियों के अलावा मकान की सुन्दर रचना और सजावट के साथ ही कलाप्रेम विशेष सराहनीय ह।

हम सभी जगह इतनी देर से पहुँचे थे कि चातुर्मास उठने वाला ही था। हमें यह बार-बार अनुभव हुआ और लोगों ने कहा भी कि जन समाज से कुछ लेना हो तो सबसे अच्छा समय पर्युषण पव होता ह। उन दिनों में एक उत्साह होता ह, सब के मन में कुछ न कुछ देने की भावना रहती ह। यह ठीक होते हुए भी हमें लगा कि जिस डेपुटेशन को अनेक जगह जाना हो, वह सिवाय एकाध जगह के पर्युषण के दिनों में ही सवत्र कसे पहुँच सकता ह, फिर सभी साथियों की सुविधा का भी प्रश्न रहता ह। इस वर्ष तो छोटे भाई को

महावीर

महामृत्यु भी हार गई है !
जीवन निर्भय, अमर, प्राणमय, पीड़ा यह स्वीकार गई है !

सुधा न रुचती फीकी-फीकी,
पीता हूँ तीखा हलाहल,
तन-मन को कंचन करने को
सुलगाता हूँ नित प्राणानल।

दुर्दम मानव, परुष, वज्रमय, इसकी नक्श निगार नई है !

वञ्चित रस तो विरस हो गया,
यंत्रणा-स्वरस अब पीता हूँ,
मेरा अमरत्व ज़रा देखो,
मैं स्वयं काल बन जीता हूँ।

स्वयं विधाता पुरुष, तर्कमय, प्रगति नदी-सी धारमयी है !

अश्रु खोजने आई पीड़ा—,
वापस जाती है टकरा कर;
व्याकुल करने आई चिन्ता
स्वयं भागती है घबरा कर।

अकलुष अन्तस्, कार्यमिश्र मन मेधा शत शतद्वारमयी है !

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन
कदमकुआँ, पटना—३

—श्रीरंजन सूरिदेव

भयकर विष ने पक्षियों तथा जीव जन्तुओं की तो बात दूसरी, पेड पौधों तक को सुखा दिया है, अत तुम अविलम्ब वापिस हो जाओ।'

निर्मोही और आत्मविश्वासी साधक महावीर ने पौरुषोचित धन्यवाद प्रकट कर अपना चलना जारी रखा, और कुछ ही समय में वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक टीले पर अपना आसन जमा लिया। कहना न होगा कि यह टीला उसी भयकर सप की बामी (घर) थी। विषधर जब घूमकर अपने घर आया और देखा कि एक कोई अजनबी पुरुष उसके घर पर आसन जमाए बैठा है तो उसे यह अपना तिरस्कार और पराजय ज्ञात हुई। उसने आवेश में आकर साधक महावीर के पर में पूरी शक्ति लगाकर काट लिया। तेजस्वी साधक पर जब इसका कुछ भी असर न हुआ तो उसने और कई जगह काटा। फिर भी उनके ऊपर जरा भी इसका प्रभाव न हुआ।

साधक महावीर की जब समाधि भंग हुई तो देखा कि सप कतराया हुआ उनके सामने बैठा है। शान्त स्वर में उन्होंने पूछा—"क्यो भाई, तुम्हारा क्रोध तो शान्त हो गया न ?" सप ने यह सुनकर लज्जा से अपनी गदन झुका ली। यह अपने किए हुए पाप कर्मों के प्रायश्चित्त के लिए मानो मौन सम्मति थी।

उस दिन से उसने अपनी हिंसक मनोवृत्ति छोड दी। यह साधक की सच्ची साधना एव आत्मबल का प्रभाव था। कहते हैं कि उस दिन से बाद से यह आश्रम पुन हरा भरा एव शान्ति तथा विद्या का केन्द्र बन गया।

माल्थोन
सागर (मध्यप्रदेश)

की धूम थी, चारों तरफ भय, शोक और पीड़ा का अखंड साम्राज्य था। कहीं बालक खिसियाने से होकर चीत्कार करते थे तो कहीं विश्ववद्य नारी जाति का करुण आर्तनाद पृथ्वी के उर को झकझोर रहा था। सारा समाज भीषण वेदना से कराह रहा था। भौतिकवाद के मोहक जाल में मानव बुरी तरह से फंस कर छटपटा रहा था तथा आध्यात्मिकवाद विस्मृति के गहन अंधकार में विलीन हो रहा था।

देश और समाज की स्थिति अत्यन्त विषम थी। ऐसी भयानक परिस्थितियों से जब वातावरण अशान्त और भीषणतम हो उठता है तब मानव निरुपाय होकर शक्ति साधना में लीन होता है, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। वह अपने मस्तिष्क को झुकाकर हित की आकांक्षा करता है। ऐसे समय में एक महापुरुष का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है। एक ऐसे पुरुष की उन्हें आवश्यकता थी जो सत्य को प्रकट करके उन्हें दुरवस्था से बचा सके। सत्य का आलोक दिखाकर नयनों के सामने से माया के पर्दे को हटा सके। ज्ञान का बोध कराकर विमूढ़ता का विनाश कर सके। उस समय में एक ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जो जीवन के महत्त्व को समझाकर आत्म कल्याण का सुगम से सुगम मार्ग बताकर पतितों को ऊँचा उठा दे।

आंग्ल भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है "Necessity is the mother of invention" अर्थात 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है'—इसके अनुसार परिवर्तन हुआ। मनुष्यों के भाग्य ने पलटा खाया। देश में सौभाग्य सूर्य उदय हो रहा था। समस्त दिगदिगन्त रागमय हो उठे थे। एक ऐसी दिव्य ज्योति जन्म ग्रहण करना चाहती थी जिसके पावन चरणों की रज कण से यह धरा पूत होकर अपने आप को शिवभावना से अलंकृत करना चाहती थी। अन्तत वह स्वर्णिम दिवस भी आ ही पहुंचा और चैत्र सुदी त्रयोदशी की पावन वेला में, मांगलिक घड़ी में वीर प्रभु वर्धमान ने क्षत्रिय कुण्ड नगर में महाराजा सिद्धार्थ के घर त्रिशला की कुक्षी से जन्म ग्रहण किया। पवन उनका जन्म संदेश लेकर सम्पूर्ण दिशाओं को सुनाने के लिए चल पड़ा। कलियों ने प्रसन्नता से चटक कर भ्रमरों को रसपान कराने के लिए अपना उर कमल विकसित कर दिया। स्वर्ग में भी संदेश पहुँच गया। इन्द्र और देवताओं ने मिल कर महोत्सव मनाया।

बालक वर्धमान यौवनावस्था में प्रविष्ट हुए, जिसके द्वार पर पर रखते ही मनुष्य मदान्ध और मदोन्मत्त होकर भूल जाता है कर्तव्य को और स्वयं को।

की धूम थी, चारों तरफ भय, शोक और पीड़ा का अखड साम्राज्य था। कहीं बालक खिसियाने से होकर चीत्कार करते थे तो कहीं विश्ववंद्य नारी जाति का करुण आर्तनाद पृथ्वी के उर को झकझोर रहा था। सारा समाज भीषण वेदना से कराह रहा था। भौतिकवाद के मोहक जाल में मानव बुरी तरह से फस कर छटपटा रहा था तथा आध्यात्मिकवाद विस्मृति के गहन अंधकार में विलीन हो रहा था।

देश और समाज की स्थिति अत्यन्त विषम थी। ऐसी भयानक परिस्थितियों से जब वातावरण अशान्त और भीषणतम हो उठता ह तब मानव निरुपाय होकर शक्ति साधना में लीन होता ह, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य ह। वह अपने मस्तिष्क को झुकाकर हित की आकांक्षा करता ह। ऐसे समय में एक महापुरुष का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता ह। एक ऐसे पुरुष की उन्हें आवश्यकता थी जो सत्य को प्रकट करके उन्हें दुरवस्था से बचा सके। सत्य का आलोक दिखाकर नयनों क सामने से माया के पर्दे को हटा सके। ज्ञान का बोध कराकर विमूढता का विनाश कर सके। उस समय में एक ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जो जीवन के महत्त्व को समझाकर आत्म कल्याण का सुगम से सुगम मार्ग बताकर पतितों को ऊँचा उठा दे।

आंग्ल भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत ह "Necessity is the mother of invention" अर्थात 'आवश्यकता आविष्कार की जननी ह—इसके अनुसार परिवर्तन हुआ। मनुष्यों के भाग्य ने पलटा खाया। देश में सौभाग्य सूर्य उदय हो रहा था। समस्त दिग्दिगन्त रागमय हो उठे थे। एक ऐसी दिव्य ज्योति जन्म ग्रहण करना चाहती थी जिसके पावन चरणों की रजकण से यह धरा पूत होकर अपने आप को शिवभावना से अलंकृत करना चाहती थी। अन्तत वह स्वर्णिम दिवस भी आ ही पहुँचा और चत्र सुदी त्रयोदशी की पावन वेला में, मांगलिक घड़ी में वीर प्रभु वर्धमान ने क्षत्रिय कुण्ड नगर में महाराजा सिद्धार्थ के घर त्रिशला की कुक्षी से जन्म ग्रहण किया। पवन उनका जन्म सदेश लेकर सम्पूर्ण दिगाभा को सुनाने के लिए चल पड़ा। कलियों ने प्रसन्नता से चटक कर भ्रमरों को रसपान कराने के लिए अपना उर कमल विकसित कर दिया। स्वर्ग में भी सदेश पहुँच गया। इन्द्र और देवताओं ने मिल कर महोत्सव मनाया।

बालक वर्धमान यौवनावस्था में प्रविष्ट हुए, जिसके द्वार पर पर रखते ही मनुष्य मदान्ध और मदोन्मत्त होकर भूल जाता ह कर्तव्य को और स्वयं को।

कोई भी मनुष्य उपदेश देने का अधिकारी तभी हो सकता है जबकि स्वयं आचरण समुपस्थित कर उसका अनुकरण करता रहे। भगवान महावीर अपूर्व क्षमाशील थे भयंकर यातनाओं में भी उन्होंने क्षमा का पल्ला कभी नहीं छोड़ा था बल्कि अत्यन्त दृढ़ता से पकड़े रहे। चण्डकौशिक ने अपनी विषमय फुत्कारों से सम्पूर्ण विजन प्रान्त में हलचल उत्पन्न कर दी, वृक्ष लता तक उसके जहरीले श्वास से झुलस गए किन्तु वह महावीर को नहीं डिगा सका। अभिभूत होकर अन्त में उसे अत्यन्त वेदना हुई। महावीर का ध्यान खुलने पर वह पालतू नाग की तरह उनके चरणों में लोटने लगा। महावीर ने क्षमादान देकर उपदेश दिया तथा उसका उद्धार किया। अहा! कैसा रम्य और उदार हृदय था जिन्होंने अपने ही नहीं मानवता के शत्रु को क्षमादान दिया। ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ उनके जीवन में घटित हुईं। वनदेवियां अन्य सौन्दर्य लिये उन्हें पथभ्रष्ट करने के प्रयत्न में असफल हुई। संगम देव एवं ग्वाले की यातनाएँ असफल रहीं। उन्होंने अपनी नीचता का अनुभव किया। बालक की तरह गिड़गिड़ा कर तीर्थंकर देव श्री जिनराज महावीर के चरण कमलों में गिर पड़े। महावीर ने उनको क्षमादान ही नहीं दिया अपितु सत्पथ पर लगाकर भवबंधनों से मुक्त कर मोक्षमार्ग दिखा दिया।

उन्होंने कहा— क्षमा निबलों का नहीं अपितु सबलों का भूषण है। क्षमा वह दीपस्तम्भ है जिसके संधिस्थल पर खड़ा होकर मानव शान्ति की पयस्विनी का उद्गम स्थल बन सकता है। क्षमा वह भूषण है जिससे अलंकृत होकर मानव जाति अपने को भव्य तथा महान् बनाकर उन्नति के चरमोत्कृष्ट आसन पर आसीन कर सकती है। आने वाली संततियों के लिए आदर्श रख कर सुपथ का निर्माण कर सकती है। कायरता दूसरों पर आक्रमण करना सिखाती है किन्तु सच्ची वीरता शत्रु पर भी क्षमावृत्ति सिखाती है।

भगवान् महावीर के जीवन में हमें ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जिनमें उन्होंने हिंसक, वन्य पशुओं, यक्षों, दानवों तथा निर्मलता के चोगे में कपटवेश वालों को अभिभूत करके मानवता का पाठ पढ़ा करके सन्मार्गारूढ़ किया। महावीर की क्षमा कायर, निर्वीय और शक्तिहीन की नहीं अपितु तेजस्वी, मनस्वी तथा ज्ञानी की थी। कायर तो क्रोध में बेंत की तरह सिहर उठता है। कहा है—

"क्षमा बड़न को चाहिये छोटन को उत्पात।" वास्तव में पूर्ण सत्य है। बड़े से तात्पर्य यहाँ आयु में बड़े होने से नहीं वरन् जो अपने कार्यों एवं गुणों से महान् हैं, क्षमा उसका भूषण है।

आज विश्व अपनी लगाई हुई लपटों में जलता जा रहा है। इसके लिए समापत्ति की आवश्यकता है। यदि साम्राज्यलिप्सु राष्ट्र समापत्ति स्वीकार कर लें तो अल्प दिनों में ही यह वसुंधरा फिर से लहलहा उठेगी। इसके वक्षस्थल पर रत्नराशि चमक उठेगी और उष्ण पवन मलय पवन में परिवर्तित हो जायगा। पर है तो—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं नर न घनेरे।

श्री जवाहर विद्यापीठ
भीनासर (बीकानेर)

(पृष्ठ ६ का शेष)

बाहर जाना चाहता है। पग पग पैदल चलने के बदले पुनः वह कल्पना और भावना के पंखों पर उड़ना चाहता है। बुद्धि और विज्ञान की आ[illegible] समझते हुए भी मनुष्य कल्पना और भावना में सुख और आनन्द का अनुभव करता है। कला इन्हीं दो प्रवृत्तियों की वाहिका है। कल्पना और भावना मानव में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और उसके लोकोत्तर व्यक्तित्व की संभावना उत्पन्न करती है। कला इस प्रयास का मूर्त अंकन है। कला मनुष्य के शरीर को धरातल पर से ऊपर उठा देती है। फिर उसके ऊपर साढ़े तीन हाथ का बंधन नहीं रह जाता, उसकी ऊँचाई असीम और उसका विस्तार अनन्त हो जाता है। तीर्थंकरों, बुद्धों और बोधिसत्वों की अलंकृत विशालकाय मूर्तियों का रहस्य यही है। मानव से महामानव बनने की भूमिका यही है। विकास शृंखला में पहले देव अथवा ईश्वर बड़ा, फिर भौतिक मानव, पुनः काल्पनिक महामानव। तदनन्तर मानव में देव अथवा ईश्वर—अनन्त ज्ञान और आनन्द से युक्त लोकोत्तर मानव। इस विकास के अभियान में एक ओर ईश्वर अथवा देव पृथ्वी पर उतर आया—उसका अवतार हुआ, दूसरी ओर मानव आकाश छूने लगा—उसका ईश्वरत्व होना।

भारती महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस—५

भगवान महावीर और वर्तमान युग

नरेश चन्द्र जैन

जिस विज्ञान की सहायता से मानव ने निदय, प्रलयकारी शस्त्रो द्वारा विश्व का नाश करने का प्रयत्न किया आज वही उसका निकटतम शत्रु हो गया। आज का विश्व अपनी हिंसावृत्ति से स्वय आक्रान्त ह और शांति, बधनमुक्त होने के लिए अविरल पुकार रुद्धकठ से कर रहा ह।

ऐसे समय में भगवान के अमर अमृत-ज्ञान से उसे अवश्य ही शांति मिलेगी। वह हिंसा के क्रूर, सकीण प्रदेश से शांति के सागर में अपनी जीवन नया निभय ले जा सकेगा।

भगवान महावीर की ही शिक्षा में उसकी वास्तविक आर्थिक, सामाजिक एवं नतिक उन्नति निहित ह। मनुष्य की आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति का सरस दृढ, एव सुगम्य एक ही माग ह और वह माग भगवान महावीर की अहिंसा, अचौय, अपरिग्रह, तप एव ब्रह्मचय ही ह। इसी माग पर चलने से मानव की सवमुखी उन्नति हो सकती ह। अहिंसा के निमल उद्देश्य से मनुष्य बिना किसी को कष्ट दिये अपनी उन्नति कर सकता ह। अहिंसा का उपदेश निषेधात्मक नहीं ह। परन्तु यह तो समस्त प्राणियों में चेतन की स्थिति की श्रेष्ठता को स्वीकार करता ह। यदि सारे प्राणी एक दूसरे के शत्रु ही हो जायें तो सृष्टि तत्काल नष्ट हो जाय, माँ अपने पुत्र को ही मार डालेगी। अहिंसा के आधार पर ही मानव समाज का अस्तित्व ह। यदि कोई ऐसा मान कि बिना हिंसा हम जीवित ही नहीं रह सकते तो यह उसका भ्रम ह। यह बात सत्य ह कि सूक्ष्म अहिंसा का पालन सम्भव नहीं ह पर स्थूलरूप से अहिंसा का पालन आवश्यक ह और इसी में जग-कल्याण ह। इस माग की यथाथता अनेकान्तवाद की कसौटी पर कसी जा सकती ह। भगवान के अचौय और अपरिग्रह के उपदेश से ही संसार के क्लान्त मानव का उद्धार हो सकता ह। साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद की निदय सकीण मनोवृत्ति ने मनुष्य को पशु से भी अधिक पतित, दरिद्र एवं मारकाय कष्टों

के योग्य बनाया है। इसी मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया से फलस्वरूप विश्व में आधारभूत परिवर्तन होना चाहता है जिससे मानवता को एक [illegible] लगने वाली है। प्रतिहिंसा की ज्वाला में कहीं मानव की विषम [illegible] हो जाय। भगवान महावीर के अपरिग्रह एवं अचौर्य अमृत वचनों को [illegible] मानव अपनाए अन्यथा इसका अस्तित्व ही संदेहास्पद है।

भगवान महावीर ने केवल नैतिक स्तर ऊँचा करने का सुगम मार्ग ही नहीं दिखाया अपितु यह निर्देश किया कि मानव का लक्ष्य आध्यात्मिक [illegible] स्वावलम्बन एवं स्वपुरुषार्थ से बन्धनमुक्त ही हो सकता है। प्रत्येक [illegible] स्वतन्त्र है। अपनी अपनी उन्नति, अपनी अपनी मुक्ति स्वयं ही करनी होगी, कोई भी तुम्हारा पाप स्वयं अपने पर लेकर तुमको मुक्त नहीं कर सकता है। वास्तविक उन्नति के लिए शुद्धभावना, ज्ञान, अहिंसा एवं [illegible] पर्याप्त है, व्यर्थ का कायक्लेश करने से मोक्ष नहीं प्राप्त होगा।

'सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।'

भगवान महावीर ने प्रत्येक जाति एवं वर्णों में समानता मानी है। [illegible] वंश में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं होता अपितु उत्तम कर्म से ही उच्च बनता है किसी जाति या धर्म विशेष में जन्म [illegible] धारण करने से ही उसका मोक्ष नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति [illegible] पुरुषार्थ से चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण का क्यों न हो मोक्ष प्राप्त कर सकता है। सब प्राणियों में चेतन विद्यमान है। कोई भी जन्म से श्रेष्ठ या पतित नहीं कहा जा सकता। हरिजन भी अपनी उतनी ही उन्नति कर सकता है जितनी कि एक ब्राह्मण। सब व्यक्ति समान हैं एवं स्वतन्त्र हैं। इस समानता के पाठ एवं विश्वबन्धुत्व की भावना तथा स्वतन्त्रता की पुकार अभी न की है। आज के मानव में समानता, स्वतन्त्रता एवं विश्वबन्धुत्व कहाँ है? अंत [illegible] में हमारा पूर्णरूप से माना है। पर व्यवहार में यह कहाँ है? हमें [illegible] स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्वबन्धुत्व की भावनाओं को प्रकाश जागृत करना है इसी में मानव का कल्याण है। और [illegible] स्याद्वाद, अनेकान्तवाद व अपरिग्रहवाद, अहिंसा अचौर्य आदि की आध्यात्मिक उन्नति के क्षेत्र में बहुत बड़ी देन है और इसी से भारत का सदा विश्व का [illegible] का मार्गदर्शक रहा है।

एक नई आशा

बिहार सरकार जिन तीन संस्थाओं को जन्म देने के लिए बहुत उत्सुक थी उनमें से दो संस्थाएँ तो अस्तित्व में आ चुकी हैं और उन्होंने अपने अपने विषय पर कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया है। पहली संस्था है दरभंगा संस्कृत इन्स्टिटयूट, जिसमें संस्कृत की भिन्न भिन्न शाखाओं का वैज्ञानिक अध्ययन अध्यापन किया जा रहा है। दूसरी संस्था है नालन्दा पालि इन्स्टिटयूट जिसमें बौद्ध ज्ञान विज्ञान एवं पालि का अध्ययन-अध्यापन करने की सुविधा दी जाती है। इसी प्रकार एक ऐसी संस्था की भी आवश्यकता है जो जैन ज्ञान विज्ञान एवं प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए कुछ कार्य करे। भारत में संस्कृत के लिए एक संस्था खोलना कोई कठिन कार्य नहीं है। दरभंगा के एक महाराजा ने ही इस कार्य को पूरा कर दिया। बौद्धधर्म का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व है इसीलिए नालन्दा पालि इन्स्टिटयूट का खुलना भी अति कठिन कार्य न था। रही बात जैन इन्स्टिटयूट की। इसके लिए बाहर से तो पैसा आ ही नहीं सकता। भारत में रहने वाले जैन इस कार्य के महत्त्व को समझकर इसके लिए आवश्यक धन दें, यह भी जरा कठिन है। इसीलिए इस प्रकार की संस्था अभीतक स्थापित न हो सकी। इतना होते हुए भी हमारे समाज के कुछ उत्साही एवं विद्वान् कार्यकर्ता इसके लिए यथाशक्ति बराबर प्रयत्न करते रहे। 'टाइम्स आफ इण्डिया' के ९.२.५३ के अंक में यह समाचार निकला है कि वैशाली का संघ इस कार्य को पूर्ण करने के लिए सक्रिय कदम उठा रहा है। वहाँ के संघ के लोग इस प्रकार की संस्था वैशाली में खुले, इसके लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं। वे इस कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों के पास भी पहुँचने वाले हैं। उन्हें इस बात का गौरव है कि वैशाली महावीर की जन्मभूमि है और जैन विचार धारा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यदि कोई संस्था खुले तो वह वैशाली में ही खुले, इसके लिए वे कृतसंकल्प हैं। उनके उत्साह के बढ़ाने में पूर्ण सहयोग देना प्रत्येक समाज व्यक्ति का कर्तव्य है। साथ ही हमारे देश की प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों का भी कर्तव्य है कि वे इस पुनीत कार्य में

लोगों के हृदयों में शिक्षा के प्रति प्रेम पैदा किया। सन् १९३१ में ... एक छोटी सी प्राथमिक शाला की स्थापना की। धीरे धीरे आवश्यकता प्रतीत होने पर उन्हीं के हाथों से छात्रालय भी स्थापित किया गया। ज्यों इन छोटे छोटे प्रयत्नों से समाज में ज्यों ज्यों जागृति फैलती गई और ज्यों युवकों तथा धनवानों का उन्हें सहयोग प्राप्त होता गया, त्यों त्यों वे अपनी प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाते गए। इसी के फल स्वरूप जैन एजुकेशन सोसायटी का संगठन हुआ। सोसायटी के संगठन के बाद प्राथमिक शाला हाईस्कूल के रूप में परिणत हुई। आज मद्रास में जो जैन कालेज चल रहा है वह इसी प्राथमिक पाठशाला का विकसित रूप है। मद्रास में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने वाली संस्थाओं में इस संस्था का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से श्री सुराणा जी को केवल जैन समाज की सेवा का ही नहीं अपितु हिन्दी की सेवा का भी श्रेय है।

मद्रास के बाद उन्होंने अपना केन्द्र बेंगलोर बनाया है। वहाँ भी उनका यही क्रम है। सुमति जैन छात्रालय, जैन हिन्दी विद्यालय, हिन्दी माध्यमिक बालवाड़ी आदि संस्थाएँ उन्हीं के परिश्रम का परिणाम हैं। मद्रास और बेंगलोर के अतिरिक्त आसपास के अन्य स्थानों में भी उन्होंने यथाशक्य कार्य किया। दोबगन पेट में महावीर हिन्दी स्कूल रायपुर में वर्धमान हिन्दी पाठशाला कोदम में महावीर जैन विद्यालय की स्थापना भी सुराणा जी के परिश्रम का ही फल है।

श्री सुराणाजी ने इतना सारा कार्य करते हुए भी कभी आर्थिक लाभ की आकांक्षा नहीं रखी, यह उनकी सेवा की लगन को दिखलाता है। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने अपने पास जो कुछ था उसमें से भी बहुत कुछ इन कार्यों के पीछे समर्पित कर दिया। बहुत बड़े परिवार का उत्तरदायित्व सिर पर होते हुए भी उन्होंने भविष्य की कभी चिन्ता नहीं की। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा है जैन समाज व हिन्दी की सेवा।

श्री सुराणाजी की इन सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कुछ लोगों ने यह निश्चय किया है कि उन्हें पच्चीस हजार रुपये की एक थैली अर्पित की जाए। इस योजना का स्वागत जिन्दादिली से होना चाहिए एवं अपनी शक्ति के अनुसार सभी सज्जन इसमें योग देना चाहिए। विशेषकर मद्रास प्रान्त के भाइयों को तो इसमें पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

विद्याश्रम की नई प्रवृत्तियाँ

इस समय श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम की ओर से कई नई प्रवृत्तियाँ चालू हो रही है। सरकार की मार्फत करीब ६ बीघे जमीन ली जा रही है। जिस पर लगभग २७०००) रु० खर्च होगा। 'जैन साहित्य निर्माण योजना' की प्राथमिक रूपरेखा छपवा कर विशिष्ट विद्वानों की सेवा में विचारार्थ भेजी जा चुकी है। उनके उत्तरों से पता चलता है कि विद्वानों ने इस योजना का अच्छा स्वागत किया है, और वे सभी सहयोग देने को तैयार भी है। जैन समाज की दृष्टि से साहित्य के निर्माण का कार्य बड़े महत्व का है। इसकी आज जरूरत भी है। सबसे पहले 'जैन साहित्य का इतिहास' का काम शुरू होगा। योजना को पूर्ण रूप देने के लिए इसी अप्रैल में विद्वानों का एक सम्मेलन भी बुलाया जा रहा है। हर्ष की बात है कि सुप्रसिद्ध विद्वान श्री वासुदेव शरण अग्रवाल इस कार्य में प्रमुख भाग ले रहे है और पूज्य प० श्री सुखलाल जी का आशीर्वाद इसके साथ है। इन सब बातों को निश्चित रूप देने के लिए मंत्री श्री हरजसराय जी जैन इन्हीं दिनों अमृतसर से बनारस पधारे थे और करीब एक सप्ताह यहाँ ठहरे।

डॉ० इन्द्र बनारस में

'श्रमण' के प्रेमी पाठकों को यह जानकर हर्ष व संतोष होगा कि डा० इन्द्रचन्द्र (शास्त्री, शास्त्राचार्य, एम ए, पी एच डी) फिर से श्रमण के संपादन का उत्तरदायित्व अपने पर ले रहे है। 'श्रमण' के प्रस्थापक होने के नाते इससे इनका स्वाभाविक स्नेह है। हमारा विश्वास है कि 'श्रमण' अब पहले से भी कहीं अच्छे रूप में पाठकों के सामने आएगा। पाठकों से भी हमें पूर्ण सहयोग व आदर मिलने की आशा है। इधर विद्याश्रम के संचालक यह विचार कर रहे है कि 'श्रमण' को और भी उपयोगी बनाया जाए। इसके त्रैमासिक अंकों में अनुसंधान की सामग्री दी जाए। जिससे इसके पाठकों की ज्ञानवृद्धि हो और यह सांस्कृतिक साहित्य के निर्माण में सहायक बने। इसके अलावा डॉ० इन्द्र साहित्य निर्माण योजना की व्यवस्था और स्वयं साहित्य निर्माण आदि के कार्य भी अपने हाथ में ले रहे है।

—अधिष्ठाता

भौतिकता और अध्यात्म का समन्वय

प्रो० दलसुख मालवणिया

सामान्यत लोगोकी यह धारणा है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' यह महाकवि की उक्ति ब्राह्मण धर्म की साधना के लिए सच है। श्रमण धर्म का मार्ग इससे विपरीत है। अतएव वे कहा करते है कि व्यक्तित्व के आध्यात्मिक विकास के लिए भौतिक वस्तुओ की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। मै समझता हूँ कि इससे बडा झूठ कोई हो नहीं सकता।

जैन और बौद्ध दोनों ने अपने महापुरुषों की शारीरिक विशेषताओं का जो वर्णन किया है उन पर तनिक ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि आध्यात्मिक विकास जितना प्रबल करना हो उतना ही शरीर प्रबल और सुदृढ चाहिए। यह बात दोनों श्रमणमार्गियो ने सिद्धान्त रूपसे स्वीकृत की है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि शरीर का ऐसा प्राबल्य कई जन्मो के पुण्य का फल हो और जिस जन्ममें मुक्त होना हो उस जन्म के कर्म दूसरे ही प्रकार के हों। किन्तु मुख्य बात इतनी तो स्पष्ट है कि जब साध्य अध्यात्मदृष्टि से श्रेष्ठ सिद्ध करना हो तब साधन-शरीर उतना ही प्रबल होना चाहिए। अन्यथा श्रेष्ठ प्रकार की साधना संभव नहीं। शरीर भौतिक है, इससे तो कोई इनकार कर ही नहीं सकता है। तब यह कहना कि आध्यात्मिक साधना के लिए भौतिक वस्तुओं की तनिक भी आवश्यकता नहीं, यह अध्यात्म और भौतिक दोनों की मर्यादा को नहीं समझने का फल है?

साधक को आध्यात्मिक विकास के लिए शरीर के अतिरिक्त जितने साधन चाहिए—चाहे व वस्त्र पात्र, पिच्छ, कमडलु या और कुछ हों, उन्हें परिग्रह की कोटि से हटा देने मात्र से या उन पर ममत्व बुद्धि नहीं है ऐसा कहने मात्र से वे सब आध्यात्मिक नहीं बन जाते। वे भौतिक ही बने रहते है। किन्तु उनका उपयोग आध्यात्मिक दृष्टि से या आध्यात्मिक साधना के

विचार दिशा

हम किधर बढ़ रहे हैं ?

डॉ० इन्द्र

ता० २०–२–५३ शुक्रवार को बम्बई जन युवक संघ की ओर से डॉ० इन्द्र
बदाई देने के लिए एक स्नेह सम्मेलन आयोजित किया गया था। उस समय
न जन समाज से सबन्ध रखन वाली कई समस्याओ को स्पर्श करते हुए
तपूर्ण प्रवचन दिया। उसका साराश निम्नलिखित है —

ख साहेब, श्रद्धेय परमानन्द भाई तथा बन्धुगण !

बम्बई जन युवक संघ एक असाम्प्रदायिक संस्था ह। इसमें प्रत्येक व्यक्ति
अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने का अधिकार है। सघ के सदस्य किसी
बात सुनते समय इस बात को महत्व नहीं देते कि बोलने वाला कौन है
किस सम्प्रदाय को मानने वाला ह। यहाँ सभी के लिए द्वार खुला ह।
व इसी बात को दिया जाता ह कि बोलने वाले में सत्य और शिव की
ा कितनी ह। स्वतन्त्र विचारों का इस प्रकार स्वागत करने वाली
याएँ जन समाज हो नहीं भारत में भी कम ह। बम्बई आते समय मेरे
र यह एक आकर्षण था। इसीलिए एक साम्प्रदायिक सस्था में भी कार्य
ना स्वीकार कर लिया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की सस्थाएँ आर्थिक
ट से अत्यन्त कृश है। उन्हें प्रतिदिन के भोजन की चिन्ता करनी पडती
। दूसरी ओर साम्प्रदायिक संस्थाओं के पास गगनचुम्बी प्रासाद है। उनका
ननिनाद मार्ग में चलने वालो को अनवरत सुनाई देता रहता ह। इसका
रण ह कि असाम्प्रदायिक संस्था किसी प्रकार का उन्माद नहीं पदा कर
ती और उन्माद पदा किए बिना विरले ही दानशूर बनते हैं। जिस
कार युद्ध में प्राण अर्पित करने के लिए सनिकों को मदिरा, रणवादित्र तथा
यघोष आदि के द्वारा एक प्रकार का उन्माद चढ़ाया जाता ह, उसी प्रकार
ा दान लेने के लिए भी विशिष्ट प्रकार का उन्माद चढ़ाने की आवश्यकता
ती है। जिस प्रकार बिना उन्माद के सोच समझ कर प्राणों की आहुति

नने लगे तो विशेष हानि नहीं होती। किन्तु जब वह अपनी जीर्ण शक्ति मापदण्ड द्वारा युवा शक्ति को नापना चाहता है तो धोखा खाता है। उसे हिए कि युवकों को अपने अनुभव का लाभ देकर अलग हो जाय, उन्हें आगे ढ़ने दे। उनकी प्रगति तथा विचारों को कुण्ठित करने का प्रयत्न न करे।

ऐसी संस्थाओं के प्रतिगामी बनने का एक कारण उन की परिग्रहपरायणता ी है। यह परिग्रह दो प्रकार का होता है। उपनिषदों की परिभाषा में से लोकैषणा तथा वित्तैषणा कहा जाएगा। समाज के प्रतिनिधित्व की वृत्ता करने वाली संस्थाओं को लोकैषणा का ध्यान रखना पड़ता है। वे ुधार करना चाहती है किन्तु उसके लिए किसी वर्ग को नाराज नहीं कर कतीं। इतना ही नहीं जिस वर्ग के हाथ में जनमत या पूंजी है उसकी नुचित प्रशंसा भी करनी पड़ती है। जिसका विरोध करना चाहिए उसी ा गीत गाने पड़ते है। फिर वे सीधे रूप में हों या आड़े टेढ़े रूप में। उस मय सत्य या समाजहित की दृष्टि गौण हो जाती है और सत्ताप्राप्त वर्ग को सन्न करने की मुख्य। कान्फरेंस सरीखी लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं में ही हीं शिक्षा तथा अन्य लोकोपयोगी संस्थाओं में भी, जहाँ विद्या, तपस्या एवं ेवा के वातावरण की आशा की जाती है, ऐसा करना पड़ता है। तपोवन ो भी राजाओं का गुलाम बनना पड़ता है। प्रत्येक संस्था पैसे से चलती ै और पैसा पैसेवाले से ही मिल सकता है। इसके लिए वार्षिकोत्सव या अन्य किसी प्रकार का समारोह रखकर उसे सभापति बनाया जाता है। उसके हाथ से उद्घाटन या शिलान्यास कराया जाता है। उस समय उसके गीत भी गाने पड़ते हैं। जो संस्था परिग्रह या संचय पर निर्भर है फिर वह धनसंचय हो या जनसंचय हो, वह अपरिग्रह या त्याग की बातें उतनी ही कर सकती है जहाँ तक परिग्रह को आघात न लगे। वह सत्य तथा अहिंसा का वेश असत्य को छिपाने के लिए पहिनती है।

ऐसी संस्थाओं में ईमानदारी से काम करने वालों के सामने एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। एक ओर सत्य का प्रश्न होता है और दूसरी ओर संस्था के प्रति वफादारी का। बाहर भी उसे दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं कुछ सत्य की आशा रखते हैं और कुछ संस्था के प्रति वफादारी की। ऐसे धर्मसंकट में एक भावुक व्यक्ति कुछ भी नहीं कर पाता। असत्य का पोषण करते समय आत्मा विद्रोह करती है और सत्य प्रकट करते

कृत्रिमता का दास बना देते हैं। जे० कृष्णमूर्ति ने इसी लिए थियोसोफिकल सोसायटी को धर्मसंस्था के रूप में नहीं रहने दिया। समाज जिन्हें अनुशासन अथवा धार्मिक एवं लौकिक मर्यादा के रूप में ग्रहण करता है वे ही मानव जाति के बन्धन तथा विकास के अवरोधक तत्त्व बन जाते है। अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रतीहारी कहता है—"जिस दण्ड को मने राजमर्यादा के रूप में ग्रहण किया था, वही मेरा अवलम्बन गया है। अब उसका सहारा लिए बिना चल ही नहीं सकता।" यही बात धर्मसंस्था के संचालकों के साथ होती है। वे विशिष्ट प्रकार के वेश तथा क्रिया कलाप को इस लिए अंगीकार करते है कि उसके द्वारा स्वपर कल्याण कर सकें। किन्तु कुछ ही समय बाद वेश के अधीन हो जाते है। उस समय वे वेश को धारण नहीं करते किन्तु वेश उनको धारण करता है। वेश के बाहर उनको कोई मार्ग ही नहीं सूझता।

इस प्रकार निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो संगठन मात्र त्याज्य है। किन्तु निश्चय दृष्टि का उपयोग आदर्श को स्थापित करने के लिए होता है। लोक-व्यवहार उस पर नहीं चलता। शङ्कराचार्य ने कहा है—सत्यानृते मिथुनी कृत्य सर्वोऽयं लौकिको व्यवहार" अर्थात् प्रत्येक लौकिक व्यवहार में सत्य और मिथ्या का सम्मिश्रण होता है। जैन शास्त्रानुसार भी कर्मबन्ध का सर्वथा निरोध चौदहवें गुणस्थान म होता है, जो पूर्णतया निष्क्रिय अवस्था है। प्रवृत्ति मात्र के साथ पाप लगा हुआ है। इस लिए पाप और पुण्य की व्यवस्था ध्येय के आधार पर की जाती है। जो संगठन बाड़ाबन्दी या अपनी रक्षा को मुख्य ध्येय बना कर चलता है वह सत्य के मार्ग से विचलित हो जाता है, हेय हो जाता है। दूसरी ओर जो संगठन सत्य को सामने रख कर चलता है और उसके लिए अपने अस्तित्व की भी चिन्ता नहीं करता, वह पथविचलित नहीं होता। म आशा करता हूँ जैन युवक संघ इस कसौटी को सामने रख कर चलेगा। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह सत्य से विमुख न होगा।

अभी कुछ दिन पहले म सोजत गया था। स्थानकवासी समाज ने श्रमण संघ तथा एक आचार्य की स्थापना करके सादड़ी में जो क्रान्तिकारी कदम उठाया था, उसकी विगतों पर विचार करने के लिए वहाँ श्रमण संघ के मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ था। १६ में से १४ मन्त्री उपस्थित थे। उनके अतिरिक्त २५० साधु साध्वी तथा हजारों की सख्या में श्रावक सम्मिलित हुए। अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस की जनरल कमेटी भी

किन्तु साम्प्रदायिक यन्त्रों में इस प्रकार पिसते रहते हैं कि कुछ कर ही नहीं पाते। कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें युवावस्था के साथ यौवन सुलभ वृत्तियाँ जाग गई हैं। वे एक सदगृहस्थ के रूप में अपना जीवन बिताना चाहते हैं किन्तु कोई मार्ग नहीं सूझता। जिस प्रकार अधिक दिन तक पिंजरे में रहा हुआ पक्षी खुले आकाश में उड़न से डरता है उसी प्रकार वे भी बाहर के संघर्षमय जीवन में आते हुए डरते हैं। जिन्होंने इस प्रकार का कदम उठाया है और मुनि जीवन को त्याग दिया है वे भी अधिकतर अच्छा आदर्श नहीं उपस्थित कर सके। ऐसी दशा में भविष्य का विचार किए बिना उन्हें मुनिव्रत छोड़ देने की सलाह देना विचारपूर्ण कदम नहीं है।

जैन परम्परा एक त्याग प्रधान परम्परा है। किन्तु हमारे मन्दिर और धर्मस्थानों में प्रायः पैसे की पूजा होती है। व्यक्ति भगवान को महापुरुष का गौरव तो देता है किन्तु उस गौरव की परिभाषा अपने जमे हुए संस्कारों के अनुसार करता है। माहात्म्य का मापदण्ड उसका अपना होता है।

बम्बई के एक मूर्तिकार ने गणेश की मूर्ति बनाई तो उसे कोट और पट पहिनाया और मुंह में सिगरेट दे दी। श्री मशरूवाला ने टिप्पणी करते हुए इसे देवता का अपमान बताया। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो मूर्तिकार के मन में श्रद्धा की कमी न थी। उसके मन में यह संस्कार जमा हुआ था कि संसार में सर्वोत्तम पुरुष अंग्रेज हैं और उनका वेश कोट और पट है। वे सिगरेट भी पीते हैं। ऐसी स्थिति में भगवान को धोती पहिनाना उसे छोटा बनाना है। भगवान जब सर्वोत्तम पुरुष हैं तो अंग्रेज से कम नहीं हो सकते। मारवाड़ में जो सीता की मूर्ति बनती है उसे घाघरा पहिना कर जेवरों से लाद दिया जाता है। गुजरात की सीता साड़ी पहिनती है। दक्षिण की सीता धोती की लांग लगा कर फूलों से शृङ्गार करती है। यदि थोड़े दिनों में सीता लिपस्टिक का प्रयोग करने लगे तो यह आश्चर्य की बात न होगी। जैन समाज व्यापारी समाज है। वह धन की पूजा करता है। इस लिए वीतराग को भी हीरे के हार तथा सोने की आंगिया पहिनाना चाहता है। भगवान् की सवारी में हाथी घोड़े, सोने चांदी के रथ तथा अन्य वैभव का प्रदर्शन किया जाता है। वस्तुतः यह भगवान् की पूजा नहीं है किन्तु भगवान् की आड़ में लक्ष्मी की पूजा है।

पंजाब विभाजन के समय जब हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा चल रहा था तो मेरे सामने एक घटना हुई। एक बड़ा मुसलमान नीचे गिरा हुआ हाथ

केवलज्ञान, कर्मवाद, भूगोल आदि ऐसी बहुत सी बातें ह जिनके विषय में हमारे समाज में मिथ्या धारणाएँ जमी हुई ह और उनका जीवन पर कुप्रभाव पड़ रहा है। उन सब के विषय में सचाई को प्रकाश में लाना हमारा सबका कर्तव्य ह।

आशा ह, जैन युवक संघ 'प्रबुद्ध जन' तथा साक्षात चर्चा वार्ता द्वारा इन सब बातों को प्रकाश में लाएगा। मैं बनारस जाकर 'श्रमण' को फिर अपने हाथ में ले रहा हूँ। उसका भी यही ध्येय ह। इसलिए समझता हूँ, मेरे वहाँ जाने से जैन युवक संघ का क्षेत्र और भी विस्तृत हो जाएगा।

मैंने जो विचार प्रकट किए ह वह एक नम्र निवेदन ह। मेरा कभी यह आग्रह नहीं होता कि दूसरा व्यक्ति उसे मान ही ले। हो सकता ह चर्चा वार्ता या विशेष अनुभव के बाद मुझे स्वयं परिवर्तन करना पड़े। सत्य के जिज्ञासु को परिवर्तन के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

अन्त में, आप सब ने मेरे प्रति जो यह स्नेह प्रकट किया है, उसके लिए, सभी का आभार मानता हूँ। इच्छा थी यहाँ रहकर आप सभी के परिचय से अधिक लाभ उठाता किन्तु यह न हो सका। फिर भी आप सभी का जो प्रेम लेकर जा रहा हूँ, वह मेरे साथ रहेगा। उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होगी और हमलोग मिलकर इस ज्योति को प्रज्वलित रखने का प्रयत्न करते रहेंगे।

---

१ (पृष्ठ ४ का शेष)

अतएव साधनाकाल में भौतिक और अध्यात्म दोनों का समन्वय आवश्यक है। यह निश्चय से कहा जा सकता ह कि भौतिक वस्तुओं का उपयोग उतनी ही मात्रा में किया जाय जितनी मात्रा में आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक हो। आवश्यकता का निर्णय साधक स्वयं करे यही ठीक ह। जो लोग आध्यात्मिक नहीं ह वे ही इस विवाद में पड़ते ह कि साधनाकाल में अमुक उपकरण चाहिए अमुक नहीं। वे स्वयं जब साधना करते ह तब ही क्या उचित और ह क्या अनुचित, इसका निर्णय कर सकते ह। इन बातों में शास्त्र दिग्निर्देश तो कर सकता है किन्तु मर्यादा का निर्णय नहीं कर सकता। ऐसा मानने पर शास्त्रों में दिखाई देने वाला उपकरणविषयक मतभेद तुच्छ लगेगा।

केवलज्ञान, कर्मवाद भूगोल आदि ऐसी बहुत सी बातें है जिनके विषय में हमारे समाज में मिथ्या धारणाएँ जमी हुई है और उनका जीवन पर कुप्रभाव पड रहा है। उन सब के विषय में सचाई को प्रकाश में लाना हमारा सबसे कर्तव्य है।

आशा है, जैन युवक संघ 'प्रबुद्ध जैन' तथा साक्षात चर्चा वार्ता द्वारा इन सब बातों को प्रकाश में लाएगा। मै बनारस जाकर 'श्रमण' को फिर अपने हाथ में ले रहा हूँ। उसका भी यही ध्येय है। इसलिए समझता हूँ, मेरे वहाँ जाने से जैन युवक संघ का क्षेत्र और भी विस्तृत हो जाएगा।

मैने जो विचार प्रकट किए है वह एक नम्र निवेदन है। मेरा कभी यह आग्रह नहीं होता कि दूसरा व्यक्ति उसे मान ही ले। हो सकता है चर्चा वार्ता या विशेष अनुभव के बाद मुझे स्वयं परिवर्तन करना पड़े। सत्य के जिज्ञासु को परिवर्तन के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

अन्त में, आप सब ने मेरे प्रति जो यह स्नेह प्रकट किया है, उसके लिए, सभी का आभार मानता हूँ। इच्छा थी यहाँ रहकर आप सभी के परिचय से अधिक लाभ उठाता किन्तु वह न हो सका। फिर भी आप सभी का जो प्रेम लेकर जा रहा हूँ, वह मेरे साथ रहेगा। उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होगी और हमलोग मिलकर इस ज्योति को प्रज्वलित रखने का प्रयत्न करते रहेंगे।

---

१ (पृष्ठ ४ का शेष)

अतएव साधनाकाल में भौतिक और अध्यात्म दोनों का समन्वय आवश्यक है। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि भौतिक वस्तुओं का उपयोग उतनी ही मात्रा में किया जाय जितनी मात्रा में आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक हो। आवश्यकता का निर्णय साधक स्वयं करे यही ठीक है। जो लोग आध्यात्मिक नहीं है वे ही इस विवाद में पड़ते है कि साधनाकाल में अमुक उपकरण चाहिए अमुक नहीं। वे स्वयं जब साधना करते है तब ही क्या उचित और है क्या अनुचित, इसका निर्णय कर सकते है। इन बातों में शास्त्र दिशानिर्देश तो कर सकता है किन्तु मर्यादा का निर्णय नहीं कर सकता। ऐसा मानने पर शास्त्रों में दिखाई देने वाला उपकरणविषयक मतभेद तुच्छ लगेगा।

हुआ कमीज, कमर में लपेटा हुआ जरी का दुपट्टा और उसमें लगाई हुई रत्नजटित कटारी सामने देखने वाले की आँखों को नीचे झुका देते थे।

पहचानने में एक क्षण का भी समय नहीं लगा। ये थे गांधार के निवासी और खभात के बहुत बड़े पूजीपति राजिया सेठ के छोटे भाई वाजिया सेठ।

सब प्रथम बदरगाह पर रहने वाले बनजारे ने अभिवादन किया। उसने कहा—"श्रीमन्! कोई प्रचुर सामग्री नहीं मिलती। कई दिन बीत गए, माल का आवागमन सर्वथा बद ह। भरे हुए जहाजों का जाना रुका हुआ ह और खाली होने वाले जहाजा का आना व द ह।"

"यह म जानता हूँ," वाजिया सेठ ने उत्तर दिया और उससे प्रश्न किया—"पार्श्वनाथ के मंदिर के मुनीम शिकायत करने आए थे। तुमने प्रति थल आधा द्रम्म लगान बहुत समय से नहीं दिया! भाई? धम का पसा बाकी रखना ठीक नहीं।"

"जानता हूँ सेठ साहब! दूध से धोकर देना ह कि तु क्या करें! यह सारा महीना सिर पर पड़ा ह, राजा साहब!"

"हानि की रकम दुकान से ले जाओ कि तु धमन्कर तो आज ही मुनीम के पास पहुँचा दो।'

"अमर रहे आप का आदरणीय स्थान, सेठ साहब! आज ही लगान दे दिया समझें, धम के काम में ढील कसी?'

वाचाल बनजारे की बात पर मद मंद हँसते हुए वाजिया सेठ आगे बढ़े।

बंदरगाह के मुनीम कान में कलम डाले हाथ में बही पकड़े खड़े ही थे। शिष्टाचार के दो शब्दा क बाद सेठ जी ने प्रश्न किया—

"मुनीम जी! जहाजा में माल तयार ह? कहाँ कहा क्या क्या जायगा?"

"सेठ साहब जी! सब की सूची तयार है। सबसे आगे क जहाजों में चावल हैं जो मलाबार, कोंकण, सिंध, आफ्रिका और अरब जाएँगे। फिर

"तब फिर क्या होगा ?" सभी नाविकों के मुंह पर चिन्ता छा गई।

"कुछ नहीं, सब ठीक होगा। गोवा की सरकार भी सहायता के लिए तयार ह किंतु मैंने जान बूझ कर तुम लोगों को नहीं जाने दिया। हमारे पवित्र दिवस समीप ह और प्रवास में इन दिनों कुछ मारपीट हो, यह ठीक नहीं।"

"ठीक ह, आज से तीसरे दिन पयुषण पव प्रारंभ होने वाले हैं। बस, इतने दिन तक यहीं विश्राम, बारहवें दिन रवाना हो जाना।" मुनीम ने सेठ जी के शब्दों का अथ स्पष्ट किया।

"बारह दिन तो बात करते बीत जाएँगे।" सभी प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। बाजिया सेठ अपने रथ की ओर मुडे। समुद्र में जहाजों का झुण्ड आता हुआ दिखाई दिया।

सब उस ओर देखने लगे।

"अरे, कप्तान बिजरेल के जहाज!"

इतने में अधिपति बिजरेल किनारे आ पहुँचा। सागर का सम्राट कप्तान बिजरेल शौय की साक्षात मूर्ति था। हजारों लुटेरों के छक्के छुड़ाने वाला यह योद्धा अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था। उसका शरीर युद्ध की स्मृति दिलाने वाले अनेक घावों से भरा हुआ था। बाजिया सेठ को देखते ही तुरन्त किनारे पर आया, अभिवादन किया और कहने लगा—

"सेठ साहब! समुद्र के पापी को पकड़ लाया हूँ। चौल के खोजगी को चुनौती देकर हराया है। साथ ही पकड़ लाया हूँ। गोवा सरकार ने एक लाख रुपये का दण्ड दिया ह। दण्ड न चुकाने पर दसवें दिन मृत्यु-दण्ड की आज्ञा ह।"

जकड़ा हुआ रावण का दूसरा अवतार खोजगी सेठ के परों में पड़ा, दया की भीख मांगी और प्रतिज्ञा की कि "अब आपके व्यापार में कभी बाधक न बनूंगा।"

"कप्तान बिजरेल! खोजगी दया की याचना करता ह। सद्व्यवहार का वचन देता ह।"

भाद्रपद का महीना था। उत्तरा और चित्रा के ताप से समुद्र का पानी भी उष्ण हो जाता था। आकाश में एक भी बादल न था।

शाम होते ही आकाश में द्वितीया का चन्द्र उदित हुआ। सागर में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलक रहा था। इसी समय जल्लाद लुटेरों को पकड़े हुए आ पहुँचे। खोजगी भी अपने आदेश का पालन कराने के लिए समय पर आ पहुँचा। संकेत मात्र की देर थी कि एक वृद्ध लुटेरे ने कहा—

"मृत्यु का हमें कोई भय नहीं किन्तु हम राजिया-वाजिया सेठ की प्रजा हैं। नाविकता का नाश होते देख कर हमने यह काम अपनाया। पेट की अग्नि है न? किन्तु एक बात कह दूँ?"

"शीघ्र कह! मेरी तलवार अधिक समय तक नहीं रुक सकती!"

"आज कल राजिया-वाजिया सेठ के पर्व के पवित्र दिन हैं। इस समय तो हत्यारे को भी क्षमा मिलती है। हम क्षमा-याचना करते हैं।'

कालमूर्ति खोजगी कुछ समय के लिए गंभीर विचार में डूब गया। उसको कुछ याद आ रहा था। थोड़ी देर बाद उसने आज्ञा दी—

"वाजिया सेठ के पर्व के दिन हैं। सबको छोड़ दो?"

तलवारें म्यान में घुस गईं। सभी मुक्त कर दिए गए।

प्राकृत-साहित्य के इतिहास के प्रकाशन की आवश्यकता

ले० अगरचन्द नाहटा

भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भाषा, विषय, प्रचुरता, उपयोगिता आदि हर दृष्टि से उसकी अपनी विशेषता है। भारतीय भाषाओं की दृष्टि से तो उसका महत्त्व बहुत ही अधिक है। प्रारंभ से ही वह लोक भाषा में लिखा गया। ज्यों ज्यों लोकभाषा बदलती गई, जैन विद्वान् साहित्य निर्माण में भाषा के उन बदलते हुए रूपों को अपनाते गये। इसी प्रकार जैनधर्म का प्रचार जिन जिन प्रान्तों में फैला उन प्रान्तों की बोल-चाल की भाषा में भी जैन विद्वानों ने बराबर रचनाएँ कीं। इसीसे भारत की प्राय सभी उल्लेखनीय प्रान्तीय भाषाओं में जैन साहित्य उपलब्ध होता है।

जैन साहित्य विशालता में बहुत ही उल्लेखनीय है। जहाँ जहाँ भी जैनी निवास करते हैं, हर प्रान्त के प्राय नगरों एवं ग्रामों में भी हस्त लिखित ग्रंथ भंडार पाये जाते हैं। वर्षों से शोधकार्य चालू होने पर भी अभी तक सैकड़ों ज्ञानभंडार अज्ञातावस्था में पड़े हैं और जिस किसी भंडार को देखा जाता है, कुछ न कुछ नवीन अज्ञात रचनाएँ उपलब्ध होती ही रहती हैं। अत संपूर्ण साहित्य की जानकारी तो संभव नहीं पर बहुत से प्रसिद्ध भंडार प्रकाश में आ चुके हैं और कईयों के सूचीपत्र प्रकाशित भी हो चुके हैं। उन्हीं के आधार से जैन साहित्य का इतिहास हिन्दी में शीघ्र ही तैयार होना चाहिये।

विगत ७५ वर्षों के मुद्रणयुग में छोटे बड़े हजारों जैन ग्रंथ जहाँ तहाँ से प्रकाशित हो चुके हैं। पर अप्रकाशित साहित्य की अपेक्षा तो ये आटे में नमक के समान ही है। फिर भी खास खास उपयोगी ग्रंथ काफी प्रकाश में आ चुके हैं। पर अभी अप्रकाशित साहित्य में से सैकड़ों ग्रंथ बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं, उन्हें प्रकाश में लाना अत्यावश्यक है। उनके महत्त्व की

अधूरा चित्र

मेरी चित्रशाला में एक अधूरा चित्र टँगा था।

दिवाकर की सुनहली किरणों ने वसुधा को छुआ, विश्व के कण-कण में उल्लास भर गया। उपवन के सुप्त पुष्प मानों अपने स्वामी का शुभागमन सुनते ही हँस पड़े, हरी-हरी दूब पर प्रकृति देवी ने मानों सहस्रों मोती बिखेर दिये। पक्षी गण मधुर भाषा में किलोल कर उठे, नव स्फूर्ति पाते ही मानव समूह अपने कर्त्तव्य पथ पर बढ़ चला।

मैंने देखा—मेरा अधूरा चित्र मानों मुझे संकेत कर रहा था—चित्रकार! बस तुम्हारी कला यहीं पर समाप्त हो गई?

वह चित्र मानो व्यंग की हँसी हँसकर मुझे लज्जित कर रहा था।

आवेश में आकर मैंने तूलिका उठाई चित्र को सुन्दर बनाने के लिए, परन्तु चित्र में अंकित व्यक्ति की उदास मुख मुद्रा प्रसन्न न बन सकी। मैंने चित्र की पूर्ति करने के लिए अपनी कला निछावर कर दी। परन्तु चित्र अभी भी अधूरा ही था।

मेरे नेत्रों में जल भर आया, हृदय में गहरी पीड़ा उत्पन्न होकर मुझे विकल करने लगी, सारा संसार सुखी है, मैं दुखी हूँ! क्योंकि मेरा चित्र अधूरा है।

सहसा मेरे हृदय में एक नवीन विचार जागृत हुआ—कहीं मेरे चित्र पर अंकित उदासी मेरी मलिन आत्मा का प्रतिबिम्ब तो नहीं है?

अब की बार मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों चित्र का व्यक्ति खिलखिलाकर हँसता हुआ यह कह रहा था—

चित्रकार! अब तुम ठीक मार्ग पर आये।

प्राकृत-साहित्य के इतिहास के प्रकाशन की आवश्यकता

ले० अगरचन्द नाहटा

भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। भाषा, विषय, प्रचुरता, उपयोगिता आदि हर दृष्टि से उसकी अपनी विशेषता है। भारतीय भाषाओं की दृष्टि से तो उसका महत्व बहुत ही अधिक है। प्रारंभ से ही वह लोक भाषा में लिखा गया। ज्यों ज्यों लोकभाषा बदलती गई, जैन विद्वान साहित्य निर्माण में भाषा के उन बदलते हुए रूपों को अपनाते गये। इसी प्रकार जैनधर्म का प्रचार जिन जिन प्रान्तों में फैला, उन प्रान्तों की बोल चाल की भाषा में भी जैन विद्वानों ने बराबर रचनाएँ कीं। इसीसे भारत की प्राय सभी उल्लेखनीय प्रान्तीय भाषाओं में जैन साहित्य उपलब्ध होता है।

जन साहित्य विशालता में बहुत ही उल्लेखनीय है। जहाँ जहाँ भी जैनी निवास करते ह, हर प्रान्त के प्राय नगरों एव ग्रामों में भी हस्त लिखित ग्रंथ भंडार प ये जाते हैं। वर्षों से शोधकार्य चालू होने पर भी अभी तक सैकड़ों ज्ञानभंडार अज्ञातावस्था में पडे ह और जिस किसी भडार को देखा जाता है, कुछ न कुछ नवीन-अज्ञात रचनाएँ उपलब्ध होती ही रहती ह। अत सपूर्ण साहित्य की जानकारी तो संभव नहीं पर बहुत से प्रसिद्ध भंडार प्रकाश में आ चुके ह और कईयों के सूचीपत्र प्रकाशित भी हो चुके ह। उन्हीं के आधार से जन साहित्य का इतिहास हिन्दी में शीघ्र ही तयार होना चाहिये।

पिछले ७५ वर्षों के मुद्रणयुग में छोटे बडे हजारों जैन ग्रंथ जहाँ तहाँ से प्रकाशित हो चुके हैं। पर अप्रकाशित साहित्य की अपेक्षा तो वे आटे में नमक के समान ही ह। फिर भी खास खास उपयोगी ग्रंथ काफी प्रकाश में आ चुके ह। पर अभी अप्रकाशित साहित्य में से सैकड़ों ग्रंथ बहुत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं, उन्हें प्रकाश में लाना अत्यावश्यक है। उनके महत्व की

जानकारी बिना साहित्य के इतिहास के तैयार हुए मिल नहीं सकती, और महत्व परिचित हुए बिना उनके प्रकाशन की प्रेरणा व प्रयत्न हो नहीं सकता।

जैन धर्म के दो प्रधान सम्प्रदाय हैं। उनमें से श्वेताम्बर जैन साहित्य के परिचायक तो कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें स्व० मोहनलाल दलीचंद देसाई का कार्य विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। उन्होंने २५ वर्ष निरंतर जैन साहित्य की जानकारी जनता के लिए सुलभ बनाने में ही लगाए। 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' और 'जैन गुर्जर कवियो' तीन भाग श्वेताम्बर जैन-साहित्य का परिचय देने वाले अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।[1] प्रो० हीरालाल रसिकलाल कापड़िया भी इस क्षेत्र में कई वर्षों से अच्छा काम करते हैं। जैन आगमों के परिचायक आपके दो ग्रंथ अंग्रेजी एवं गुजराती में प्रकाशित हो चुके हैं। गुजराती ग्रंथ 'आगमो नुं दिग्दर्शन' साधारणतया ठीक जानकारी देता है। अभी आपका 'पाइय भाषाओ अने साहित्य' ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। जिसमें प्राकृत साहित्य का संक्षेप में ठीक परिचय मिल जाता है। पर ये सभी ग्रंथ गुजराती में होने के कारण उनका प्रचार बहुत ही सीमित है। मुनि जिन विजय जी का सम्पादन कार्य उल्लेखनीय है। इन पंक्तियों का लेखक भी २२ वर्षों से प्रयत्नशील है ही। दिगंबर साहित्य का परिचय देने में नाथूरामजी प्रेमी, जुगलकिशोरजी मुख्तार, डॉ० हीरालालजी आदि ने प्रयत्न किया है पर दिगम्बर साहित्य का इतिहास तो दर किनार अभी पूरी सूची भी प्रकाशित नहीं हो पाई। जिसके लिए विगत १० १५ वर्षों में मैंने कई प्रेरणादायक लेख भी प्रकाशित किये पर कोई फल नहीं हुआ। जयपुर महावीर क्षेत्र कमेटी से आमेर भंडार की सूची छपी है तथा नागौर व जयपुर भंडारों की सूची बन रही है।

दिगंबर-श्वेताम्बर दोनों संप्रदायों का साहित्य बहुत अंशों में एक दूसरे का पूरक है। अतः अब राष्ट्र भाषा हिंदी में सारे 'जैन साहित्य का परिचय' एक साथ प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं—यह तो बहुत से विद्वानों के सम्मिलित प्रयत्न से ही संभव हो सकता है। अतः मैं इसकी संक्षिप्त रूप रेखा उपस्थित कर रहा हूँ। कोई संस्था इस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले और भिन्न २ विषय का भिन्न विद्वानों

---

1 श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स बम्बई से प्रकाशित। मूल्य ५) ५) १०) है। हर जैन साहित्य प्रेमी विद्वान को इन्हें [illegible] और जैनेतर विद्वानों व संस्थाओं को देने चाहिये।

का विशेष अध्ययन हो—उनसे उन उन साहित्य और विषयों के इतिहास ग्रंथ तैयार करवाये जावें। वसे तो सबसे अच्छा कार्य तो यही हो सकता ह कि भारतीय साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जन साहित्य के बारे में आवश्यक जानकारी प्रकाशित की जाती रहे। पर उन ग्रंथों में वह जानकारी बहुत सीमित ही दी जा सकती है और उसे देने के लिए भी जन साहित्य के परिचायक विविध ग्रथ प्रकाशित होने ही चाहिए। हमारी प्राय शिकायत रहती ह और यह उचित भी ह कि सस्कृत साहित्य के इतिहास, हिंदी साहित्य के इतिहास आदि में जन सस्कृत एव हिंदी साहित्य की बडी उपेक्षा की गई ह। भूले भटके दो चार जन कवियों के १०, २० ग्रंथों का उल्लेख ही उनमें पाया जाता ह[१]। हम उन ग्रंथों के लेखकों को जोरदार उपालभ तभी दे सकते ह जब कि हमारे पास हर विषय के जन साहित्य के परिचायक विविध प्रकाशित ग्रथ हों। अयथा उनके लिये जैन साहित्य का अधिक परिचय प्राप्त करना श्रम-साध्य ह। हमें अपनी इस कमी की पूर्ति शीघ्र करनी चाहिए।

मेरी राय में भाषाओं की दृष्टि से और विषयों की दृष्टि से जन साहित्य के परिचायक—साहित्य के इतिहास आठ आठ भागों में तयार करवा कर प्रकाशित करने आवश्यक ह। फुटकर रूप से इस क्षेत्र में कुछ काम हुआ भी है। पर स्वतत्र रूप से काम किए विना जसा कि हम चाहते ह—काम हो नहीं सकता। इत पूव जो काम हुआ ह उसकी जानकारी प्राप्त कर उसका उपयोग कर लेना ह। पर प्रत्येक विषय की अद्यतन जानकारी और विशुद्ध विवेचन स्वतत्र ग्रंथ निर्माण करने पर ही हो सकता ह। जहाँ तक यह योजना काम में नहीं लाई जा सके, वहाँ तक इस संबंध में जो भी लेख आदि प्रकाशित हुए हैं* उनका एक संग्रह ग्रंथ निकल जाय तो काम चलाऊ

---

१ भारतीय जनतर विद्वानों की अपेक्षा तो पाश्चात्य विद्वानों ने इंडियन लिटरेचर आदि ग्रंथों में अधिक परिचय दिया गया ह। इसका कारण भारतीय विद्वानों की साम्प्रदायिकता भी ह।

* जसे भुजबलि शास्त्री लिखित कन्नड प्राकृत, संस्कृत जन वाङ्मयादि का परिचय। ए चक्रवर्ती का तामिल जनसाहित्य का परिचय स्वतंत्र ग्रन्थ में छपा है उसका हिन्दी सार भी कुछ छपा था। जैन ऐतिहासिक साहित्य का परिचय मुनि जिनविजय जी के निबंध में पाया जाता है। अपभ्रंश साहित्य का परिचय डा० हीरालाल जी के नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित लेख में है। राजस्थानी जन साहित्य पर मन गत कार्तिक में राजस्थान विश्वविद्या

कुछ तो वृद्धावस्था के कारण अधिक श्रम करने में असमर्थ हैं और कुछ कार्य भार की अधिकता से। अतः उनसे काम लेने के लिए सहायक के रूप में एक एक प्रतिभा सपन्न व साहित्यक रुचि वाले विद्वानों को नियुक्ति करके अधिकारी व्यक्तियों की देखदेख एव सलाह-सूचना से काम लिया जा सकता है।

हमारे साहित्य के इतिहास संबधी तयार किये जाने वाले प्रथ केवल वणनात्मक ही न होकर विवेचनात्मक भी होने चाहिए। उदाहरणाय—प्रो० हीरालाल कापडिया के 'आगमो नुं दिग्दर्शन' और 'पइय भासाओ अने साहित्य आदि प्रथ व लेख विवरण तो ठीक देते हैं, उनसे सूचना व जानकारी तो मिल जाती है, पर विवेचन नहीं मिलता। इसी प्रकार देसाई के ग्रंथों में से 'जन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास', ज्ञातव्य बातों का एक कोश ग्रंथ सा है, जिसमें साहित्य का विवरण, जैन इतिहास की घटनाओं का सार तो सक्षिप्त में खूब सम्मलित किया गया है पर किसी बात की विशेष जानकारी व विवेचन इसमें नहीं आ सका। एक ग्रन्थ में अनेक बातों का समावेश होने से। और उनके 'जन गुजर कविओं' में तो गुजराती और साहित्य के इतिहास की कच्ची सामग्री तो खूब मिलती है, पर उस साहित्य की विविधता, उसके प्रकार, परम्परा विशिष्टता आदि का विवेचन वे ५०० पृष्ठों में लिखने वाले थे—यह अधूरे लिखे जाने व अप्रकाशित रह जाने से विवेचन की अपेक्षा रह गई। यह काम अब जन साहित्य के भावी इतिहास लेखकों को करने का है। पूववर्ती कामों का उन्हें बहुत बड़ा सहारा मिल रहा है—उनका श्रम बहुत हलका हो गया है। फिर भी बड़े ही दुख के साथ कहना पडता है कि अभी तक हुए कार्यों को आगे बढ़ाने की रुचि व प्रेरणा नये विद्वानों में नहीं पाई जाती। इस रुचि को विकसित करने का प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है।

जन साहित्य की अपेक्षा बौद्ध साहित्य की जानकारी आज विश्व को अधिक है। भारतवर्ष से सैकड़ों वर्षों से बौद्धधर्म विलुप्त सा होकर विदेशों में चारों ओर फल गया। बौद्ध साहित्य के अनेक ग्रंथ अब मूल भाषा व मूल रूप में प्राप्त नहीं है। अनेकों ग्रन्थों के चीनी, बर्मी, तिब्बती, अनुवाद ही प्राप्त हैं। पर विगत ५०।६० वर्षों से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान बौद्ध साहित्य की ओर विशेष रूप से गया और पाली टक्स्ट सोसाइटी‡ आदि द्वारा

‡ भारत सरकार व प्राकृत साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था होने व उसमें ५००) महीने पर पं० फतेचन्द बेलाणी की नियुक्ति का समाचार कुछ महीनों पूर्व पढ़ा था पर बेलाणी कितना व कैसा काम कर सकेंगे, नहीं कहा जा सकता।

"जन साहित्य के इतिहास" ग्रंथ निर्माण में इस शली को अपनाना उपयोगी होगा। मैं "प्राकृत साहित्य का इतिहास"§ को शीघ्र इस पाली साहित्य के इतिहास की भाँति हिंदी साहित्य सम्मेलन के द्वारा ही प्रकाशित हुआ देखना चाहता हूँ। ऐसी सावजनिक और प्रसिद्धि प्राप्त सस्था से ऐसा ग्रंथ प्रकाशित होने पर ही उसका प्रचार ठीक से हो सकेगा।

प्राकृत भाषा और साहित्य के अनेक पडित श्वेताबर व दिगबर दोनों सप्रदायों में विद्यमान ह। बौद्ध पाली साहित्य की अपक्षा प्राकृत जन साहित्य विविधता, विशालता, दीघ परपरा आदि अनेक दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूण है। पाली साहित्य बहुत थोडी शताब्दियों तक रचा गया ह। जब कि प्राकृत जन साहित्य की परपरा भगवान महावीर से लेकर आजतक चली आरही ह।— व्याकरण, छंद, कोश, अलकार, ज्योतिष, वद्यक, मत्र, वास्तुशास्त्र, मुद्रा शास्त्र आदि अनेक विषयों के ग्रंथ प्राकृत में हैं। कथा, काव्य, नाटक, गद्य पद्य सभी प्रकार का प्राकृत साहित्य उपलब्ध ह। प्राचीन जनागमों का महत्त्व भी बौद्ध त्रिपिटिकों आदि से कम नहीं है। दोनो रचनाएँ समसामयिक ह। एक दूसरे के अध्ययन से ही अनेक बातों की जानकारी में पूणता आ सकती ह, निश्चय करने में सुविधा होती है। इनसे तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक ऐतिहासिक ज्ञातव्य बातों की नई नई सूचनाएँ मिलती ह। इसलिए भारतीय विद्वानों को दोनों धर्मों और दोनो भाषाओं के साहित्य की जानकारी साथ २ हो तो अच्छा रहेगा। म प्राकृत भाषा और साहित्य के अधिकारी जन विद्वानो, मुनियों एवं सस्थाओं से अनुरोध करूंगा कि राष्ट्र भाषा में प्राकृत साहित्य का इतिहास शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयत्न करें। विशषत श्री सोहन लाल जन धम प्रचारक समिति व जन संस्कृति सशोधन मंडल बनारस से ही म अवश्य ही आशा करता हूँ कि वे अपने रिसर्च स्कालरों को थीसिस के लिए ये विषय लेने की प्रेरणा करें व जन साहित्य का इतिहास व उपर्युक्त १६ खड तयार कर प्रकाशित करने का बीड़ा उठावें। धनिक इसे पूर्ण सहयोग दें।

---

§ प्राकृत साहित्य का इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा जाय। इसमें जैनेतर प्राकृत साहित्य का भी समभाव से अध्ययन कर यथास्थान उचित रूप से परिचय दिया जाय। प्राकृत भाषा की उपयोगिता पर पं० लालचंद गांधी का ग्रन्थ पठनीय है।

अनेक बौद्ध ग्रंथ रोमन लिपियों और अंग्रेजी अनुवाद के रूप में सुलभ हो गये। प्राचीन चीनी अनुवादों के आधार से मूल पाठ के उद्धार का प्रयत्न भी किया गया है। भारत में भी इधर २० २५ वर्षों में इस दिशा में काफी काम हुआ है। यद्यपि इस काम में बहुत अधिक बौद्धिक श्रम और समय लगा है। जैन साहित्य के क्षेत्र में ऐसी विशेष कठिनाई न होने पर भी अभी उसके महत्व को विश्व के सम्मुख रखे जाने का प्रयत्न नहीं हुआ है। जैनों ने जो कुछ कार्य किया वह अपने में ही सीमित रहा। डा० हरमन जकोबी आदि पाश्चात्य विद्वानों के प्रयत्न के फलस्वरूप अभी कुछ जैनधर्म और साहित्य संबंधी जानकारी विश्व को है। अब जैन समाज को अपने धर्म व साहित्य प्रचार का सही रास्ता शीघ्र ही अपनाना चाहिये। अन्यथा वे बहुत पीछे रह जायंगे। जो बड़ी हानि होगी। जैन समाज बहुत बड़ी साहित्य सम्पत्ति का स्वामी है। उसकी स्मृति प्रकाशन में आना अब अत्यंत आवश्यक है। जैनधर्म के सिद्धान्त बड़े उपयोगी है उनकी प्रसिद्धि से विश्व नतमस्तक हो उठेगा।

हाल ही में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित भरत सिंह उपाध्याय रचित 'पाली साहित्य का इतिहास' मेरे अवलोकन में आया। उपाध्याय जी जैन कालेज बड़ौत के हिंदी विभाग के अध्यक्ष है। विगत ६, ७ वर्षों में उन्होंने बौद्ध साहित्य का अच्छा अध्ययन करके कई ग्रंथ प्रकाशित किए है। मैंने उन्हें २-३ पत्रों द्वारा बौद्ध साहित्य के साथ साथ जैन साहित्य विशेष कर आगमिक प्राकृत साहित्य के अध्ययन के लिए भी निवेदन किया। जैन कालेज में अध्यापक होने के नाते भी उनका यह कर्तव्य था व पं० राम-कुमार जी आदि के वहीं होने से सुविधा भी है पर उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान दिया, प्रतीत नहीं होता। उनकी रुचि एक मात्र बौद्ध साहित्य में ही लगी हुई है। आपका प्रस्तुत ग्रंथ बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह पाली साहित्य का इतिहास ही नहीं है—उन ग्रंथों का विषय परिचायक और विवेचनात्मक ग्रंथ है। इससे जिन ग्रंथों का इसमें परिचय दिया गया है—उनमें क्या क्या विषय है—क्या विशेषताएं है आदि का बोध हो जाता है व उन ग्रंथों के अध्ययन की प्रेरणा मिलती है। अतः मेरी राय में हमारे

विद्वता की दृष्टि से पं० लालचंद व प्रो० कापड़िया का सहयोग उन्हें मिल जाय तो काम ठीक होगा। पं० लालचंद काम धीरे धीरे करने पर भी बड़ा सुन्दर करते हैं। वर्षों के अनुभवी है। ये दोनों विद्वान अभी सेवा दे भी सकते है

"जन साहित्य के इतिहास" ग्रंथ निर्माण में इस शैली को अपनाना उपयोगी होगा। मैं "प्राकृत साहित्य का इतिहास"§ तो शीघ्र इस पाली साहित्य के इतिहास की भांति हिंदी साहित्य सम्मेलन के द्वारा ही प्रकाशित हुआ देखना चाहता हूँ। ऐसी सार्वजनिक और प्रसिद्धि प्राप्त संस्था से ऐसा ग्रंथ प्रकाशित होने पर ही उसका प्रचार ठीक से हो सकेगा।

प्राकृत भाषा और साहित्य के अनेक पंडित श्वेतांबर व दिगंबर दोनों संप्रदायों में विद्यमान है। बौद्ध पाली साहित्य की अपेक्षा प्राकृत जन साहित्य विविधता, विशालता, दीर्घ परंपरा आदि अनेक दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। पाली साहित्य बहुत थोड़ी शताब्दियों तक रचा गया है। जब कि प्राकृत जन साहित्य की परंपरा भगवान महावीर से लेकर आजतक चली आरही है।— व्याकरण, छंद, कोश, अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, वास्तुशास्त्र, मुद्राशास्त्र आदि अनेक विषयों के ग्रंथ प्राकृत में हैं। कथा, काव्य, नाटक, गद्य पद्य सभी प्रकार का प्राकृत •साहित्य उपलब्ध है। प्राचीन जनागमों का महत्त्व भी बौद्ध त्रिपिटिका आदि से कम नहीं है। दोनों रचनाएँ समसामयिक है। एक दूसरे के अध्ययन से ही अनेक बातों की जानकारी में पूर्णता आ सकती है, निश्चय करने में सुविधा होती है। इनसे तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक ज्ञातव्य बातों की नई नई सूचनाएँ मिलती है। इसलिए भारतीय विद्वानों को दोनों धर्मों और दोनो भाषाओं के साहित्य की जानकारी साथ २ हो तो अच्छा रहेगा। मैं प्राकृत भाषा और साहित्य के अधिकारी जन विद्वानों, मुनियों एवं संस्थाओं से अनुरोध करूँगा कि राष्ट्र भाषा में प्राकृत साहित्य का इतिहास शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयत्न करें। विशेषतः श्री सोहन लाल जन धर्म प्रचारक समिति व जन संस्कृति संशोधन मंडल बनारस से ही मैं अवश्य ही आशा करता हूँ कि वे अपने रिसर्च स्कालरों को थीसिस के लिए ये विषय लेने की प्रेरणा करें व जन साहित्य का इतिहास व उपर्युक्त १६ खंड तैयार कर प्रकाशित करने का बीड़ा उठावें। धनिक इसे पूर्ण सहयोग दें।

---

§ प्राकृत साहित्य का इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा जाय। इसमें जैनेतर प्राकृत साहित्य का भी समभाव से अध्ययन कर यथास्थान उचित रूप से परिचय दिया जाय। प्राकृत भाषा की उपयोगिता पर पं० लालचंद गांधी का ग्रंथ पठनीय है।

साहित्य की रुचि और परम्परा इन विशेषणों के इस्तेमाल में सुरुचि और सौन्दर्य नहीं समझती वरन इस अभ्यास की विरोधी है, हम 'श्रमण' को साहित्य की दृष्टि से भी ऊंचे स्तर पर रखने में प्रयत्नशील हैं।

कंचन बहन के विवाह ने १९५१ में स्थानकवासी समाज में कितनी अधिक हलचल की है, इसका अनुमान लगाना तो हमारे लिए मुश्किल है परन्तु इसे आकुलता काफी स्वीकृत की गई थी। 'श्रमण' में उभयपक्ष के समयक लेख निकले थे। इस यात्रा में हमें अनुभव हुआ है कि बावजूद इस अवस्था के कि समिति के संचालकों ने श्रमण में निकलने वाले लेखों के सम्बन्ध में इन शब्दों में अपनी स्थिति स्पष्ट की हुई है कि "श्रमण में प्रकाशित लेख तथा सम्पादकीय विचार लेखक एवं सम्पादक के अपने विचार हैं। संस्था की नीति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।" तो भी भ्रम बना रहता है। पाठक प्रायः विचारणा कम करते हैं। सम्पादकीय लेख भी समिति की कोई सरकारी नीति के आधीन नहीं हैं। वह तो सम्पादक के व्यक्तिगत विचार हैं। जब तक वह उपरोक्त बन्धनों से मर्यादित हैं, सम्पादकों को कुछ भी लिखने में स्वतन्त्रता है।

यदि गुणावगुण की दृष्टि से विचार किया जाए तो हम उपरोक्त घटना को समाज की परम्परा का अपवाद मानने में क्यों दुविधा मानते हैं। अनेक बार हमारे साधु मुनि और साध्वियाँ शास्त्र आदि की वांचना करते हैं तो उनके अन्दर सभी प्रकार की समस्यों के साधारण रीति नीति के अपवाद भी आते रहते हैं, तो उनके सुनाने से क्या उस समय अपवादों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना एक भावना या ध्येय नहीं होता? क्या हमें (श्रोताओं या श्रावक श्राविकाओं) यह शिक्षा देने की चेष्टा नहीं होती कि हम उस अपवाद को गहन गम्भीर दोष न मानकर सहनशीलता और सहानुभूति युक्त धारण करें? तो कंचन बहन के विवाह को दुष्नाम देने के स्थान पर अपने ही काल का अपवाद मान लिया जाए।

सारे सफर में जहां २ हम गए वहां लोगों से मिलने अपना उद्देश्य वर्णन करने और उनकी उदारता को मार्ग देने की चेष्टा के अतिरिक्त कुछ और करना सम्भव नहीं रहता है। जो हमारा बहुत से नगर पहले देखे हुए नहीं भी थे और बीकानेर, जोधपुर आदि ऐतिहासिक नगर भी थे परन्तु वहां के किसी मनहूर मुकाम, स्थान या संस्था को देखने का हमें अवसर नहीं मिल

सका। दो दिन से अधिक एक ही स्थान पर रहना हमें मुश्किल था। उदयपुर में महाराजाओं के महल, पिचोला में स्थित जगनिवास और जग मन्दिर महल हम देखने जा सके क्योंकि यह हमारे निवास स्थान से समीपस्थ थे। और हम अपने थोडे अवकाश का उपयोग कर सकते थे। यहां पर फतहसिंह मेमोरियल सराए एक विशाल सुस्थित और व्यवस्थित ठहरने का स्थान है परन्तु न जाने किस अननुभवी ने बनाने का निरीक्षण किया है कि कमरों में पानी के निकास का प्रबन्ध होने पर भी सतह इस ढंग से रखा है कि उपयोग किया हुआ जल बाहर मुहाने की ओर बहने के स्थान पर कमरे के मध्य में आना ही पसन्द करता है और ठहरनेवाले की परेशानी का कारण रहता है। अहमदाबाद में साबरमती आश्रम, महात्मा गांधी की कुटिया, प्रार्थना स्थान, कागज बनाने का उद्योग और इस प्रकार के कामों में महात्मा जी मशीनरी का कितना उपयोग मनुष्य के हितार्थ मानते थे, सभी देखा। कलिको मिल्स में जहां सारी मिल्स देखीं, अधिक आकर्षण था बच्चों की सार सम्हाल का कार्य। यह बच्चे उन स्त्रियों के थे जो मिलों में काम धधा कर परिवार का खर्च चलाती है। पुराना जैन मन्दिर भी देखा, अधिक देखने का समय नहीं मिला, इन सब में पण्डित सुखलाल जी की प्रेरणा रहती है कि जिज्ञासा होनी चाहिए। पण्डित जी के सौजन्य से पण्डित बेचर दास जी व श्री रमणीकलाल C पारीख से, जो अहमदाबाद यूनिवर्सिटी में रिसर्च in charge है और उनके पुत्र और उनकी पुत्रवधू से, जो अमरीकन रमणी हैं, साक्षात् मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अहमदाबाद में हम एक प्रकार से तीर्थ यात्रा पर गए थे। पण्डित सुखलाल जी के इतने समीप पालनपुर तक पहुँच कर उनके पास न पहुचना भी हेय काय होता। सरितकुंज जहां पण्डित जी ठहरते है, सुरम्य, स्वच्छ और सुन्दर स्थान है। सुश्री इन्दुकला पण्डित जी के पास अपने महानिबंध के काम में संलग्न रहती हैं। यह २० वर्षीया बाला पण्डित जी की प्रेरणा शक्ति और उनकी छत्रछाया में विकास का नमूना है। उस सारे वातावरण का यह चाँद सी अनुभव होती थी।

साहित्य की रुचि और परम्परा इन विशेषणों के इस्तेमाल में सुरुचि और सौन्दर्य नहीं समझती वरन इस अभ्यास की विरोधी हूँ, हम 'श्रमण' को साहित्य की दृष्टि से भी ऊंचे स्तर पर रखने में प्रयत्नशील हूं।

कंचन बहन के विवाह ने १९५१ में स्थानकवासी समाज में कितनी अधिक हलचल की है, इसका अनुमान लगाना तो हमारे लिए मुश्किल है परन्तु इन्हें आकुलता काफी स्वीकृत की गई थी। 'श्रमण' में उभयपक्ष के समर्थन लेख निकले थे। इस यात्रा में हमें अनुभव हुआ है कि बावजूद इस अवस्था के कि समिति के संचालकों ने श्रमण में निकलने वाले लेखों के सम्बन्ध में इन शब्दों में अपनी स्थिति स्पष्ट की हुई है कि "श्रमण में प्रकाशित लेख तथा सम्पादकीय विचार लेखक एवं सम्पादक के अपने विचार हैं। संस्था की नीति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।" सो भी भ्रम बना रहता है। पाठक प्रायः विचारणा कम करते हैं। सम्पादकीय लेख भी समिति की कोई सरकारी नीति के आधीन नहीं हैं। यह तो सम्पादक के व्यक्तिगत विचार हैं। जब तक यह उपरोक्त बन्धनों से मर्यादित हैं, सम्पादकों को कुछ भी लिखने में स्वतन्त्रता है।

यदि गुणावगुण की दृष्टि से विचार किया जाए तो हम उपरोक्त घटना को समाज की परम्परा का अपवाद मानने में क्यों दुविधा मानते हैं। अनेक बार हमारे साधु मुनि और साध्वियां ढाल आदि की वांचना करते हैं तो उनके अन्दर सभी प्रकार की समस्यों के साधारण रीति नीति के अपवाद भी आते रहते हैं, तो उनमें सुनाने से क्या उस समय अपवादी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना एक भावना या ध्येय नहीं होता? क्या हमें (श्रोताओं या श्रावक श्राविकाओं) यह शिक्षा देने की चेष्टा नहीं होती कि हम उस अपवाद को गहरा गम्भीर दोष न मानकर सहनशीलता और सहानुभूति युक्त धारण करें? तो कंचन बहन के विवाह को कुपनाम देने के स्थान पर अपने ही काल का अपवाद मान लिया जाए।

सारे सफर में जहाँ २ हम गए वहां लोगों से मिलना, अपना उद्देश्य व्यक्त करने और उनकी उदारता को मार्ग देने की चेष्टा के अतिरिक्त कुछ और करना सम्भव नहीं रहता है। जो हमने बहुत से नगर पहले देख हुए नहीं भी थे और बीकानेर, जयपुर आदि ऐतिहासिक नगर भी थे परन्तु वहां के किसी मशहूर मुकाम, स्थान या संस्था को देखने का हमें अवसर नहीं मिल

वैशाली का पुनरुत्थान

भगवान् महावीर स्वामी के मामा महाराजा चेटक की राजधानी वैशाली जन समाज के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उसके पास ही क्षत्रियकुण्ड है। महावीर के पिता सिद्धार्थ उसके गणतान्त्रिक नायक थे। कर्मार ग्राम, वाणिज्यग्राम, कोल्हाक सन्निवेश आदि महावीर के जीवन से संबन्ध रखने वाले स्थान भी उसी के आसपास है। महावीर कहाँ उत्पन्न हुए, कहाँ बाल्यावस्था तथा युवावस्था को बिताया, कहाँ प्रव्रजित हुए, प्रव्रज्या के बाद पहली रात कहाँ बिताई, फिर किधर विहार किया, और कहाँ कहाँ रहकर आत्म-साधना की, कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् जनकल्याण के लिए किधर विचरण किया, यह सब वैशाली और उसके निकटवर्ती स्थानों को देखने से स्पष्ट झलकने लगता है। इसके बाद कोई सन्देह नहीं रह जाता कि लिच्छवि गणतन्त्र का केन्द्र, महावीर की जन्मभूमि तथा बुद्ध की उपदेशभूमि यही वैशाली रही है।

किन्तु यह दुःख की बात है कि जैन समाज का ध्यान इस ओर अभी तक नहीं गया है। वर्तमान जैन शासन के नायक भगवान महावीर की जन्मभूमि अभी तक जैन समाज से छिपी हुई है।

ईसाई, मुसलमान तथा दूसरे धर्म वाले अपने अपने धर्म प्रवर्तक के जन्म स्थान को कितना महत्त्व देते हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। जेरूसलम के लिए ईसाइयों ने जो संघर्ष किया है वह धर्मानुराग का एक अमर इतिहास है। एक भारतीय मुसलमान गरीब होने पर भी जन्म भर की कमाई खर्च करके, अनेक कष्ट उठाकर मक्का जाने का अरमान रखता है। किन्तु जैन समाज सब तरह की सुविधाएँ होने पर भी कुण्डलपुर को भुलाए बैठा है।

पिछले आठ वर्षों से बिहार सरकार वैशाली के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील है। प्रतिवर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर वहाँ मेला लगता है। पचास हजार से अधिक जनता एकत्रित होती है। बिहार के मन्त्री तथा अन्य राज्याधिकारी भी इसमें रुचि के साथ भाग लेते हैं। मेले में सभी इस उत्साह के साथ इकट्ठे होते हैं मानो अपने किसी महान् पूर्वज की स्मृति मना रहे हों। अब भी वहाँ चौबीस गाँव ज्ञातृवंशीय भूमिहारों के हैं, जो भगवान महावीर के कुल से सीधा संबन्ध रखते हैं।

प्रिय कहाँ हो ?

प्रिय कहाँ हो ?

नहीं हो तुम कुटी में, अट्टालिका में भी नहीं हो
रम्य उपवन में नहीं हो, वाटिका में भी नहीं हो
नील नभ में नहीं हो तारावली में भी नहीं हो
कृष्ण मेघों में नहीं हो, दामिनी में भी नहीं हो
शशि सदन देखा नहीं शायद यहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो !

क्या छिपे हो सिंधु में, या निर्झरों में बह रहे हो
लहरयत् मैं हूँ अमिट यह मृदु स्वरों में कह रहे हो
मधुनिशा में नयन तारों से मुझे तुम झाँकते हो
सच बता दो मूल्य मेरा आज भी क्या आँकते हो
तो इधर देखो हृदय में तुम यहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो ?

स्वप्न में मुझ तक पहुँचने रात्रि भर तुम जागते हो
स्पर्श करना चाहती हूँ तब कहो क्यों भागते हो
पलक झपते आ पहुँचते पलक खुलते कहाँ जाते
हृदय मेरा टूटता है क्या कभी यह जान पाते
ले चलो मुझको वहाँ बस तुम जहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो ?

—श्रीमती कमला जैन 'जीजी'

मधुरिमा नई भावनाओं का प्रतीक कविता संग्रह

रचयिता—अशोक, प्रकाशक— चिनगारी प्रेस, बनारस, मूल्य—१॥)

कवि 'अशोक' की 'मधुरिमा' सचमुच ही मधुर गीतों का एक संग्रह बन पड़ी है। कविताएँ पढ़कर जान पड़ता है कि कवि ने अपने हृदय की ही 'मधुरिमा' को साकार रूप दिया है। पहली कविता की पहली पंक्ति ही हृदय में एक मधुर झंकार के साथ एक मधुर भावना को उमगाने में समर्थ है—

मदहोश—आम की बाहों में
बेसुध मदमाती
मंजरियाँ

मधुरिमा के सभी गीत नई धारा के प्रतीक हैं। कवि ने मानव हृदय की अनेक प्रकार की भावनाओं को अपने विभिन्न गीतों में व्यक्त कर 'मधुरिमा में एकाकार कर दिया है। हृदय में छिपे हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को व्यक्त करने में भी कवि ने कुशलता दिखाई है। श्री त्रिलोचन शास्त्री के 'पूर्वा' के शब्दों में कहा जाय तो कवि ने आशा निराशा, सुख-दुख, संध्या-उषा, रात दिन, हास रुदन सब पर समान रूप से ध्यान दिया है। हमें विश्वास है कि सुन्दर आर्ट पेपर पर छपी हुई कवि अशोक की 'मधुरिमा' पाठकों के हृदय की मधुर भावनाओं को झकझोरने में सफल हो सकेगी।

सघी मोतीलाल जी मास्टर परिचय और श्रद्धांजलि

सम्पादक—जवाहिर लाल जैन, प्रकाशक—श्री सन्मति पुस्तकालय जयपुर, मूल्य—१)

हमारे देश में मूक सेवकों की कमी नहीं है। ऐसे ऐसे व्यक्ति हमारे देश में हो चुके है जिन्होंने बिना किसी प्रकार की मान प्रतिष्ठा की आकांक्षा किए, बिना किसी प्रकार का अपना विज्ञापन-आत्मप्रचार किए, तन-मन-धन से देश, जाति व धर्म के लिए अपना कर्तव्य पूरा करते हुए अपना जीवन अर्पण किया। ऐसे व्यक्तियों को साहित्यिक भाषा में मौनसाधक या मूकसेवक कहा जाता है। मास्टर मोतीलाल जी भी एक मूक सेवक थे। मास्टर सा०

महावीर, बुद्ध, जनक आदि जीवन्मुक्त तपस्वियों की जन्मभूमि होने के अतिरिक्त विहार जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मणों का सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा है। नालन्दा के कारण तो विहार अखिल विश्व का विद्यागुरु कहा जा सकता है। कुछ वर्षों से यहाँ की सरकार ने यह योजना बनाई है कि विहार के इस अतीत गौरव को पुनर्जीवित किया जाय। तदनुसार भारतीय संस्कृति के तीनों स्रोतों के लिए तीन केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया है। उनमें से संस्कृत तथा वैदिक परम्परा के अध्ययन के लिए दरभंगा इन्स्टिटयूट की स्थापना की है। पाली तथा बौद्ध दर्शन के लिए नालन्दा इन्स्टिटयूट प्रारम्भ हो गई है। तीसरी इन्स्टिटयूट वैशाली में प्राकृत तथा जैनदर्शन के अध्ययन के लिए इस वर्ष खोलने का निश्चय किया है।

विहार सरकार जहाँ अपने कर्तव्य के लिए कटिबद्ध है वहाँ जैन समाज को भी इस कार्य में पूरा सहयोग देना चाहिए। हमें यह कहते हुए गर्व होता है कि इस पुनीत कार्य के लिए कलकत्ते की तेरापंथी सभा ने अखिल जैन समाज की ओर से पाँच लाख रुपए देने का वचन दिया है। आशा है सरकार अब इस वैशाली इन्स्टिट्यूट को भी शीघ्र ही मूर्त रूप दे देगी।

इस वर्ष वैशाली का नवम समारोह मनाया गया था। इसकी अध्यक्षता के लिए दीर्घदर्शी पं० श्री सुखलाल जी को आमन्त्रित किया गया था। पंडितजी ने जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण परम्पराओं के मेल से भारतीय संस्कृति के विकास का जो मार्गदर्शन किया है वह सभी के लिए मननीय है। भारतवर्ष सदियों से धर्म के नाम पर मत मतान्तर पन्थों के झगड़ों का अखाड़ा बना हुआ है। उसकी दुर्बलता का मुख्य कारण ही साम्प्रदायिक झगड़े हैं। जिस प्रकार भारतीय सरकार ने इन झगड़ों से ऊपर उठ कर संघराज्य की स्थापना की है और उसके द्वारा राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का निश्चय किया है उसी प्रकार यदि सभी मत मतान्तर भी बाह्य झगड़ों से ऊपर उठकर उस अन्तस्तल तक पहुँचने का प्रयत्न करें जहाँ त्याग और प्रेम की एक ही धारा बह रही है तो राजनीति और धर्म परस्पर पूरक बनकर देश को आगे ले जा सकेंगे। इतना ही नहीं, समस्त विश्व का पथप्रदर्शन कर सकेंगे। पण्डित जी के उपरोक्त विचार सभी धर्मनेताओं के लिए आदरणीय हैं। पण्डित जी का भाषण हम अगले अंक में दे रहे हैं।

———:०:———

'श्रमण' का मई-जून का अंक

साहित्य-संस्कृति अंक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्रमण का अगला अंक अनुसंधान अंक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसमें प्रसिद्ध विद्वानों के साहित्य व संस्कृति सम्बन्धी लेख रहेंगे।

इस अंक के कुछ लेखक—

पं० सुखलाल जी

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल,

अध्यक्ष—कला तथा पुरातत्त्व विभाग, का० हि० वि०

श्री भँवरलाल नाहटा

श्री अगरचंद नाहटा

पं० बेचरदास जी

डॉ० भोगीलाल सांडेसरा

अध्यक्ष—गुजराती विभाग, बड़ौदा विश्वविद्यालय

शोधपूर्ण प्रामाणिक सामग्री से परिपूर्ण लगभग १०० पृष्ठों का यह अंक जून के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।

इस विशेषांक का मूल्य होगा—१), पर ग्राहकों से इसके लिए अतिरिक्त मूल्य न लिया जाएगा।

आज ही 'श्रमण' के ग्राहक बनकर जैन दर्शन का मर्म समझिए और जैन समाज के सांस्कृतिक विकास में सहयोगी बनिए।

व्यवस्थापक—

'श्रमण', श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस—५

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस—५

ज्ञानी और अज्ञानी

न अन्नाणी कम्म खवेइ बहुयाहि वास कोडीहिं ।
त नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमित्तेण ॥

अज्ञानी जिस कर्म को करोड़ों वर्षों में खपाता है, मन, वचन और शरीर तीनों पर संयम रखने वाला ज्ञानी उसे एक सांस में खपा डालता है।

—भद्रबाहु

इस अंक में

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

प० सुखलाल जी

भारत में अनेक धम परम्पराएं रही ह। ब्राह्मण परम्परा मुख्यतया वैदिक ह जिसकी कई शाखाएं ह। श्रमण परम्परा की भी जन, बौद्ध, आजीवक, प्राचीन सांख्य योग आदि कई शाखाएँ ह। इन सब परम्पराओं के शास्त्र में, गुरुवर्ग और संघ में, आचार विचार में उत्थान-पतन और विकास ह्रास में इतनी अधिक ऐतिहासिक भिन्नता ह कि उस उस परम्परा में जन्मा व पला हुआ और उस उस परम्परा के संस्कार से संस्कृत हुआ कोई भी व्यक्ति सामान्य रूप से उन सब परम्पराओं के अन्तस्थल में जो वास्तविक एकता ह उसे नहीं समझ पाता। सामान्य व्यक्ति हमेशा भेदपोषक स्थूल स्तरों में ही फँसा रहता ह पर तत्त्वचिन्तक और पुरुषार्थी व्यक्ति जसे जैसे गहराई से निर्भयतापूर्वक सोचता है वसे वसे उसको आन्तरिक सत्य की एकता प्रतीत होने लगती ह और भाषा, आचार, संस्कार आदि भेद उसकी प्रतीति में बाधा नहीं डाल सकते। मानव चेतना आखिर मानव चेतना ही ह, पशुचेतना नहीं। जसे जसे उसके ऊपर से आवरण हटते जाते ह वसे वसे वह अधिकाधिक सत्य का दर्शन कर पाती ह।

हम साम्प्रदायिक दृष्टि से महावीर को अलग, बुद्ध को अलग और उपनिषद् के ऋषियों को अलग समझते ह, पर अगर गहराई से देखें तो उन सब के मौलिक सत्य में शब्दभेद के सिवा और भेद न पायेंगे। महावीर मुख्यतया अहिंसा की परिभाषा में सब बातें समझाते ह तो बुद्ध तृष्णात्याग और मैत्री की परिभाषा में अपना सदेश देते ह। उपनिषद के ऋषि अविद्या या अज्ञान निवारण की दृष्टि से चिन्तन उपस्थित करते हैं। ये सब एकही सत्य के प्रतिपादन की जुदी जुदी रीतियां ह, जुदी जुदी भाषाएँ ह। अहिंसा तब तक सिद्ध हो ही नहीं सकती जब तक तृष्णा हो। तृष्णात्याग का दूसरा नाम ही तो अहिंसा ह। अज्ञान की वास्तविक निवृत्ति बिना हुए न तो अहिंसा सिद्ध हो सकती ह और न तृष्णा का त्याग ही संभव ह, धमपरम्परा कोई भी क्यों न हो, अगर वह सचमुच धमपरम्परा ह तो उसका मूलतत्त्व अन्य वसी धम परम्पराओं से जुदा हो ही नहीं सकता। मूल तत्त्व की जुदाई का भ्रम होना

अहिंसा

सव्वे जीवा पियाउआ, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पियवहा, पियजीविणो जीविउकामा। सव्वेसिं जीवियं पियं। तम्हा णातिवाएज्ज किंचण।

सभी जीवों को आयुष्य प्रिय है, सभी सुख चाहते हैं, दुःख से घबराते हैं, मरना किसी को प्रिय नहीं है, सभी जीने की कामना करते हैं। सभी को जीवन प्रिय है। इसलिए किसी को न मारना चाहिए, न कष्ट देना चाहिए।

× × ×

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्झावेयव्वा, न परिघेतव्वा, न उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे, धुवे, नीए, सासए, समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए।

किसी प्राणी, किसी भूत, किसी जीव तथा किसी सत्त्व को न मारना चाहिए, न क्लेश देना चाहिए, न सन्ताप देना चाहिए, न उपद्रव करना चाहिए, यह धर्म शुद्ध है, ध्रुव है, न्याय है, शाश्वत है, लोकस्वभाव को समझ कर अनुभवियों द्वारा बताया गया है।

—आचारांग

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

पं० सुखलाल जी

भारत में अनेक धम परम्पराए रही ह। ब्राह्मण परम्परा मुख्यतया वदिक ह जिसकी कई शाखाए ह। श्रमण परम्परा की भी जन, बौद्ध, आजीवक, प्राचीन सांख्य-योग आदि कई शाखाएँ ह। इन सब परम्पराओ के शास्त्र में, गुरुवग और सघ में, आचार विचार में उत्थान-पतन और विकास ह्रास में इतनी अधिक ऐतिहासिक भिन्नता ह कि उस उस परम्परा में जन्मा व पला हुआ और उस उस परम्परा के संस्कार से सस्कृत हुआ कोई भी व्यक्ति सामान्य रूप से उन सब परम्पराओं के अन्तस्तल में जो वास्तविक एकता ह उसे नहीं समझ पाता। सामान्य व्यक्ति हमेशा भेदपोषक स्थूल स्तरों में ही फँसा रहता ह पर तत्त्वचिन्तक और पुरुषार्थी व्यक्ति जसे जसे गहराई से निर्भयतापूर्वक सोचता है वसे वसे उसको आन्तरिक सत्य की एकता प्रतीत होने लगती ह और भाषा आचार, संस्कार आदि भेद उसकी प्रतीति में बाधा नहीं डाल सकते। मानव चेतना आखिर मानव चेतना ही ह, पशुचेतना नहीं। जसे जसे उसके ऊपर से आवरण हटते जाते हं वसे वसे वह अधिकाधिक सत्य का दर्शन कर पाती ह।

हम साम्प्रदायिक दृष्टि से महावीर को अलग, बुद्ध को अलग और उपनिषद् के ऋषियों को अलग समझते हं, पर अगर गहराई से देखें तो उन सब के मौलिक सत्य में शब्दभेद के सिवा और भेद न पायेंगे। महावीर मुख्यतया अहिंसा की परिभाषा में सब बातें समझाते हं तो बुद्ध तृष्णात्याग और मत्री की परिभाषा में अपना संदेश देते ह। उपनिषद के ऋषि अविद्या या अज्ञान निवारण की दृष्टि से चिन्तन उपस्थित करते ह। ये सब एक ही सत्य के प्रतिपादन की जुदी जुदी रीतियाँ ह, जुदी जुदी भाषाएँ हैं। अहिंसा तब तक सिद्ध हो ही नहीं सकती जब तक तृष्णा हो। तृष्णात्याग का दूसरा नाम ही तो अहिंसा है। अज्ञान की वास्तविक निवत्ति बिना हुए न तो अहिंसा सिद्ध हो सकती ह और न तृष्णा का त्याग ही सभव ह, धमपरम्परा कोई भी क्यों न हो, मगर वह सचमुच धमपरम्परा ह तो उसका मूलतत्त्व अन्य वसी धम परम्पराओं स जुदा हो ही नहीं सकता। मूल तत्त्व की जुदाई का अथ होगा

कि सत्य एक नहीं। पर पहुँचे हुए सभी ऋषियों ने कहा है कि सत्य के आविष्कार अनेकधा हो सकते हैं पर सत्य तो अखण्डित एक ही है। मैं अब छप्पन वर्ष के थोड़े बहुत अध्ययन चिन्तन से इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पन्थ-भेद कितना ही क्यों न हो पर उसके मूल में एक ही सत्य रहता है।

महावीर के समय में वैशाली के और दूसरे भी गणराज्य थे जो तत्कालीन प्रजासत्ताक राज्य ही थे पर उन गणराज्यों की संघदृष्टि अपने तक ही सीमित थी। इसी तरह से उस समय के जैन, बौद्ध, आजीवक आदि अनेक धर्मसंघ भी थे जिनकी संघदृष्टि भी अपने अपने तक ही सीमित थी। पुराने गणराज्यों की संघदृष्टि का विकास भारतव्यापी नए संघराज्यरूप में हुआ है जो एक प्रकार से अहिंसा का ही राजकीय विकास है। अब इसके साथ पुराने धर्मसंघ तभी मेल खा सकते हैं या विकास कर सकते हैं जब उन धर्मसंघों में भी मानवतावादी संघदृष्टि का निर्माण हो और तदनुसार सभी धर्मसंघ अपना विधान बदल कर एक लक्ष्यगामी हों। यह हो नहीं सकता कि भारत का राज्यतन्त्र तो व्यापक बन कर चले और पन्थों के धर्मसंघ पुराने ढर्रे पर चलें। आखिर को राज्यतन्त्र और धर्मसंघ दोनों का प्रवृत्तिक्षेत्र तो एक अखण्ड भारत ही है। ऐसी स्थिति में अगर संघराज्य को ठीक तरह से विकास करना है और जनकल्याण में भाग लेना है तो धर्मसंघ के पुरस्कर्ताओं को भी व्यापक दृष्टि से सोचना होगा। अगर वे ऐसा न करें तो अपने अपने धर्मसंघ को प्रतिष्ठित व जीवित नहीं रख सकते या भारत के संघराज्य को भी जीवित रहने न देंगे। इसलिए हमें पुराने गणराज्य की संघदृष्टि तथा पन्थों की संघदृष्टि का इस युग में ऐसा सामञ्जस्य करना होगा कि धर्मसंघ भी विकास के साथ जीवित रह सके और भारत का संघराज्य भी स्थिर रह सके।

भारतीय संघराज्य का विधान असाम्प्रदायिक है। इसका अर्थ यही है कि संघराज्य किसी एक धर्म में बद्ध नहीं है। इसमें लघुमती बहुमती सभी छोटे बड़े धर्मपन्थ समान भाव से अपना अपना विकास कर सकते हैं। जब संघ राज्य की नीति इतनी उदार है तब हरेक धर्म परम्परा का कर्तव्य अपने आप सुनिश्चित हो जाता है कि प्रत्येक धर्म परम्परा समग्र जनहित की दृष्टि से संघराज्य को सब तरह से दृढ़ बनाने का ख्याल रखने और प्रयत्न करे। कोई भी लघु या बहुमती धर्मपरम्परा ऐसा न सोचे और न ऐसा कार्य करे कि जिससे राज्य की केन्द्रीय शक्ति या प्रान्तिक शक्तियाँ निर्बल हों।

या गृहस्थ अनुयायी अपनी दृष्टि को व्यापक बनायें और केवल संकुचित दृष्टि से अपनी परम्परा का ही विचार न करें।

धर्म परम्पराओं का पुराना इतिहास हमें यही सिखाता है। गणतंत्र राजतंत्र ये सभी आपस में लड़कर अन्त में ऐसे धराशायी हो गये कि जिससे विदेशियों को भारत पर शासन करने का मौका मिला। गांधीजी की अहिंसा दृष्टि ने उस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और अन्त में २७ प्रान्तीय घटक राज्यों का एक केन्द्रीय संघराज्य कायम हुआ जिसमें सभी प्रान्तीय लोगों का हित सुरक्षित रहे और बाहर के भय स्थानों से भी बचा जा सके। अब धर्म परम्पराओं को भी अहिंसा, मैत्री या ब्रह्म भावना के आधार पर ऐसा धार्मिक वातावरण बनाना होगा कि जिसमें कोई एक परम्परा अन्य परम्पराओं के संकट को अपना संकट समझे और उसके निवारण के लिए वैसा ही प्रयत्न करे जैसा अपने पर आये संकट के निवारण के लिए। हम इतिहास से जानते हैं कि पहले ऐसा नहीं हुआ। फलतः कभी एक तो कभी दूसरी परम्परा बाहरी आक्रमणों का शिकार बनी और कम ज्यादा रूप में सभी धर्म परम्पराओं की सांस्कृतिक और विद्या संपत्ति को सहना पड़ा। सोमनाथ, रुद्रमहालय, उज्जयिनी के महाकाल तथा काशी आदि के वैष्णव, शैव आदि धामों पर जब संकट आये तब अगर अन्य परम्पराओं ने प्राणपण से पूरा साथ दिया होता तो वे धाम बच जाते। नहीं भी बचते तो सब परम्पराओं की एकता ने विरोधियों का हौसला जरूर ढीला कर दिया होता। सारनाथ, नालन्दा, उदन्तपुरी, विक्रमशिला आदि के विद्या विहारों को बख्तियार खिलजी कभी ध्वस्त कर नहीं पाता अगर उस समय बौद्धेतर परम्पराएं भी उस आफत को अपनी समझतीं। पाटन, तारंगा, सचोर, आबू, झालोर आदि के शिल्पस्थापत्यप्रधान जैन मंदिर भी कभी नष्ट नहीं होते। अब समय बदल गया और हमें पुरानी त्रुटियों से सबक सीखना होगा।

सांस्कृतिक और धार्मिक स्थानों के साथ साथ अनेक ज्ञानभण्डार भी नष्ट हुए। हमारी धर्म परम्पराओं को पुरानी दृष्टि बदलनी हो तो हमें नीचे लिखे अनुसार कार्य करना होगा।

(१) प्रत्येक धर्मपरम्परा का दूसरी धर्म परम्पराओं का उतना ही आदर करना चाहिए जितना वह अपने बारे में चाहती है।

(२) इसके लिए गुरुवर्ग और पण्डित वर्ग सबको आपस में मिलने जुलने के प्रसंग पैदा करना और उदारदृष्टि से विचार विनिमय करना। जहाँ

ऐकमत्य न हो वहाँ विवाद में न पड़कर सहिष्णुता की वृद्धि करना। धार्मिक और सांस्कृतिक अध्ययन अध्यापन की परम्पराओं को इतना विकसित करना कि जिसमें किसी एक धर्म परम्परा का अनुयायी अन्य धर्म परम्पराओं की बातों से सर्वथा अनभिज्ञ न रहे और उनके मन्तव्यों को गलतरूप में न समझे।

इसके लिए अनेक विश्वविद्यालय महाविद्यालय जैसे शिक्षा केन्द्र हैं जहाँ इतिहास और तुलना दृष्टि से धर्मपरम्पराओं की शिक्षा दी जाती है। फिर भी अपने देश में ऐसे सैकड़ों नहीं हजारों छोटे बड़े विद्याधाम, पाठशालाएं आदि हैं जहाँ केवल साम्प्रदायिक दृष्टि से उस उस परम्परा की एकांगी शिक्षा दी जाती है। इसका नतीजा अभी यही देखने में आता है कि सामान्य जनता और हरेक परम्परा के गुरु या पण्डित अभी उसी दुनिया में जी रहे हैं जिसके कारण सब धर्म परम्पराएँ निस्तेज और मिथ्याभिमानी हो गई हैं।

विद्याकेन्द्रों में सर्व विद्याओं के संग्रह की आवश्यकता—

जैसा पहले सूचित किया है कि धर्मपरम्पराओं को अपनी दृष्टि का तथा व्यवहारों का युगानुरूप विकास करना ही होगा। वैसे ही विद्याओं की हर परम्पराओं को भी अपना तेज कायम रखने और बढ़ाने के लिए अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली में नये सिरे से सोचना होगा।

प्राचीन भारतीय विद्यायें कुल मिलाकर तीन भाषाओं में समा जाती हैं—संस्कृत, पाली और प्राकृत। एक समय था जब संस्कृत के धुरन्धर विद्वान भी पाली या प्राकृत शास्त्रों को न जानते थे या बहुत ऊपर ऊपर से जानते थे। ऐसा भी समय था जब कि पाली और प्राकृत शास्त्रों के विद्वान् संस्कृत शास्त्रों की पूर्ण जानकारी रखते थे। यही स्थिति पाली और प्राकृत शास्त्रों के जानकारों के बीच परस्पर में भी थी। पर क्रमशः समय बदलता गया। आज तो पुराने युग ने ऐसा पलटा खाया है कि इसमें कोई सच्चा विद्वान् एक या दूसरी भाषा की तथा उस भाषा में लिखे हुए शास्त्रों की उपेक्षा करके नवयुगीन विद्यालयों और महाविद्यालयों को चला ही नहीं सकता। इस दृष्टि से जब विचार करते हैं तब स्पष्ट मालूम पड़ता है कि यूरोपीय विद्वानों ने पिछले सवा सौ वर्ष में भारतीय विद्याओं का जो गौरव स्थापित किया है संशोधन किया है उसकी बराबरी करने के लिए तथा उनसे कुछ आगे बढ़ने के लिए हम भारतवासियों को अब अध्ययन अध्यापन, चिन्तन लेखन और संपादन विवेचन आदि का क्रम अनेक प्रकार से बदलना होगा जिसके बिना हम प्राच्यविद्या-विशारद यूरोपीय विद्वानों के अनुगामी तक बनने में असमर्थ रहेंगे।

प्राच्य भारतीय विद्या की किसी भी शाखाका उच्च अध्ययन करने के लिए तथा उच्च पदवी प्राप्त करने के लिए हम भारतीय यूरोप के जुदे जुदे देशों में जाते है। उसमें केवल नौकरी की दृष्टि से डिग्री पाने का ही मोह नहीं है पर इसके साथ उन देशों की उस उस संस्था का व्यापक विद्यामय वातावरण भी निमित्त है। वहाँ के अध्यापक, वहाँ की कार्य प्रणाली, वहाँ के पुस्तकालय आदि ऐसे अङ्गप्रत्यङ्ग है जो हमें अपनी ओर खींचते हैं, अपने ही देश की विद्याओं का अध्ययन करने के लिए हमको हजारों कोस दूर कर्ज ले करके भी जाना पड़ता है और उस स्थिति में जब कि उन प्राच्य विद्याओं की एक एक शाखाके पारदर्शी अनेक विद्वान् भारत में भी मौजूद हों। यह कोई अचरज की बात नहीं है। वे विदेशी विद्वान् इस देश में आकर सीख गये, अभी वे सीखने आते है पर सिक्का उनका है। उनके सामने पुराने भारतीय पण्डित और नई प्रणाली के अध्यापक अकसर फीके पड़ जाते है। इसमें कृत्रिमता और मोह का भाग बाद करके जो सत्य है उसकी ओर हमें देखना है। इसको देखते हुए मुझको कहने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं कि हमारे उच्च विद्या के केन्द्रों में शिक्षण प्रणाली का आमूल परिवर्तन करना होगा।

उच्च विद्या के केन्द्र अनेक हो सकते है। प्रत्येक केन्द्र में किसी एक विद्या परंपरा की प्रधानता भी रह सकती है। फिर भी ऐसे केन्द्र अपने संशोधन कार्य में पूर्ण तभी बन सकते है जब अपने साथ संबंध रखने वाली विद्या परंपराओं की भी पुस्तक आदि सामग्री वहाँ संपूर्ण तथा सुलभ हो।

पाली, प्राकृत, संस्कृत भाषा में लिखे हुए सब प्रकार के शास्त्रों का परस्पर इतना घनिष्ठ संबंध है कि कोई भी एक शाखा की विद्या का अभ्यासी विद्या की दूसरी शाखाओं के आवश्यक वास्तविक परिशीलन को बिना किए सच्चा अभ्यासी बन ही नहीं सकता, जो परीशीलन अधूरी सामग्रीवाले केन्द्रों में संभव नहीं।

इससे पुराने पंथवाद और जातिवाद जो इस युग में हेय समझा जाता है, अपने आप शिथिल हो जाता है। हम यह जानते हैं कि हमारे देश का उच्च वर्णाभिमानी विद्यार्थी भी यूरोप में जाकर वहाँ के संसर्ग से वर्णाभिमान भूल जाता है। - यह स्थिति अपने देश में स्वाभाविक तब बन सकती है जब कि एक ही केन्द्र में अनेकों अध्यापक हों, अध्येता हों और सब का परस्पर मिलन सहज हो। ऐसा नहीं होने से साम्प्रदायिकता का मिथ्या अंश किसी न किसी रूप में पुष्ट हुए बिना रह नहीं सकता। साम्प्रदायिक वाताओं की

मनोवृत्ति को जीतने के वास्ते उच्चविद्या के क्षेत्र में भी साम्प्रदायिकता का दिखावा संचालकों को करना ही पड़ता है। मेरे विचार से तो उच्चतर अध्ययन के केन्द्र में सर्वविद्याओं की आवश्यक सामग्री होनी ही चाहिए।

शास्त्रीय परिभाषा में लोकजीवन की छाया—

अब अन्त में मैं संक्षेप में यह दिखाना चाहता हूँ कि उस पुराने युग के राज्यसंघ और धर्म संघ का आपस में कैसा चोली दामन का संबंध रहा है जो अनेक शब्दों में तथा तत्त्वज्ञान की परिभाषाओं में भी सुरक्षित है। हम जानते हैं कि वज्जिओं का राज्य गणराज्य था अर्थात् वह एक संघ था। गण और संघ शब्द ऐसे समूह के सूचक हैं जो अपना काम चुने हुए योग्य सभ्यों के द्वारा करते थे। यही बात धर्मक्षेत्र में भी थी। जैनसंघ भी भिक्षु भिक्षुणी, श्रावक-श्राविका चतुर्विध अङ्गों से ही बना और सब अङ्गों की सम्मति से ही काम करता रहा। जैसे जैसे जैनधर्म का प्रसार अन्यान्य क्षेत्रों में तथा छोटे बड़े सैकड़ों, हजारों गाँवों में हुआ वैसे वैसे स्थानिक संघ भी कायम हुए जो आज तक कायम हैं। किसी भी एक कस्बे या शहर को लीजिए अगर वहाँ जैन बसते हैं तो उनका वहाँ संघ होगा और सारा धार्मिक कारोबार संघ के जिम्मे होगा। संघ का कोई मुखिया मनमानी नहीं कर सकता। बड़े से बड़ा आचार्य हो तो भी उसे संघ के अधीन रहना होगा। संघ से बहिष्कृत व्यक्ति का कोई गौरव नहीं। सारे तीर्थ, सारे भण्डार और सारे धार्मिक सार्वजनिक काम संघ की देख रेख में ही चलते हैं। और इन इकाई संघों के मिलने से प्रान्तीय और भारतीय संघों की घटना भी आजतक चली आती है। जैसे गणराज्य का भारतव्यापी संघराज्य में विकास हुआ वैसे ही पार्श्वनाथ और महावीर के द्वारा संचालित उस समय के छोटे बड़े संघों के विकासस्वरूप में आज की जैन संघव्यवस्था है। बुद्ध का संघ भी वैसा ही है। किसी भी देश में जहाँ बौद्धधर्म है वहाँ संघ व्यवस्था है और सारा धार्मिक व्यवहार संघों के द्वारा ही चलता है।

जैसे उस समय के राज्यों के साथ गण शब्द लगा था वैसे ही महावीर के मुख्य शिष्यों के साथ 'गणधर' शब्द प्रयुक्त है। उनके ग्यारह मुख्य शिष्य जो बिहार में ही जन्मे थे वे गणधर कहलाते हैं। आज भी जैन परम्परा में 'गणी' पद कायम है और बौद्ध परम्परा में संघ स्थविर या महानायक पद है।

जैन तत्त्वज्ञान की परिभाषाओं में नयवाद की परिभाषा का भी स्थान है। नय पूर्ण सत्य की एक बाजू को जानने वाली दृष्टि का नाम है। ऐसे नय

के सात प्रकार जैन शास्त्रों में पुराने समय से मिलते हैं जिनमें प्रथम नय का नाम है 'नगम'। कहना न होगा कि नगम शब्द 'निगम' से बना है जो निगम वैशाली में थे और जिनके उल्लेख सिक्कों में भी मिले हैं। 'निगम' समान कारोबार करने वालों की श्रेणी विशेष है। उनमें एक प्रकार की एकता रहती है और सब स्थूल व्यवहार एक सा चलता है। उसी 'निगम' का भाव लेकर उसके ऊपर से नगम शब्द के द्वारा जन परम्परा में ऐसी एक दृष्टि का सूचन किया है जो समाज में स्थूल होती है और जिसके आधार पर जीवन व्यवहार चलता है।

नगम के बाद संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे छह शब्दों के द्वारा आंशिक विचारसरणियों का सूचन आता है। मेरी राय में उक्त छहों दृष्टियां यद्यपि तत्त्व ज्ञान से सम्बन्ध रखती हैं पर वे मूलतः उस समय के राज्य व्यवहार और सामाजिक व्यवहारिक आधार पर फलित की गई हैं। इतना ही नहीं बल्कि संग्रह व्यवहारादि ऊपर सूचित शब्द भी तत्कालीन भाषा प्रयोगों से लिए हैं। अनेक गण मिलकर राज्यव्यवस्था या समाज व्यवस्था करते थे जो एक प्रकार का समुदाय या संग्रह होता था। और जिसमें भेद में अभेद दृष्टि का प्राधान्य रहता था। तत्त्वज्ञान के संग्रह नय के अर्थ में भी यही भाव है। व्यवहार चाहे राजकीय हो या सामाजिक वह जुदे जुदे व्यक्ति या दल के द्वारा ही सिद्ध होता है। तत्त्वज्ञान के व्यवहार नय में भी भेद अर्थात् विभाजन का ही भाव मुख्य है। हम वैशाली में पाए गए सिक्कों से जानते हैं कि 'व्यावहारिक और विनिश्चय महामात्य की तरह 'सूत्रधार' भी एक पद था। मेरे ख्याल से सूत्रधार का काम वही होना चाहिए जो जैन तत्त्वज्ञान के ऋजुसूत्र नय शब्द से लक्षित होता है। ऋजुसूत्रनय का अर्थ है आगे पीछे की गली कूंजी में न जाकर केवल वर्तमान का ही विचार करना। संभव है सूत्रधार का काम भी वैसा ही कुछ रहा हो जो उपस्थित समस्याओं को तुरन्त निपटावे। प्रत्येक समाज में, सम्प्रदाय में और राज्य में भी प्रसंग विशेष पर शब्द अर्थात् आज्ञा को ही प्राधान्य देना पड़ता है। जब अन्य प्रकार से मामला सुलझता न हो तब किसी एक का शब्द ही अंतिम प्रमाण माना जाता है। शब्द के इस प्राधान्य का भाव अन्यरूप में शब्दनय में गर्भित है। बुद्ध ने खुद ही कहा है कि लिच्छविगण पुराने रीति रिवाजों अर्थात् रूढ़ियों का आदर करते हैं। कोई भी समाज प्रचलित रूढ़ियों का सर्वथा उन्मूलन करके नहीं जी सकता। समभिरूढनय में रूढ़ि के

अनुसरण का भाव तात्त्विक दृष्टि से घटाया है। समाज, राज्य और धर्म की व्यवहारगत और स्थूल विचारसरणी या व्यवस्था कुछ भी क्यों न हो पर उसमें सत्य की पारमार्थिक दृष्टि न हो तो वह न जी सकती है, न प्रगति कर सकती है। एवम्भूतनय उसी पारमार्थिक दृष्टि का सूचक है जो तथागत के 'तथा' शब्द में या पिछले महायान के 'तथता' में निहित है। जैन परम्परा में भी 'तहत्ति' शब्द उसी युग से आज तक प्रचलित है। जो इतना ही सूचित करता है कि सत्य जैसा है वैसा हम स्वीकार करते हैं।

ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदि अनेक परम्पराओं के प्राप्य ग्रन्थों से तथा मुद्रा, सिक्के और खुदाई से निकली हुई अन्यान्य सामग्री से जब हम प्राचीन आचार, विचारों का, संस्कृति के विविध अंगों का, भाषा के अङ्गप्रत्यङ्गों का और शब्दों के अर्थों के भिन्न भिन्न स्तरों का विचार करेंगे तब शायद हमको ऊपर की तुलना भी काम दे सके। इस दृष्टि से मैंने यहाँ संकेत कर दिया है। अभी तो जब हम उपनिषदों, महाभारत रामायण जैसे महाकाव्यों, पुराणों, पिटकों, आगमों और दार्शनिक साहित्य का तुलनात्मक बड़े पैमाने पर अध्ययन करेंगे तब अनेक रहस्य ऐसे ज्ञात होंगे जो सूचित करेंगे कि यह सब किसी एक वट का विविध विस्तार मात्र है।

अध्ययन का विस्तार

पाश्चात्य देशों में प्राच्यविद्या के अध्ययन आदि का विकास हुआ है उसमें अविश्रान्त उद्योग के सिवाय यथार्थ दृष्टि, जाति और पन्थभेद से ऊपर उठकर सोचने की वृत्ति और सर्वाङ्गीण अवलोकन ये मुख्य कारण हैं। हमें इस मार्ग को अपनाना होगा। हम बहुत थोड़े समय में अभीष्ट विकास कर सकते हैं। इस दृष्टि से सोचता हूँ तब कहने का मन होता है कि हमें उच्च विद्या के वर्तुल में अपेक्षित आदि अत्युपयुक्त परम्परा के साहित्य का समावेश करना होगा। इतना ही नहीं बल्कि इस्लामी साहित्य को भी समुचित स्थान देना होगा। जब हम इस देश में राजकीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकत्रित हुए हैं या अविभाज्य रूप से साथ रहते हैं तब हमें उसी भाव से सब विद्याओं को समुचित स्थान देना होगा।*

---

* बैनारसी यूनिवर्सिटी पर दिए गए भाषण में से

जैन साहित्य का नवीन अनुशीलन

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

प्राचीन जैन आगम-साहित्य, उसकी अनेक टीकाएँ, नियुक्तियाँ, चूर्णियाँ और भाष्य एवं उनके अतिरिक्त अनेक प्रकार का काव्य कथा-साहित्य, टीका साहित्य और वैज्ञानिक साहित्य भारतीय संस्कृति की मूल्यवान निधि है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति की जो प्राचीन गाथा है, बौद्ध, जैन और ब्राह्मण साहित्य उसकी तीन समकक्ष धाराएँ हैं। इन तीनों के ही अमृत जल से भारतीय साहित्य धर्म और संस्कृति का स्वरूप प्रोक्षित हुआ है। इनमें से बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य का नवीन अनुशीलन कुछ हुआ है यद्यपि उस क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है, किन्तु जैन साहित्य की ओर विद्वानों का ध्यान उस मात्रा में अभी नहीं गया। जैन साहित्य में जो सामग्री है वह उन दोनों साहित्यों की सामग्री को स्थान स्थान पर और अधिक प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त इस साहित्य की स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं क्योंकि लोक के साक्षात् दर्शन और लोक जीवन में स्वयकृत अनुभव से इस विशिष्ट साहित्य का जन्म हुआ। अतएव स्थूल भौतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों के विषय में जैन साहित्य जो कुछ हमें बताता है उससे हमारे सांस्कृतिक ज्ञान का पर्याप्त संवर्धन हो सकता है।

आवश्यकता है अर्वाचीन ऐतिहासिक की समन्वय प्रधान वस्तुदृष्टि से विशाल जैन साहित्य का अनुशीलन किया जाय। इस महत्वपूर्ण कार्य का ही आवश्यक अंग उन ग्रन्थों का समुचित सम्पादन और प्रकाशन है। क्योंकि इस विषय में जो सौभाग्य बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य को प्राप्त हुआ, जैन साहित्य अधिकांश रूप में उससे वंचित ही रहा। अतएव वर्तमान युग की आवश्यकता है कि इस विशाल साहित्य का शीघ्र प्रकाशन किया जाय। यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण और अनेक विद्वानों और दाताओं की सहायता की अपेक्षा रखता है। अतएव कितने ही स्थानों से और कई योजनाओं के अन्तर्गत इसे पूरा करना होगा। कार्य इतना विशाल है कि इसमें सबके सहयोग की अपेक्षा है। साम्प्रदायिक संकीर्णता अथवा पारस्परिक स्पर्द्धा के लिए किसी प्रकार का अवसर न होना चाहिए। दिगम्बर साहित्य और श्वेताम्बर साहित्य दोनों ही भारतीय संस्कृति के अंग हैं दोनों की निजी मान्यताएँ हैं। अपनी अपनी विशेषताओं की रक्षा करते हुए दोनों का सम्पादन मान्य है। अतएव जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है मुझे इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन में

सभी के सहयोग की नितान्त आवश्यकता ज्ञात होती है। यह कार्य मन
प्रीतियुक्त भावों से पूरा करना चाहिए। जो लोग इस कार्य को अभी आग
न करेंगे वे कार्य क्षेत्र में उतने ही पिछड़े हुए रहेंगे।

वास्तविक निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो हम उस सारस्वत लोक
कामना करते हैं जहाँ ज्ञान के मन्दिर में सब प्रसन्न मन और उन्मुक्त भावों
एक दूसरे का स्वागत करते हुए सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं
ऐसी स्थिति में जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ये तीनों साहित्य अनमोल प्रतीत होंगे
और सत्य का जिज्ञासु चाहता है कि भारतीय संस्कृति के विषय में जहाँ से
जो रत्न प्राप्त हो उसका स्वागत करते हुए वह अपने भण्डार को समृद्ध बनाए

प्राचीन ज्ञान के समुत्कर्ष काल से जब विद्वान नवीन चिन्तन के
मार्गों का परिष्कार कर रहे थे उन दृष्टियों या मतों का बौद्ध साहित्य
ब्रह्मजाल सूत्र में, जैन साहित्य के सूत्रकृतांग में और महाभारत के शान्ति
में विलक्षण संकलन किया गया है तीन जगह तीन धाराओं से सुरक्षित
सामग्री पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सत्य के अन्वेषक
को रोमांचक प्रतीत होती है। तीनों में अत्यधिक पारस्परिक समानताएँ हैं
एक कड़ी जो एक जगह टूटी है वह अन्यत्र उपलब्ध हो जाती है और इस
तरह कई स्थानों से यत्नपूर्वक संग्रह करके हम सांस्कृतिक सामग्री का पूरा
ही बुनने में समर्थ हो जाते हैं। भारतीय इतिहास के दार्शनिक चिन्तन
यह युग यूनान के इसी प्रकार के चिन्तनात्मक युग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।
वस्तुतः यूनान और भारत में भी इस क्षेत्र में दार्शनिकों के विभिन्न मतों
पर्याप्त समानताएँ मिलेंगी। उपनिषदों के काल से बुद्ध और महावीर के
समय तक लगभग ३०० वर्षों का युग मानवी बुद्धि के चमत्कार का युग है।
जब पहली बार साहस करके मनुष्य ने वर्णों के माध्यम को छोड़कर अपनी बुद्धि
और अपने कर्म के बल को पहिचाना, किस प्रकार अनेक विचारकों ने इस
विषय में एक दूसरे से भिड़न्त की, कैसे उनके मतों के आपस में टकराने से
अन्त में कर्म की महिमा, बुद्धि की गरिमा, और मानवों के प्रति करुणा और
सहानुभूति का त्रिमूर्ती रूपक बोध निकला। इसकी कथा अत्यन्त रोमांच
कारिणी है। उसके उद्धार के लिए समस्त भारतीय साहित्य में मन्थन आलोडन
और अनुशीलन का यज्ञ मन के अदम्य उत्साह से करना चाहिए। इसी
दृष्टि से जैन साहित्य के अनुशीलन की प्रेरणा बार बार हमारे मन में आती है।
अब समय आ गया है जब इस महत् कार्य का सूत्रपात होना चाहिए।

जैन साहित्य का नवीन संस्करण

अध्यापक वाल्टर शुब्रिंग

पाली टैक्स्ट सोसायटी ने अनेक भागों में त्रिपिटका का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया है। उनके आधार पर भारतेतर-देशों के विद्वान प्राचीन बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को सरलता से समझ सकते हैं। किन्तु महावीर के उपदेशों के लिए यह सुविधा नहीं है। इसके कई कारण हैं। अभी तक जैन टैक्स्ट सोसायटी के रूप में ऐसी कोई संस्था नहीं बनी है जिसकी आवश्यकता प्रोफेसर पिशल ने १९०३ में बताई थी। आगमों के सम्बन्ध में विद्वानों ने जो कार्य किया है उसके पीछे कोई निश्चित योजना नहीं है। अकस्मात जो जिसके जँच गया, कर डाला। प्रोफेसर ग्लासनप, गेरिनोल, किरफेल तथा दूसरे विद्वानों ने उत्तरकालीन साहित्य के आधार पर जैनधर्म का सुन्दर परिचय दिया है किन्तु उनमें प्राचीन मूलग्रन्थों का स्पर्श नहीं किया गया। इसका एक खास कारण था।

प्राचीन बौद्धधर्म की अपेक्षा महावीर के सिद्धान्त में एकरूपता कहीं अधिक है। जिस विशाल रूप में उसकी योजना हुई और सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों द्वारा उसे पूर्ण एवं सुसंगत बनाया गया, उसे देखकर आश्चर्य होता है। इसप्रकार का सिद्धान्त, जिसका निर्माण बुद्धिपूर्वक अनुभव तथा कल्पना के आधार पर होता है सदियाँ बीत जाने पर भी उसमें परिवर्तन की सम्भावना कम रहती है। वह प्राय: ऐसा ही रहता है जैसा जन्मकाल में था। आगमोत्तर कालीन विशाल साहित्य इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि बाह्य बातों में थोड़ा बहुत फेरफार हुआ है किन्तु मूल तत्त्व अभी तक वैसे ही हैं। इसीलिए ऊपर बताए गए विद्वानों ने उत्तरकालीन साहित्य को, जो सुलभ था, अपना आधार बनाया। किन्तु यह स्पष्ट है कि भारतीय पुरातत्त्व वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। किसी विशाल भवन के निर्माण पर विचार करते समय केवल ऊपरी चिनाई की योजना बना लेने से काम नहीं चलता। उसके लिए गहरी नींव खोदनी होगी और फिर क्रमशः एक ईट पर दूसरी ईट रखनी होगी।

इसका अर्थ है सर्वप्रथम मूल आगमों का प्रामाणिक एवं आलोचनात्मक संस्करण निकालना। आगम शब्द को व्यापक अर्थ में लिया जाय तो उनके

अन्धकार स्थलों का भेदन होने से कुछ ऐसा लगेगा कि हमारा सब कुछ गया पर उसमें चित्र हलका ही होगा और संशोधन का क्षेत्र आचार और विचार की पुनीत ज्योति से मानवता के विकास में सहायक होगा।

संशोधन के क्षेत्र में हमें पूर्वग्रहों से मुक्त होकर जो भी विरोध या अवरोध दृष्टिगोचर हों उन्हें प्रामाणिकता के साथ विचारक जगत के सामने रखना चाहिये। किसी संदिग्ध स्थल को खींच कर किसी पक्ष विशेष के साथ मेल बटाने की वृत्ति संशोधन के दायरे को संकुचित कर देती है। संशोधक के पवित्र विचारपूत स्थान पर बैठकर हमें उन सभी साधनों की प्रामाणिकता की जांच कठोरता से करनी होगी जिनके आधार से हम किसी सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। पट्टावली, शिलालेख, ताम्रपत्र, ताड़पत्र, ग्रन्थों के उल्लेख आदि सभी साधनों पर संशोधक पहिले विचार करेगा। कपड़ा काटने के पहिले गज को नाप लेना बुद्धिमानी की बात है।

जैन संस्कृति का पर्यवसान चारित्र में है। विचार तो वहीं तक उपयोगी हैं जहाँ तक वे चारित्र का पोषण और उसे भाव प्रधान रखने में सहायक होते हैं। चारित्र अर्थात् ऐसी आचार परम्परा जो प्राणिमात्र में समता और वीतरागता का वातावरण बनाकर अहिंसा की मौलिक प्रतिष्ठा कर सके। व्यक्ति की निराकुलता और अहिंसक समाज रचना के द्वारा विश्व शान्ति की ओर बढ़ाव। इस सांस्कृतिक दृष्टिकोण से हमें अपने अवान्तर सम्प्रदायों की अब तक की धाराओं को जांचना परखना होगा और आदर्श की उस ऊपर मूल विचारों को देखना होगा जो निर्ग्रन्थ परम्परा की रीढ़ है। भले ही उनका व्यवहार मनुष्य के जीवन में अंशतः ही हो पर आदर्श तो अपनी ऊँचाई के कारण आदर्श ही होगा। व्यवहार उसकी दिशा में होकर चले तो सफल है। इस मूल सांस्कृतिक दृष्टिकोण की रक्षा जिस समय जहाँ तक हुई, उस काल का कार्य वहीं उपादेयकारी का है। अब संशोधन तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब वह अपनी सांस्कृतिक भूमि पर बैठकर विचार ज्योति को जगावे। हमें श्रमण साहित्य में से उन सिद्धान्त ग्रन्थों को सामने रखना ही होगा जिनने इस पवित्र दृष्टिकोण को पोषित किया है और उनके वाक्यों पर समुचित प्रकाश भी डालना ही होगा। अब संशोधक संस्थाएँ सभी अपनी सांस्कृतिक चेतना को जगाने की दिशा में अग्रसर बन सकती हैं।

असाम्प्रदायिक जैन साहित्य

डॉ० पी० एल० वैद्य०

जैन परम्परा ने भारतीय साहित्य में अत्यन्त महत्त्व का और मौलिक योगदान दिया है। इसमें का कुछ भाग प्रकाशित हुआ है तो कुछ अभी भी अप्रकाशित है। और कितना ही अज्ञात और असंशोधित भाग हस्तलिखित रूप में अभी भी विभिन्न भाण्डारों में पड़ा है। जब विद्वानों ने उसकी कोई सुधि नहीं ली है, इसलिए उसका नाश भी हो जाना सम्भव है। इस साहित्य का स्वरूप विविध है और वह विविध भाषाओं में लिखा हुआ है। एकदम प्राचीन साहित्य अर्धमागधी की प्राकृत भाषा में है। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आगम इसी भाषा में लिखे हुए हैं। आगम ग्रन्थों में कहा गया है कि महावीर ने अपने उपदेश भी उसी भाषा में दिये। इनमें से कुछ पर प्राकृत भाषा में ही 'निर्युक्ति' नाम से प्रसिद्ध पद्यमय टीका है, संस्कृत प्राकृत मिश्र भाषा में 'चूर्णि' नाम के विवरण हैं, और शीलांक, अभयदेव, मलयगिरि आदि प्राचीन आचार्यों की संस्कृत भाषा में लिखी हुई टीकाएँ भी हैं। 'टब्बा' नाम से परिचिति में आने वाले प्राचीन गुजराती हिन्दी राजस्थानी मिश्र भाषा में लिखे हुए भाषांतर भी उपलब्ध हैं। इन सबके अतिरिक्त आगम ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों पर प्राकृत, संस्कृत, पुरानी गुजराती पुरानी हिन्दी, प्राचीन कन्नड़, अपभ्रंश आदि भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य भी विशाल मात्रा में है। इस सब साहित्य का एक व्याख्यान में विहगावलोकन भी असम्भव है। प्रो० विन्टरनिट्ज द्वारा लिखा हुआ प्राचीन जैन साहित्य का इतिहास प्रसिद्ध ही है। उस इतिहास को यहाँ व्याख्यान में दोहराना श्रोताओं का मन उबा देगा। इसलिए मैं उस इतिहास को यहाँ नहीं कहूँगा, मने उसके स्थान पर उस साहित्य में से कुछ ऐसे प्रश्न लेकर यहाँ विचार करना सोचा है जो भाषा साहित्य के अध्ययन करने वालों को प्रिय और मनोरंजक लगें। मुख्यतया मुझे यह बात बतानी है कि देश-भाषाओं की वृद्धि में जैन साहित्य अत्यंत उपकारक रहा है।

१—श्वेताम्बर जैनों के आगम ग्रन्थ

वर्तमान जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर ने अपने उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिए। यह अर्धमागधी प्राकृत मगध देश के एक भाग में प्रचलित थी। इस भाषा का वर्तमान स्वरूप मुख्य प्राकृत में मागधी प्राकृत के मिश्रण से बनी एक प्रादेशिक भाषा है। यह भाषा उस समय सबकी समझ में आनेवाली देशभाषा थी। प्राकृत सभी जनों की समझ में आने जैसी भाषा थी, उसमें मागधी भाषा का थोड़ा विशेष मिश्रण करें तो जो भाषा बनती है उसे समझने में इतर प्रान्त के लोगों को बहुत अड़चन न होगी। अर्धमागधी भाषा इसी प्रकार की है। धर्म-संस्थापकों को अपने धर्म का प्रसार करना हो तो उन्हें लोकभाषा का ही आश्रय लेना चाहिए। जैन और बौद्ध धर्मों के संस्थापक यह बात जानते थे। इसी लिए उन दोनों ने लोक भाषा का आश्रय लिया, दोनों धर्मों के ग्रन्थों में इस बात के प्रमाण पुराने हैं।

महावीर ने अपने जीवन काल में जो धर्मोपदेश किए और उनके शिष्यों ने स्मरण द्वारा जिनका संग्रह किया उन्हें 'निग्गन्थ पावयण [संस्कृत 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'] नाम दिया हुआ मिलता है। उस काल में लेखन-कला का प्रचार न होने से इस प्रकार के उपदेश मुखोद्गत कर लेना ही उनके रक्षण का उस समय का उपाय था। महावीर ने अपने दीर्घ जीवनकाल में ये उपदेश अनेक स्थानों पर किए और उनके ग्यारह पट्टधर शिष्यों अर्थात् गणधरों ने मुखोद्गत किए। इन ग्यारह शिष्यों में से पाँचवें शिष्य सुधर्म स्वामी ने मुखोद्गत किए हुए महावीर के धर्मोपदेश अपने जम्बू नामक शिष्य को सुनाए, फिर अनेक शतकों बाद वे लिपिबद्ध हुए। यह संसार में श्वेताम्बर जैनों के आगमों का इतिहास है। महावीर के ये धर्मोपदेश वेदों के समान शब्द प्रधान न होकर अर्थ प्रधान होने के कारण, आज उपलब्ध होनेवाले आगमों में स्वयं महावीर के मुख से निकले शब्द कितने होंगे यह कहना कठिन है, तो भी इतना सिद्ध किया जा सकता है कि उस उपदेश की विचार-पद्धति अथवा उसके अर्थ का उद्गम महावीर तक जा पहुँचता है। महावीर के ये धर्मोपदेश शिष्य-परम्परा द्वारा अनेकों शतक चले, और ईस्वी सन् की पाँचवीं शती में देवर्धिगणि ने मथुरा में उनका स्वरूप निश्चय कराके उन्हें लिपिबद्ध कर डाला। आज हमारे सामने श्वेताम्बर जैनों के जो आगम-ग्रन्थ हैं

उनका स्वरूप वीर निर्वाण के लगभग हजार वर्ष बाद निश्चित किया हुआ है। इन आगमों में ऐसे उल्लेख भी मिलते है कि इन हजार वर्षों की दीर्घ अवधि में वे मूल उपदेश जैसे के तैसे नहीं रहे, उनमें का बहुत कुछ भाग लुप्त हो गया। उदाहरण के लिए, आचारांगसूत्र के 'महापरिज्ञा' नामक सातवें अध्ययन के लुप्त होने का उल्लेख उसी पुस्तक में है। इससे प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर जैनों के आगमों में अपूर्ण भाग है। इसी प्रकार "दृष्टिवाद" नाम का बारहवाँ अंग (पुस्तक) तथा चौदह पूर्व (प्राचीन ग्रन्थ) भी लुप्त हो गये। मेरा मत है कि श्वेताम्बरों के आगम का कुछ भाग लुप्त हो जाने के ये उल्लेख अत्यन्त प्रामाणिक हैं। इसका अर्थ यह है कि आगम ग्रन्थों का शेष भाग अत्यन्त प्राचीन काल से शिष्य-परम्परा द्वारा चला आया है। इसमें कुछ नये भाग आ गये है। कुछ ग्रन्थों में आगमों के विभिन्न भागों में बिखरे हुए महत्त्व के विषयों का संग्रह किया हुआ मिलता है। शय्यंभवाचार्य ने अपने अल्पायुषी मणक नामक पुत्र के लिए जो 'दशवैकालिक सूत्र' लिखा वह इसी प्रकार का एक संग्रह-ग्रन्थ है और आज उसे आगम ग्रन्थों में महत्त्व का स्थान प्राप्त है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' भी नये-पुराने विशृंखलित प्रकरणों का एक संग्रह ही है।

श्वेताम्बरों में मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दो उपभेद है, उनमें मूर्तिपूजक श्वेताम्बरों के मत से आगम ग्रन्थों की संख्या ४५ है और स्थानकवासियों के मत से केवल ३२ प्रमाणभूत है। ये ४५ आगम ग्रन्थ वर्गानुसार इस प्रकार है: आचारांग आदि ११ अंग, औपपातिक आदि १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र, और नन्दीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र नामक दो पुस्तकें जो ऊपर के किसी भी वर्ग में नहीं आतीं। इनमें के सभी ग्रन्थ ज्यों के त्यों महावीर के मुख से निकले हुए नहीं, तो भी यह कहा जा सकता है कि उनमें उनके उपदेशों के सार संगृहीत है। आचारांगसूत्र का पहिला श्रुतस्कन्ध बहुत पुराने भागों में से दीखता है। उत्तराध्ययन सूत्र भी काफ़ी पुराना भाग है। स्थानांग और समवायांग ग्रन्थ बहुत काल बाद आये लगते हैं। दशवैकालिकसूत्र नामक पुस्तक संग्रह रूप है, उसके रचयिता महावीर की शिष्य-परंपरा में पाँचवीं पीढ़ी के शय्यंभवाचार्य है। नंदीसूत्र और दशाश्रुतस्कंध एवं कल्पसूत्र में महावीर की शिष्य-परंपरा दी हुई है, इसलिए ये दोनों ग्रन्थ उस हिसाब से अर्वाचीन ही ठहरेंगे। दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग, जो नष्ट (लुप्त) हो गया है, उसकी विषया

हमें तो यह बात अयोग्य लगती है। इसलिए हमारे मत से दिगम्बर श्वेताम्बरी आगम ग्रन्थों में की 'ज्ञाताधर्म कथा' नामक पुस्तक दिगम्बर की उसी नाम की पुस्तक जैसी प्रमाणभूत मानने में कोई अड़चन नहीं दीखती। और जिस अर्थ में एक बड़ी पुस्तक के विषय प्रतिपादन में इतना साम्य रह जाता है तो अन्य पुस्तकों में भी ऐसा ही साम्य होना चाहिए, ऐसा अनुमान निकालने में कोई दोष नहीं।

अब एक और भिन्न प्रकार का उदाहरण लें, अंग-ग्रन्थों की सूची में दृष्टिवाद नाम की पुस्तक दोनों सम्प्रदायों को बारहवाँ अंग करके मान्य है। श्वेताम्बरी सम्प्रदाय में इस पुस्तक के नष्ट हो जाने की धारणा प्राय: शतकों से प्रचलित है। देवर्धिगणी द्वारा निश्चित किए हुए श्वेताम्बर अंग ग्रंथ में तो "सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाई अहिज्जइ" अर्थात् उसने सामायिक अर्थात् आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया' ऐसा उल्लेख बार बार आता है, और अनेक बार तो वर्णन के आवेग में कितने ही प्राचीन काल के साधुओं के विषय में ऊपर निश्चित किए हुए रीति का वर्णन (निश्चित प्रकार का वर्णन) काल विपर्यास-दोष (anachronism) मान कर भी किया हुआ मिलता है। यदि दोनों सम्प्रदायों में 'दृष्टिवाद' नामक ग्रंथ के नष्ट हो जाने की धारणा कितनी ही शतकों से रूढ़ है तो उस ग्रंथ के विषय की विस्तृत सूची तो दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों में पायी ही जाती है। श्वेताम्बर पंथ के समवायांगसूत्र और नन्दीसूत्र में यह विषयानुक्रमणिका दी है और दिगम्बर मत के 'षट्खण्डागम' पर की 'धवला' टीका में भी यह दी है। इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों के मत से नष्ट हो गए १४ पूर्व ग्रन्थों में वर्णित हुए भी उपयुक्त स्थानों में मिलती है। प्रा० डॉ० हीरालाल जैन ने इन दोनों सम्प्रदायों की विषयानुक्रमणिका की तुलना अपने सम्पादित 'षट्खण्डागम' के दूसरे विभाग की प्रस्तावना में खूब विस्तार से की है (देखिए प्रस्तावना पृष्ठ ४१-६८)। हमारा यह कहना नहीं कि ये दोनों विषयानुक्रमणिकाएँ सर्वथा एक रूप हैं पर इतना तक भी कहे बिना नहीं रहा जाता कि उनमें बहुत ही साम्य है और इसलिए एक का दूसरे सम्प्रदाय के ग्रंथ को अप्रमाण मानना योग्य नहीं।

इसी विषय पर एक अन्य प्रकार से भी विचार किया जा सकता है। जैन के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में मतभेद के कुछ विषय-अन्तर हैं, यह हमें स्वीकार है पर निश्चित रूप से वे इतने महत्व के नहीं कि वे

मतभेद तात्त्विक हो जाएँ और उनके परिणाम व्यवहार में अथवा श्रावका के दैनंदिन आचरण में उतर आए। जिन विषयों में दोनों पन्थ सम्मत है उनकी संख्या बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए साधुओं के महाव्रत, श्रावकों के अणुव्रत, स्याद्वाद अथवा सप्त भंगी-नय, पदार्थ, नवतत्त्व आदि अनेक विषयों पर दोनों सम्प्रदायों के मत एक ही प्रकार के है। उमास्वामी के 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' के समान कुछ ग्रन्थ भी हैं जो दोनों पन्थों को एक जैसे मान्य है और जिन पर दोनों पन्थों के आचार्यों ने भाष्य-टीका आदि लिखें हैं। पाठ भेद अथवा साम्प्रदायिक मतभेद के कुछ प्रसंग छोड़कर इस ग्रन्थ की संहिता दोनों सम्प्रदायों को मान्य ही है। इस तत्त्वार्थसूत्र में श्वेताम्बरों के आगमों का कितना प्रतिबिंब पड़ा है यह जानने के लिए स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनि उपाध्याय आत्माराम जी की अत्यन्त परिश्रम द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'तत्वार्थसूत्र—जैनागम समन्वय' देखें। इस पुस्तक पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्वार्थसूत्र के अधिष्ठान सर्वथा आगमग्रन्थों पर हुए हैं और उसमें के प्रत्येक सूत्र का श्वेताम्बर सम्प्रदाय के वर्तमान आगमों में आधार है। यदि तत्त्वार्थ सूत्र यह दोनों सम्प्रदायों को मान्य है और उसके प्रत्येक सूत्र का यदि श्वेतांबर आगमों में आधार मिल जाता है तो हमारी समझ में नहीं आता कि श्वेताम्बरों के आगम फिर भी दिगम्बर क्यों अप्रमाण मानते है। साम्प्रदायिक आग्रह के अतिरिक्त इसके यदि कुछ और कारण हों तो हों, पर यह आग्रह जितना ही जल्दी छोड़दें उतना ही समाज का हित साधन होगा।

दिगम्बर जैन समाज की ओर से श्वेताम्बरों के आगमों का प्रामाण्य अस्वीकार करने के जो कारण उपस्थित किए जाते है उनमें से कुछ का विवेचन ऊपर किया ही है। परन्तु उनके मत से इसका एक और भी कारण होने की सम्भावना है। वह कारण है श्वेताम्बरों के आगमों में दिगम्बरों के मान्य सिद्धान्तों के विरुद्ध उल्लेख। मेरे मत से यह कारण निरा आधारहीन है। क्योंकि एक तो दिगम्बर समाज के पण्डितों ने इस प्रकार से श्वेताम्बरों के आगमों का संशोधन और परिशीलन नहीं किया, और इस प्रकार के संशोधन से दिगम्बर सम्प्रदाय के विरुद्ध कुछ विषय प्रतिपादन यदि मिल भी तो वह मात्र कुछ विषय समय का ही होगा। दिगम्बरों को निरुत्तर कर देने वाले भरपूर पुरावे (प्रमाण) 'तत्त्वार्थसूत्र—जैनागमसमन्वय' पर उल्लेखित ग्रन्थों में मिल जाते हैं। अस्तु।

दिगम्बरों के मत से यद्यपि उनके आगम नष्ट हो गये पर उनके प्रतिपाद्य

विषय शिष्य-परम्परा द्वारा बराबर चलते चले आये और उन विषयों पर विभिन्न आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। वही ग्रन्थ आज उनके लिए प्रा... जैसे प्रमाणभूत हुए, इतना ही नहीं बल्कि उनका 'चार वेद' रूप भी प्र... में आया। ये चार वेद हैं —

(१) प्रथमानुयोग—इसमें ऐतिहासिक कथा, महापुराण और पुराणों का समावेश है। जिस ग्रन्थ में २४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्ती, और ९-९ बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इन ६३ महापुरुषों का वर्णन आता है उन्हें 'महापुराण' और जिनमें इनमें से एकाध का ही वर्णन रहता है उन्हें 'पुराण' कहते हैं। ... ग्रन्थकारों के ऐसे महापुराण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, गुजराती ... भाषाओं में लिखे हुए प्रसिद्ध हैं।

(२) करणानुयोग—यह दूसरा वेद है। इसमें गणित का वर्णन प्रधान है। श्वेताम्बरों के चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों की तरह दिगम्बर ... के भी ग्रन्थ हैं। उनका नाम त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार आदि है। करणानुयोग में इन्हीं ग्रन्थों का अन्तर्भाव होता है।

(३) द्रव्यानुयोग—यह तीसरा वेद है। इस विभाग में जब तत्त्वज्ञान और तर्कशास्त्र होने से प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थ अन्तर्भूत हैं।

(४) चरणानुयोग—यह चौथा वेद है। इस विभाग में मुनि और श्रावक के आचरण संबन्धी नियम आते हैं। आचार्य वट्टकेर (वट्टेरक) की लिखी हुई मूलाचार अथवा आचारसूत्र तथा इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें इस विभाग में आती हैं।

आगमों के सम्पादन में कुछ विचारणीय प्रश्न

पं० बेचरदास जी

[पं० बेचरदास जी प्राकृत भाषा एवं आगम साहित्य के पारदर्शी विद्वान हैं। उनका सारा जीवन इसी साधना में व्यतीत हुआ है। इस समय जैन समाज में आगमों के आधुनिक संस्करण प्रकाशित करने की प्रवृत्तियाँ कई संस्थाओं की ओर से चल रही हैं। स्थानीय जैन साहित्य निर्माण योजना में आगमों के इतिहास का भाग पण्डित जी को सौंपा गया है। उन्होंने आगम साहित्य से संबंध रखने वाले कुछ मुद्दों के रूप में ८७ विषय भेजे हैं। आशा है आगमों पर लिखने वाले उन से लाभ उठाएँगे। —सम्पादक]

आगमिक साहित्य के इतिहास के विषय में कुछ मुद्दे—

१—जिनशासन के उत्थान की भूमिका और आगम साहित्य।

२—आगमों में संकलित भगवान महावीर की देशनाएँ।

३—आगमों में सूचित भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की देशनाओं का वर्गीकरण।

४—आगमों में निर्दिष्ट भगवान महावीर तथा तत्कालीन अन्य धर्म तीर्थङ्कर।

५—आगमों के मूलस्रोत का उद्गम स्थान।

६—गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाओं का अर्थ।

७—श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु, स्कन्दिल, नागार्जुन तथा देवर्द्धिगणि की वाचनाएँ।

८—माथुरी तथा वलभी वाचना के बीच का भेद।

९—चौदह पूर्वों का वृत्तान्त। उनके नाम, चर्चित विषय तथा आकार

१०—अंग तथा अंगबाह्य की व्यवस्था का आधार। यह व्यवस्था सर्वप्रथम किसने की?

११—अंग तथा उपांगों की व्यवस्था का प्राचीन आधार तथा दोनों के परस्पर संबंध का औचित्य।

१२—आगमों का नामकरण।

विषय शिष्य-परम्परा द्वारा बराबर चलते चले आये और जब जिनसे विभिन्न आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। यही ग्रन्थ आज उनके लिए उन्हें जसे प्रमाणभूत हुए, इतना ही नहीं बल्कि उनका 'चार वेद' रूप भी प्रसिद्धि में आया। ये चार वेद ह —

(१) प्रथमानुयोग—इसमें ऐतिहासिक कथा, महापुराण और पुराणों का समावेश है। जिस ग्रन्थ में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, और ९-९ बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इन ६३ महापुरुषों का वर्णन आता है उन्हें 'महापुराण' और जिनमें इनमें से एकाध का ही वर्णन रहता है उन्हें 'पुराण' कहते हैं। इन ग्रन्थकारों के ऐसे महापुराण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड, गुजराती आदि भाषाओं में लिखे हुए प्रसिद्ध हैं।

(२) करणानुयोग—यह दूसरा वेद है। इसमें गणित का वर्णन आता है। श्वेताम्बरों के चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय के भी ग्रन्थ ह। उनका नाम त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार आदि है। करणानुयोग में इन्हीं ग्रन्थों का अन्तर्भाव होता ह।

(३) द्रव्यानुयोग—यह तीसरा वेद ह। इस विभाग में अंग तत्त्वज्ञान और तर्कशास्त्र होने से प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थ अन्तर्भूत हैं।

(४) चरणानुयोग—यह चौथा वेद है। इस विभाग में यति और श्रावक के आचरण संबन्धी नियम आते ह। आचार्य वट्टकेर(वट्टकेर) की लिखी हुई मूलाचार अथवा आचारसूत्र तथा इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें इस विभाग में आती ह।

७५—आगमों में भगवान महावीर के विशेषण, भगवान महावीर के भिन्न भिन्न नाम ।

७६—भगवान महावीर के लिए प्रयुक्त सर्वज्ञ विशेषण तथा वैदिक एवं बौद्ध परम्परा में जिस किसी के लिए प्रयुक्त सर्वज्ञ विशेषण ।

७७—आगम नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत हैं, इस प्रकार कहने में क्या अपौरुषेयवाद का प्रभाव नहीं है ।

७८—आगम तथा अनेकान्तवाद, आगमों में अनेकान्तवाद का साक्षात निर्देश ।

७९—आगमों में नय तथा निक्षेप की चर्चा ।

८०—आगमों में निह्नवों की चर्चा ।

८१—आगमों का समय तथा उनकी रचना का कालक्रम ।

८२—गोशालक का वृत्तांत । इसीसे संबंध रखने वाला बौद्धसाहित्य तथा बौद्ध परम्परा का मस्करी शब्द क्या सूचित करता है ?

८३—आगमों में वर्णित भगवान महावीर का मानव स्वभाव ।

८४—आगमों में वर्णित श्री ऋषभ आदि तीर्थंकरों का परिचय ।

८५—वेद, उपनिषद तथा मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रंथों में तथा बौद्ध ग्रंथों में जैन तीर्थङ्करों का नाम निर्देश ।

[पृष्ठ १८ का शेष]

को महावीर की वाणी तथा धर्म से परिचित करना धर्म की सबसे बड़ी सेवा है। यदि ये उन प्रतियों की सूची बनाने तथा उनका फोटो उतारने की अनुमति दे देते है तो इसमें उनको किसी प्रकार की आर्थिक हानि नहीं उठानी पड़ती। इस विशाल एवं महत्वपूर्ण कार्य के लिए किस प्रकार कदम उठाया जाय तथा निश्चित रूप कैसे तैयार किया जाय इत्यादि बातों के लिए मेरे मन में जो कल्पनाएँ है उनके लिए यह स्थान नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसप्रकार का सर्वोपयोगी कार्य अनिवार्य है।

की परम्परा केवल १८३ वर्ष रही। श्वेताम्बर परम्परानुसार यह परम्परा ४१४ वर्ष तक चलती रही।

वज्र के बाद आर्यरक्षित थे। वे ९ पूर्व सम्पूर्ण और दसवें पूर्व के २४ यविक जानते थे। ज्ञान का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया। आर्यरक्षित के शिष्यों में केवल दुर्बलिका पुष्यमित्र नौ पूर्व सीख सके किन्तु वे भी अनभ्यास के कारण नवम पूर्व को भूल गए। वीर निर्वाण के एक हजार वर्ष पश्चात् पूर्वों का ज्ञान सर्वथा लुप्त हो गया। दिगम्बर मान्यतानुसार यह स्थिति वीरनिर्वाण के ६८३ वर्ष पश्चात् हो गई।

पूर्वाश्रित साहित्य—पूर्वों के लुप्त हो जाने पर भी उनके आधार पर बना हुआ या उनमें से उद्धृत साहित्य अब भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इस प्रकार के साहित्य को निर्यूहित (प्रा० णिज्जूहिय) कहा गया है। इस प्रकार के ग्रन्थों के कुछ नाम निम्नलिखित हैं—

ग्रन्थ का नाम	पूर्व का नाम
१ उवसग्गहरथोत्त	अज्ञात
२ ओहणिज्जुत्ति	पच्चक्खाणप्पवाय
३ कम्मपयडी	कम्मप्पवाय
४ प्रतिष्ठाकल्प	विज्जप्पवाय
५ स्थापनाकल्प	पच्चक्खाणप्पवाय
*६ सिद्धप्राभृत	अग्गाणीय
७ पज्जोयाकप्प	पच्चक्खाणप्पवाय
८ धम्मपण्णत्ति	आयप्पवाय
९ पिंडेसणा	कम्मप्पवाय
१० वक्कसुद्धि	सच्चप्पवाय
११ दशवैकालिक के दूसरे अध्ययन	पच्चक्खाणप्पवाय
१२ परिसहज्झयण	कम्मप्पवाय
१३ पंचकप्प	अज्ञात
१४ दशाश्रुतस्कन्ध कल्प व्यवहार	पच्चक्खाणप्पवाय
१५ महाकप्प	अज्ञात
१६ निशीथ	पच्चक्खाणप्पवाय
१७ नयचक्र	नाणप्पवाय
१८ सयग	अज्ञात

संस्कृत भाषा में होना तथा उनका मत मतान्तरों के खण्डन मण्डन के हाथ रखना ही उनके लोप का कारण हुआ।

श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार अन्तिम श्रु केवली भद्रबाहु स्वामी थे।

वीर निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र में लम्बे समय का दु पड़ा। भिक्षु संघ तितर बितर हो गया। आगमों का ज्ञान भी छिन्न भि हो गया। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर जब भिक्षु फिर एकत्र हुए तो उन्हों परस्पर पूछ कर ११ अंगों को व्यवस्थित किया किन्तु बारहवें अंग दृष्टि को जानने वाला कोई न मिला। उस समय भद्रबाहु बारह वर्ष के लि नेपाल में योग साधना के लिए गए हुए थे। संघ ने पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्थूलभद्र तथा दूसरे मुनियों को उनके पास भेजा। उन से केवल स्थूलभद्र ही उस ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हुए। वे भी पू रूप से नहीं। दस पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने [illegible] प्रयोग किया। भद्रबाहु को इसका पता चल गया और उन्होंने आगे प बन्द कर दिया। स्थूलभद्र के बहुत प्रार्थना करने पर वे राजी हुए। कि शेष चार पूर्वों की केवल शब्द वाचना दी। अर्थ नहीं समझाया। ही वाचना दी किन्तु अनुज्ञा नहीं दी। उन पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे अन्तिम चार पूर्वों का ज्ञान किसी और को न दें।

भद्रबाहु की मृत्यु वीरनिर्वाण के १७० वर्ष पश्चात् हुई। उसी स चतुर्दश पूर्वधर या श्रुतकेवली का लोप हो गया। दिगम्बर मान्यतानु यह लोप वीरनिर्वाण के १६२ वर्ष बाद माना जाता है। इस प्रकार दो में ८ वर्ष का अन्तर है।

आचार्य भद्रबाहु के बाद दस पूर्वधरों की परम्परा चली। उसका अ आर्यवज्र के साथ हुआ। उनकी मृत्यु वीरनिर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात् अर्थात् ११४ वि० में हुई। दिगम्बर मान्यतानुसार अन्तिम दशपूर्वधर धर्मसेन हुए और उनकी मृत्यु वीरनिर्वाण के ३४५ वर्ष पश्चात् हो गई। श्रुतकेवली के संबंध में श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओं में विशेष भेद नहीं है। दोनों की मान्यताओं में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। समय में भी केवल ८ वर्ष का अन्तर था। इसका अर्थ यह है कि उस समय तक दोनों परम्पराएं प्रायः एक थीं। किन्तु दशपूर्वधर के विषय में नाम का भेद है और समय में भी २३९ वर्ष का भेद है। दिगम्बर मान्यतानुसार भद्रबाहु के बाद दस पूर्वधर

जैन पुराण साहित्य

पं० फूलचन्द्र शास्त्री

भारतीय धर्मग्रंथों में पुराण शब्द का प्रयोग इतिहास के साथ आता है। कितने ही लोगों ने इतिहास और पुराण को पञ्चम वेद माना है। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास की गणना अथर्ववेद में की है और इतिहास में इतिवृत्त, पुराण, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इतिहास और पुराण दोनों ही विभिन्न हैं, इतिवृत्त का उल्लेख समान होने पर भी दोनों अपनी अपनी विशेषता रखते हैं। कोषकारों ने पुराण का लक्षण निम्न प्रकार माना है—

'सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥'

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशपरम्पराओं का वर्णन हो, वह पुराण है। सर्ग प्रतिसर्ग आदि पुराण के पाँच लक्षण हैं।

इतिवृत्त केवल घटित घटनाओं का उल्लेख करता है परन्तु पुराण महापुरुषों की घटित घटनाओं का उल्लेख करता हुआ उनसे प्राप्य फलाफल पुण्य-पाप का भी वर्णन करता है तथा साथ ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण की अपेक्षा बीच बीच में नैतिक और धार्मिक भावनाओं का प्रदर्शन भी करता है। इतिवृत्त में केवल वर्तमानकालिक घटनाओं का उल्लेख रहता है परन्तु पुराण में नायक के अतीत अनागत भावों का भी उल्लेख रहता है और वह इसलिये कि जनसाधारण समझ सके कि महापुरुष कैसे बना जा सकता है। अवनत से उन्नत होने के लिए क्या क्या त्याग और तपस्याएं करनी पड़ती हैं? मनुष्य के जीवन निर्माण में पुराण का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि उसमें जन साधारण की श्रद्धा आज भी यथापूर्व अक्षुण्ण है।

जैनेतर समाज का पुराण साहित्य बहुत विस्तृत है। वहाँ १८ पुराण माने गए हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—१ मत्स्य पुराण, २ मार्कण्डेय पुराण, ३ भागवत पुराण, ४ भविष्य पुराण ५ ब्रह्माण्ड पुराण, ६ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ७ ब्राह्म पुराण, ८ वामन पुराण, ९ वराह पुराण, १० विष्णु पुराण ११ वायु

जैन पुराण साहित्य

पं० फूलचन्द्र शास्त्री

भारतीय धर्मग्रंथों में पुराण शब्द का प्रयोग इतिहास के साथ आता है। कितने ही लोगों ने इतिहास और पुराण को पञ्चम वेद माना है। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास की गणना अथर्ववेद में की है और इतिहास में इतिवृत्त, पुराण, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इतिहास और पुराण दोनों ही विभिन्न हैं, इतिवृत्त का उल्लेख समान होने पर भी दोनों अपनी अपनी विशेषता रखते हैं। कोषकारों ने पुराण का लक्षण निम्न प्रकार माना है—

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चेव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥'

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशपरम्पराओं का वर्णन हो, वह पुराण है। सर्ग प्रतिसर्ग आदि पुराण के पाँच लक्षण हैं।

इतिवृत्त केवल घटित घटनाओं का उल्लेख करता है परन्तु पुराण महापुरुषों की घटित घटनाओं का उल्लेख करता हुआ उनसे प्राप्य फलाफल पुण्य-पाप का भी वर्णन करता है तथा साथ ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण की अपेक्षा बीच बीच में नैतिक और धार्मिक भावनाओं का प्रदर्शन भी करता है। इतिवृत्त में केवल वर्तमानकालिक घटनाओं का उल्लेख रहता है परन्तु पुराण में नायक के अतीत अनागत भावों का भी उल्लेख रहता है और वह इसलिये कि जनसाधारण समझ सके कि महापुरुष कैसे बना जा सकता है। अवनत से उन्नत होने के लिए क्या क्या त्याग और तपस्याएं करनी पड़ती हैं? मनुष्य के जीवन निर्माण में पुराण का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि उसमें जन साधारण की श्रद्धा आज भी यथापूर्व अक्षुण्ण है।

जैनेतर समाज का पुराण साहित्य बहुत विस्तृत है। वहाँ १८ पुराण माने गए हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—१ मत्स्य पुराण, २ मार्कण्डेय पुराण, ३ भागवत पुराण, ४ भविष्य पुराण, ५ ब्रह्माण्ड पुराण, ६ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ७ ब्राह्म पुराण, ८ वामन पुराण, ९ वराह पुराण, १० विष्णु पुराण, ११ वायु

ग्रंथ का नाम	पूर्व का नाम
१९ पचसग्रह	अज्ञात
२० सत्तरिया (कर्मग्रन्थ)	कम्मप्पवाय
२१ महाकर्मप्रकृति प्राभृत	"
२२ कषायप्राभृत	अग्गायणीय
२३ जीवसमास	अज्ञात

दिगम्बरों में आगम रूप से माने जाने वाले षट्खण्डागम और कषाय प्राभृत भी पूर्वो से उद्धृत कहे जाते है।

चौदह पूर्वो के नाम तथा विषय

१ उत्पाद—द्रव्य तथा पर्यायों की उत्पत्ति।

२ आग्रायणी—सब द्रव्यों तथा जीवों के पर्यायों का परिमाण। अग्र का अर्थ है परिमाण और अयन का अर्थ है परिच्छेद।

३ वीर्यप्रवाद—सकर्म एवं अकर्म जीव तथा पुद्गलों की शक्ति।

४ अस्तिनास्ति प्रवाद—धर्मास्तिकाय आदि वस्तुएँ स्वरूप से है और पररूप से नहीं है, इस प्रकार स्याद्वाद का कथन।

५ ज्ञान प्रवाद—मति आदि पाँच ज्ञानों का स्वरूप एवं भेद प्रभेद।

६ सत्यप्रवाद—सत्य संयम अथवा सत्य वचन और उसके प्रतिपक्ष असत्य का निरूपण।

७ आत्मप्रवाद—जीवन का स्वरूप विविध नयों की अपेक्षा से।

८ कर्मप्रवाद या समय प्रवाद—कर्मों का स्वरूप भेद प्रभेद आदि।

९ प्रत्याख्यानप्रवाद—व्रतनियमों का स्वरूप।

१० विद्यानुप्रवाद—विविध प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धियों और उनके साधन।

११ अवन्ध्य—ज्ञान, तप, संयम आदि का शुभ एवं पापकर्मों का अशुभ फल। इसे कल्याणानुवाद भी कहा जाता है।

१२ प्राणायु—इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, मन आदि प्राण तथा आयुष्य।

१३ क्रिया विशाल—कायिक वाचिक आदि विविध प्रकार की शुभाशुभ क्रियाएँ।

१४ बिन्दुसार—लोकबिन्दुसार लब्धि का स्वरूप एवं विस्तार।

पूर्व साहित्य इस बात का द्योतक है कि जैन परम्परा महावीर से पहले भी विद्यमान थी और उस समय उसके पास विशाल साहित्य था।

	पुराण नाम	कर्त्ता	रचना संवत
६	आदि पुराण	भट्टारक चन्द्रकीर्ति	१७ वीं शती
७	आदि पुराण	„ सकल कीर्ति	१५ वीं शती
८	उत्तर पुराण	„ „	
९	कर्णामृत पुराण	केशवसेन	१६८८
१०	जय पुराण	ब्र० कामराज	१५५५
११	चन्द्रप्रभु पुराण	कवि अगासदेव	
१२	चामुण्ड पुराण (क)	चामुण्डराय	शक सं० ९८०
१३	धमनाथ पुराण (क)	कवि बाहुबलि	
१४	नेमिनाथ पुराण	ब्र० नेमिदत्त	१५७५ के लगभग
१५	पद्मनाभ पुराण	भ० शुभचन्द्र	१७ शती
१६	पउमचरिय (अपभ्रंश)	चतुर्मुख देव	अनुपलब्ध
१७	„ „	स्वयम्भूदेव	
१८	पद्म पुराण	भ० सोमसेन	
१९	पद्म पुराण	भ० धर्मकीर्ति	१६५६
२०	„ (अपभ्रंश)	कवि रइधू	१५-१६ शती
२१	„	भ० चन्द्रकीर्ति	१७ शती
२२	„	ब्रह्म जिनदास	१५-१६ शती
२३	पाण्डव पुराण	भ० शुभचंद्र	१६०८
२४	„ (अपभ्रंश)	भ० यशकीर्ति	१४९७
२५	„	भ० श्री भूषण	१६५७
२६	„	भ० वादिचंद्र	१६५८
२७	पार्श्वपुराण (अपभ्रंश)	पद्मकीर्ति	९९९
२८	„ „	कवि रइधू	१५-१६ शती
२९	„	चन्द्रकीर्ति	१६५४
३०	„	वादिचन्द्र	१६५८
३१	महापुराण	आचार्य मल्लिषेण	११०४
३२	महापुराण (आदि पुराण-उत्तरपुराण) अपभ्रंश	महाकवि पुष्पदंत	
३३	मल्लिनाथ पुराण (कन्नड)	कवि नागचंद्र	

	पुराण नाम	कर्ता	रचना संवत
६	आदि पुराण	भट्टारक चन्द्रकीर्ति	१७ वीं शती
७	आदि पुराण	„ सकल कीर्ति	१५ वीं शती
८	उत्तर पुराण	„ „	
९	कर्णामृत पुराण	केशवसेन	१६८८
१०	जय पुराण	ब्र० कामराज	१५५५
११	चन्द्रप्रभु पुराण	कवि अगासदेव	
१२	चामुण्ड पुराण (क)	चामुण्डराय	शक सं० ९८०
१३	धर्मनाथ पुराण (क)	कवि बाहुबलि	
१४	नेमिनाथ पुराण	ब्र० नेमिदत्त	१५७५ के लगभग
१५	पद्मनाभ पुराण	भ० शुभचन्द्र	१७ शती
१६	पद्मचरिय (अपभ्रंश)	चतुर्मुख देव	अनुपलब्ध
१७	„ „	स्वयंभूदेव	
१८.	पद्म पुराण	भ० सोमसेन	
१९	पद्म पुराण	भ० धर्मकीर्ति	१६५६
२०	„ (अपभ्रंश)	कवि रइधू	१५-१६ शती
२१	„	भ० चन्द्रकीर्ति	१७ शती
२२	„	ब्रह्म जिनदास	१५-१६ शती
२३	पाण्डव पुराण	भ० शुभचंद्र	१६०८
२४	„ (अपभ्रंश)	भ० यशःकीर्ति	१४९७
२५	„	भ० श्री भूषण	१६५७
२६	„	भ० वादिचंद्र	१६५८
२७	पार्श्वपुराण (अपभ्रंश)	पद्मकीर्ति	९९९
२८	„ „	कवि रइधू	१५-१६ शती
२९	„	चन्द्रकीर्ति	१६५४
३०	„	वादिचन्द्र	१६५८
३१	महापुराण	आचार्य मल्लिषेण	११०४
३२	महापुराण (आदि पुराण-उत्तरपुराण) अपभ्रंश	महाकवि पुष्पदंत	
३३	मल्लिनाथ पुराण (कन्नड़)	कवि नागचंद्र	

	पुराण नाम	कर्ता	रचना संवत्
३४	पुराणसार	श्री चंद्र	
३५	महावीर पुराण	कवि असग	९१०
३६	महावीर पुराण	भ० सकल कीर्ति	१५ वीं
३७	मल्लिनाथ पुराण	"	"
३८	मुनिसुव्रत पुराण	ब्रह्म कृष्णदास	[illegible]
३९	"	भ० सुरेन्द्रकीर्ति	
४०	वागर्थ संग्रह पुराण	कवि परमेष्ठी	आचार्य जिनसेन से पूर्ववर्ती
४१	शान्तिनाथ पुराण	कवि असग	१० वीं
४२	"	भ० श्री भूषण	१६५९
४३	श्री पुराण	भ० गुणभद्र	
४४	हरिवंश पुराण	पुन्नाटसंघीय जिनसेन	शक संवत् [illegible]
४५	हरिवंशपुराण (अपभ्रंश)	स्वयंभूदेव	[illegible]
४६	" "	चतुर्मुख देव	अनुपलब्ध
४७	"	भ० जिनदास	१५-१६ वीं
४८	हरिवंशपुराण (अपभ्रंश)	भ० यशःकीर्ति	१५०७
४९	" "	भ० श्रुतकीर्ति	१५५२
५०	" "	कवि रइधू	१५-१६ वीं
५१	"	भ० धर्मकीर्ति	१६७१
५२	"	कवि रामचंद्र	१५६० से पहले [illegible]

इनके अतिरिक्त चरितग्रंथ हैं जिनकी संख्या पुराणों की संख्या से अधिक है। और जिनमें 'वरांग चरित' 'जिनदत्त चरित', 'यशोधर चरित', नाग कुमार चरित आदि कितने ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सम्मिलित हैं।

कन्नड़ संस्कृति को जैनों की देन

प्रो० के० एस० धरणेन्द्रैया, एम० ए०, बी० टी०

कर्णाटक देश का इतिहास अन्तिम श्रुतकेवली भगवान् श्री भद्रबाहु के आगमन से आरम्भ होता है। ये ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में उत्तर से दक्षिण की ओर आये, जब मैसूर की इस भूमि को संस्कृत में कटवप्र और कन्नड़ में कलवप्पू नाम से पुकारा जाता था। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने १२००० शिष्यों के साथ अपने गुरु श्री भद्रबाहु का अनुगमन किया। इनमें राजपुत्र, व्यापारी पुरोहित कवि, मुनि और दार्शनिक थे। जब श्री भद्रबाहु वर्तमान श्रवणबेलगोला स्थान में पहुँचे तो उन्होंने भविष्यवाणी की कि उनका अन्त निकट है। और "सल्लेखन' की प्रतिज्ञा करके स्वर्ग प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त, जिन्होंने अब जैन यतिधर्म स्वीकार किया था, अपने गुरु के अनन्तर जीवन यापन करते हुए उनकी पूजा में संलग्न थे। चन्द्रगुप्त ने अपने नाम पर पुकारी जानेवाली चन्द्रगिरि नामक छोटी पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त बसती नामक मन्दिर बनवाया। दसवीं ईसवी में चामुण्डराय इस स्थान में पहुँचे और उन्होंने श्री भद्रबाहु के पवित्र चरणों की पूजा की। इस स्थान का नाम अब 'भद्रबाहुगुफा" पड़ा। भगवान् नेमिनाथ स्वामी और भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की शासनदेवी क्रमशः कूष्माण्डिनी देवी और पद्मावती देवी के आशीर्वाद से उन्होंने ईसवी सन् ९८३ में गोमटेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार श्रवणबेलगोला अति प्राचीन काल से जैन संस्कृति का केन्द्र रहा है। किसी भी देश की संस्कृति जानने के साधन हैं—उसका साहित्य, कला, धर्म दर्शन और वह जीवन जिसका मार्ग प्रदर्शन उसने (संस्कृति ने) किया है तथा सन्देश जो उसने विश्व को दिया है।

जैनों ने दक्षिण में बड़े राज्यों का निर्माण करके उन पर शताब्दियों तक राज्य किया। वे बहुत उदार शासक थे और दूसरे धर्मों के लिए पराकाष्ठा की क्षमा उनमें थी। धर्म और सत्य के संस्थापन के लिए बड़ी से बड़ी सहायता दे सके। प्राचीन भारत के ऐतिहासिकों का मत है कि जैन राज्य के समय में धार्मिक उपद्रव का एक भी उदाहरण नहीं था। जैन सम्राट विद्या और कला

कन्नड़ विद्वानों ने इसे कन्नड भाषा में अत्युत्तम पद्यग्रन्थ स्वीकार किया ह। पोन्न ९५० ईसवी के लगभग रहे। मालूम होता ह कि पोन्न एक जन यति थे और इनके सिर पर बाला की जटाएँ थीं।

इसके अनन्तर जन साहित्य के जनक पम्प का नाम हमें ज्ञात होता ह। इनका जन्म दुन्दुभि संवत्सर—९०२ ई० में हुआ था और इन्होंने अपनी ३९ वर्ष की अवस्था में ९४१ ई० में (१) आदिपुराण और (२) पम्पभारत नामक अपने अत्युत्तम ग्रन्थ कन्नड में लिखे। पम्प चालुक्यनायक अरिकेसरी के प्रधान मंत्री, सेनापति और राजकवि थे। इनका राज्य पुलिगिरि (लक्ष्मेश्वर) वर्तमान मिरज राज्य के अन्तर्गत था। ये राष्ट्रकूट वंश के वसुतलराज थे। पम्प के पूर्वपुरुष ब्राह्मण थे और उनके पिता श्री अभिराम देवराय ने, विश्व को यह सन्देश देते हुए कि सबसे उच्चस्थान प्राप्त किए हुए ब्राह्मण के लिए जनधर्म ही अनुकरण करने योग्य सबसे अच्छा धर्म ह, जनधर्म स्वीकार किया। इससे स्पष्ट ह कि उन दिनों में लोगों को धर्म की स्वतंत्रता थी। पम्प एक सुसंस्कृत सभ्य व्यक्ति था, उसने ब्राह्मण और जन दोनों संस्कृतियों का लाभ प्राप्त किया था। यह वदिक धर्म, दर्शन, शास्त्र तथा जनागम और सूत्रों में प्रवीण था। उसने दो ग्रन्थ लिखे। इनमें से एक तो उसने जन धर्म को समर्पण किया और दूसरा अपने राजा और मित्र अरिकेसरी को। ये दो प्रसिद्ध ग्रन्थ कन्नड साहित्य के दो बहुमूल्य रत्न सर्वत्र माने गए ह और पिछले हजार वर्षों में रचनाशली तथा विद्वत्ता में और कन्नड़ साहित्य में इनकी बराबरी करने वाला कोई ग्रन्थ नहीं हुआ है।

पम्प का आदि पुराण में वर्णित बाहुबलि ऐश्वर्यवान व्यक्ति ह। भरत और बाहुबलि की कथा का भारतीय साहित्य में अद्वितीय स्थान है। इस प्रसङ्ग का उत्तम रीति से पम्प ने वर्णन किया ह। उसी प्रकार दूसरे ग्रंथ भारत में पम्प के कर्ण का स्थान श्रेष्ठ ह। पम्प ने जोरदार शब्दों में कहा ह कि उसका भारत पढ़ने वाले लोगों को कर्ण का चरित्र दूसरे किसी के चरित्र से सर्वदा अधिक ध्यान में रखना चाहिये। संपूर्ण भारत कन्नड़ शब्दों का एक पवित्र भाण्डागार ह और पम्प का शब्दकोष अद्भुत और विस्तृत है। पम्प अपने भारत में अपने राजा अरिकेसरी का चरित्र अर्जुन के चरित्र से मिलाता ह और अपने ग्रन्थ का 'विक्रमार्जुनविजय" नामकरण करता है। महाभारत का यह प्रसङ्ग पूरी पुस्तक में कल्पक बुद्धि से अरिकेसरी की कथा से आपस में गुथा हुआ है। यह ग्रन्थ उदाहरण देता ह कि पम्प का

हुआ है। दूसरी अत्युत्तम रचना अजित पुराण में रन्न दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथ और दूसरे सम्राट सागर चक्रवर्ती की कथा का वर्णन करता है। वह प्राय प्रत्येक प्रथमाध्याय में अपनी संरक्षिका श्री अत्तिमब्बे, जिसे वह दान चिन्तामणि के नाम से पुकारता है, की प्रशंसा करता है। यह संपूर्ण ग्रन्थ उत्तम प्रकार से लिखा गया है। अजितनाथ के वैराग्य और त्याग पर लिखे हुए रन्न के पद्य बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। यह बहुत दुख का विषय है कि रन्न के दूसरे ग्रन्थ 'परशुराम चरित" जिसमें संभवत उसने अपने संरक्षक चामुण्डराय जिसको परशुराम की पदवी थी, के जीवन तथा कार्य के सम्बन्ध में वर्णन किया है, अबतक पता नहीं लगा है। यदि यह ग्रन्थ उपलब्ध होता तो इससे चामुण्डराय के जीवन और कार्य तथा श्री गोमटेश्वर की दिव्य मूर्ति की स्थापना के सबंध में बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ता—ये विषय अन्वेषण का कार्य करने वालों छात्रों के लिए कूट प्रश्न (पहेली) हो गये है। ऐसी ही एक पहेली है कि उस प्रसिद्ध संगतराश का नाम, जिसने गोमटेश्वर की बड़ी मूर्ति बनाई, नहीं मालूम हो रहा है। संभवत उस अज्ञात कलाकार की अधिक प्रशंसा करना उचित होगा क्योंकि उसने संपूर्ण भाग और सुन्दरता कायम रखते हुए ईश्वर तुल्य आकृति और तेजस्वी स्थिति के साथ खोदकर मूर्ति बनाई है। रन्न उस समय उपस्थित था जब चामुण्डराय ने श्रवण बेलगोला में उस बड़ी मूर्ति की स्थापना की। इस यथार्थता के उदाहरण स्वरूप हम छोटी पहाड़ियों की चट्टानों पर चामुण्डराय और रन्न के नाम क्रमश "श्री चामुण्डराय तथा श्री कविरत्न देखते है। रन्न के दूसरे ग्रन्थ कालपिशाच ने छीन लिये और यह कन्नड भाषा तथा कन्नड साहित्य की बड़ी हानि है। जन साहित्यरूपी आकाश में रन्न एक सबदा प्रकाशमान होने वाला तारा है। उसके ग्रन्थों में कन्नड संस्कृति और संस्कार के भरपूर उदाहरण मिलते है।

चामुण्डराय के श्रेष्ठ नाम का उल्लेख किए बिना, जो जन संस्कृति और ईश्वरभक्ति की मूर्ति था, दसवीं शताब्दी समाप्त करना उचित नहीं है। विद्या और कला का बड़ा पोषक होने के अतिरिक्त वह स्वयं महान कवि तथा प्रसिद्ध कन्नड गद्य लेखक था। वह राचमल्ल नामक महान् गङ्ग राजा का, जिसने अत्यधिक सतर्कता से जनधर्म का अनुसरण किया, प्रधान मंत्री तथा सेनापति था। यहां यह लिखना रोचक होगा कि मारसिंह—दूसरे गङ्ग राजा ने सल्लेखना का व्रत ग्रहण कर समाधि मरण लिया। चामुण्डराय ने "त्रिषष्टि शलाका पुरुष पुराणम्" नामक ग्रन्थ गद्य में लिखा जिसमें जन धर्मग्रन्थ के

सुसंस्कृत व्यक्ति था और खेचर राज्य का महान् सम्राट था। रावण के चरित्र बल पर एक घटना से प्रकाश पड़ता है। जब उसने नलकूबर के राज्य पर आक्रमण किया तो उसकी स्त्री उपरम्भे रावण से प्रेम करती है, किंतु उसे परदारात्यागव्रत का स्मरण होता है और वह आत्मसंयम की अपनी महती शक्ति प्रकट करता है। वह उपरम्भे को उपदेश देता है कि जननीति उपदेशों में वर्णित नियमों के अनुसार उसे आचरण करना चाहिए। उसे अपने पति के प्रति, जो सुन्दर होने के अतिरिक्त बड़ा वीर भी था, विश्वासयोग्य होना चाहिए। सीता पर कुदृष्टि रखने का ही केवल पातक रावण ने किया। सीता के महान् सौन्दर्य से वह मोहित हुआ और संयम के उसके सब भाव नष्ट हो गए। कवि यहाँ कहता है कि रावण तो एक मानव ही था और उसमें मानवीय दोष थे। जब उसे सीता की भक्ति का विश्वास हुआ तो उसने महान सती के गुणों को मानना शुरू किया। तब उसके मन में क्रान्ति हुई और उसने सीता को अपने पति से भगा ले जाने के पाप के लिए शुद्ध हृदय से पश्चाताप किया। उसके पश्चाताप से उसका मन पवित्र हो जाता है। वह युद्ध में राम लक्ष्मण को हराकर तब सीता को उन्हें वापस देने का निश्चय करता है। वह एक वीर की तरह युद्धस्थल में मरता है। उसके भाग्य और उसकी दुर्बलता पर हमें दया आती है। इस प्रकार जन कवियो ने दो भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत पर नवीन प्रकाश डाला है।

बारहवीं शताब्दी में जन राज्यों का नाश होना दिखलाई देता है यद्यपि ये राज्य दक्षिण कनारा के सम्पर राजाओ के वंशजों के राज्य में कर्नाटक के पश्चिमी भाग में कुछ शक्तिशाली थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में कारकल में गोमटेश्वर की दूसरी मूर्ति स्थापित की गई और १७ वीं शताब्दी में जन राजाओं ने येनूर में गोमटेश्वरी मूर्ति की स्थापना की। इसके अनन्तर हमें वृत्त-विलास धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ के लेखक ब्रह्मशिव, समय परीक्षा के लेखक तथा नयसेन धर्मामृत और जैन यशोधरा चरित के लेखक मिलते हैं। इन ग्रन्थों में दूसरे धर्मों की दुर्बलताएँ दिखाई गई हैं और विशेषत यज्ञ और याग के नाम पर देवताओं को शान्त करने के लिए होने वाली पशुहिंसा को दोषपूर्ण ठहराया गया है। उनमें सृष्टि की कल्पना और ईश्वर के अवतार को झूठा ठहराया गया है। उन्होंने तर्क से ठहराया है कि जनों की कर्म की कल्पना, ईश्वरतत्व, नीतिशास्त्र और अध्यात्म विद्या उच्च कोटि के थे। भाग्य की कल्पना सीमित थी। इस काल में अन्य धर्म के राजाओं ने भी जन विद्वानों

जैन कन्नड वाङ्मय

श्री के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूडबिद्री

दक्षिण भारत की विश्रुत पंच द्राविड भाषाओं में कन्नड एक है। इस भाषावर्ग की अवशिष्ट चार भाषाएं तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं तुलु हैं। द्राविड भाषाएं संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं से भिन्न मानी जाती हैं। इसका पहला कारण है कि इन भाषाओं में व्यवहार पर्याप्त स्वतंत्र शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अर्थात् इन भाषाओं को किसी भी आर्य भाषा से उधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती है। दूसरा कारण है कि इस भाषावर्ग का व्याकरण संस्कृत आदि आर्यभाषाओं के व्याकरणों से बहुत कुछ भिन्न है। इसके लिये कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं।

द्राविड भाषाओं में लिंग अर्थपरक है, सन्धिक्रम भिन्न है संज्ञाओं के एकवचन तथा बहुवचन में एक ही प्रकार की विभक्तियां हैं, गुणवाचक शब्दों में तरतम भाव नहीं है, सम्बन्धवाचक सर्वनाम का सर्वथा अभाव है कर्मणि प्रयोग कम है क्रियाओं में निषेधरूप हैं, कृत्तद्धित प्रत्यय स्वतंत्र है।

ऊपर कहा गया है कि द्राविड भाषावर्ग में व्यवहार पर्याप्त स्वतंत्र शब्द प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इस भाषा वर्ग में संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्द हैं ही नहीं। हैं, बाद में समय के प्रभाव से संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्दों को कौन कहे, वर्तमान इनमें उर्दू, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी आ मिले हैं। विदेशी शब्दों की यह रफ्तार केवल द्राविड भाषाओं में ही नहीं, प्रत्युत सभी भारतीय भाषाओं में इसी प्रकार जारी रही। इस प्राकृतिक अचल नियम को कोई रोक नहीं सकता। एक दृष्टि से यह है भी उपादेय। अन्यथा किसी भी भाषा के शब्द भण्डार की वृद्धि नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, प्रत्येक भाषा की सीमित शब्दावली से काम भी नहीं चल सकता। बल्कि भाषा तत्व के धुरंधर विद्वान् डा० काल्डवेल के मतानुसार अक्क, अत्त, कुटि कोट, नीर, बल्लि, मीन, एड, मरल, हेरब अट्ट, माम्, मुकुल, कुंतल, पालि, मंड, बल्लि, काक, मायक, मेक, सीर, ताल, बदक, उलूक, तटित् या

प्राचीन एवं उत्तम कृतियाँ जन कवियों की ही ह। ग्रंथरचना में जनों के प्राबल्य का काल ही कन्नड साहित्य की उच्च स्थिति का काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड भाषा के सौंदय एवं कांति के विशेषतया कारणभूत है। उन्होंने शुद्ध और गभीर बोली मे ग्रंथ रच कर ग्रंथरचना कौशल को उन्नत स्तर पर पहुँचाया है। प्रारंभिक कन्नड साहित्य उन्हीं की लेखनी द्वारा लिखा गया ह। कन्नड भाषाध्ययन के सहायभूत छन्द, अलंकार व्याकरण और कोश आदि ग्रंथ विशषत जनो के द्वारा ही रचे गए ह।'

बोल चाल की भाषा को ग्रंथ रूप देने का सारा श्रेय जन कवियो को प्राप्त ह। उपलब्ध कन्नड साहित्य मे नृपतुंग का 'कवि राजमाग' ही आदिम ग्रंथ एव 'कवितागुणार्णव' महाकवि आदि पप ही आदि कवि ह। कर्णाटक के के राजकीय इतिवृत्त से भी जनो का निकट सबन्ध ह। 'कवि चक्रवर्ती' महाकवि रन्न काव्यनिर्माण कला मे महाकवि भवभूति से कम नहीं था। 'जिन समय दीपक' यह रन्न वस्तुत कन्नड साहित्य का एक समुज्ज्वल रत्न था। कन्नड काव्य मे 'कविचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त पोन्न, रन्न तथा जन्न ये तीनो वस्तुत जन रत्नत्रय थे। विलक्षण कविता सामर्थ्य प्राप्त पूर्वोक्त महाकवि पंप अनन्य कीर्तिशाली कवि था। इसी प्रकार महाकवि नागचन्द्र के द्वारा प्रशंसित 'अभिनववाग्देवी' उपाधिधारिणी कंति आदि कवयित्री रहीं।

कन्नड जन पुराणो मे आदि पप (ई० सन् ९४१) का आदि पुराण, पोन्न (ई० सन् लगभग ९५०) का शान्तिनाथ पुराण रन्न (ई० ९६०) का अजितनाथ पुराण चामुण्डराय (ई० सन् ९७८) का त्रिषष्टिशलाका पुराण, नागचन्द्र (ई० सन् लगभग ११००) का मल्लिनाथ पुराण कर्णपार्य (ई० सन् लगभग ११४०) का नेमिनाथ पुराण, अग्गल (ई० सन् ११८९) चन्द्रप्रभ पुराण, आचण्ण (ई० सन लगभग ११९५) का वर्धमान पुराण, नेमिचन्द्र (ई० सन् लगभग ११७०) का अधनेमिपुराण बन्धुवर्मा (ई० सन् लगभग १२००) का हरिवंशपुराण पाश्र्व पण्डित (ई० सन् १२०५) का पाश्र्वनाथ पुराण, जन्न (ई० सन् १२०९) का अनन्तनाथपुराण द्वितीय गुणवर्मा (ई० सन् लगभग १२२५) का पुष्पदन्तपुराण, कमलभव (ई० सन् लगभग १२३५) का शान्तीश्वरपुराण मधुर (ई० सन् लगभग १३८५) का धर्मनाथपुराण, मंगरस (ई० सन् १५०८) का नमिजिनेशसंगति, शान्तिकीर्ति (ई० सन् १५१९) का शान्तिनाथपुराण, दोड्डय्य (ई० सन १५५०) का चन्द्रप्रभपुराण और

नव प्रकाशित जैन साहित्य

पिछले कुछ वर्षों में जैन साहित्य की जो प्रगति हुई है, वह अत्यन्त उत्साहवर्धक है नीचे कुछ सुसम्पादित ग्रंथ तथा प्रकाशन संस्थाओं का परिचय दिया जा रहा है।

जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित दो ग्रन्थ सामने आये हैं। पहला है 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर'। इसके लेखक हैं प्रोफेसर के० के० हान्दीकी। श्री हान्दीकी ने, ऐसे संस्कृत ग्रन्थों का किस प्रकार अध्ययन किया जा सकता है उसका एक रास्ता बताया है। यशस्तिलक के आधार पर तत्कालीन भारतीय संस्कृति के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि पहलुओं से संस्कृति का चित्र खींचा है। लेखक का यह कार्य बहुत समय तक बहुतों को नई प्रेरणा देने वाला है। दूसरा ग्रन्थ है 'तिलोयपण्णत्ति' द्वितीय भाग। इसके संपादक हैं ख्यातनामा प्रो० हीरालाल जैन और प्रो० ए० एन्० उपाध्ये। दोनों संपादकों ने हिन्दी और अंग्रेजी प्रस्तावना में गूढ़सम्बद्ध अनेक ज्ञातव्य विषयों की सुविचार चर्चा की है।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी अपने कई प्रकाशनों से सुविदित है। इसके नये प्रकाशन निम्नलिखित हैं—पहला है 'न्यायविनिश्चय विवरण' प्रथम भाग। इसके संपादक हैं प्रसिद्ध पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य। ग्रन्थ के मूल और वादिराज के विवरण की अन्य ग्रन्थों के साथ तुलना करके संपादक ने ग्रन्थ का महत्त्व बढ़ा दिया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना में संपादक ने स्याद्वादसंबंधी विद्वानों के भ्रमों का निरसन करने का प्रयत्न किया है। दूसरा ग्रन्थ है तत्त्वार्थ की 'श्रुतसागरी टीका'। उसकी प्रस्तावना में अनेक ज्ञातव्य विषयों की चर्चा सुविचार रूप से की गई है। खास कर 'लोक वर्णन और भूगोल' संबंधी भाग बड़े महत्त्व का है। उसमें उन्होंने जैन, बौद्ध, वैदिक परंपरा के मन्तव्यों की तुलना की है। ज्ञानपीठ का तीसरा प्रकाशन है—'समयसार' का अंग्रेजी अनुवाद। इसके संपादक हैं सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० ए० चक्रवर्ती। इस ग्रन्थ की भूमिका जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण विषयों से परिपूर्ण है। पर उन्होंने शंकराचार्य पर कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र

के प्रभाव की जो समावना की ह यह चिन्त्य ह ।[1] इसके अलावा 'महापुराण' का नया सस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हुआ है । अनुवादक ह पं० पन्नालाल, साहित्याचाय । सस्कृत-प्राकृत छन्दशास्त्र के सुविद्वान् प्रो० एच् डी वेलणकर ने सभाष्य 'रत्नमजूषा' का सपादन किया ह । इस ग्रन्थ में उन्होंने टिप्पण भी लिखा ह ।

आचाय श्री मुनि जिनविजय जी के मुख्य सपादकत्व में प्रकाशित होने वाली 'सिंघी जन ग्रन्थ माला' से शायद ही कोई विद्वान् अपरिचित हो ।

प्रो० दामोदर धर्मानन्द कोसबी सपादित 'शतकत्रयादि', प्रो० अमृतलाल गोपाणी सपादित 'भद्रबाहु संहिता', आचाय जिनविजयजी संपादित 'कथा कोष प्रकरण', मुनि श्री पुण्यविजय जी सम्पादित 'धर्माभ्युदय महाकाव्य' इन चार ग्रन्थो के प्रास्ताविक व परिचय मे साहित्य, इतिहास तथा संशोधन मे रस लेने वालो के लिए बहुत कीमती सामग्री ह ।

'षटखण्डागम' की 'धवला' टीका के नव भाग प्रसिद्ध हो गए ह । यह अच्छी प्रगति ह । किन्तु 'जयधवला' टीका के अभी तक दो ही भाग प्रकाशित हुए ह । आशा की जाती ह कि ऐसे महत्त्वपूण ग्रन्थ के प्रकाशन मे शीघ्रता होगी । भारतीय ज्ञानपीठ ने 'महाबंध' का एक भाग प्रकाशित किया किन्तु इसकी भी प्रगति रुकी हुई ह । यह भी शीघ्रता से प्रकाशित होना जरूरी ह ।

यशोविजय जनग्रन्थ माला' पहले काशी से प्रकाशित होती थी । उसका पुनजन्म भावनगर मे स्व० मुनि श्री जयन्तविजय जी के सहकार से हुआ है । पिछले वर्षों में जो पुस्तकें प्रसिद्ध हुई ह उनमें से कुछ का परिचय देना आवश्यक ह । 'न्यायावतार-वार्तिकवृत्ति' यह जन न्याय विषयक ग्रन्थ ह। इसमें मूल कारिकाएँ सिद्धसेन कृत ह । उनके ऊपर पद्यबद्ध वार्तिक और उसकी गद्य वृत्ति शान्त्याचार्य कृत ह । इसका संपादन प० दलसुख मालवणिया ने किया ह । संपादक ने जो विस्तृत भूमिका लिखी ह उसमे आगम काल से लेकर एक हजार वष तक के जन दशन के प्रमाण प्रमेय विषयक चिन्तन का ऐतिहासिक व तुलनात्मक निरूपण ह । ग्रन्थ के अन्त मे सपादक ने अनेक विषयो पर टिप्पण लिखे ह जो भारतीय दशन का तुलनात्मक अध्ययन करने वालो के लिए ज्ञातव्य ह ।

---

[1] देखो, प्रो० विमलदास कृत समालोचना, ज्ञानोदय–सितम्बर १९५१ ।

चित्रित चित्रों के विषय में अभ्यासपूर्ण है। उसी प्रकार की और 'कल्पसूत्र' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसका संपादन श्री ... जी ने किया है और गुजराती अनुवाद पं० बेचरदास जी ने।

मूलरूप में पुराना पर इस युग में नये रूप से पुनरुज्जीवित एक ... संरक्षक मार्ग का निर्देश करना उपयुक्त होगा। यह मार्ग है शिला व ... के ऊपर साहित्य को उत्कीर्ण करके चिरजीवित रखने का। इसमें ... पहले पालीताना के आगममंदिर का निर्देश करना चाहिए। उसका ... जैन साहित्य के उद्धारक, समस्त आगमों और आगमेतर सैकड़ों पुस्तकों के संपादक आचार्य सागरानन्द सूरि जी के प्रयत्न से हुआ है। उन्होंने ... एक दूसरा मंदिर सूरत में भी बनवाया है। प्रथम में शिलाओं के ऊपर और दूसरे में ताम्रपटों के ऊपर प्राकृतिक जैन आगमों को उत्कीर्ण किया गया है। हम लोगों के दुर्भाग्य से वे साहित्यसेवी सूरि अब हमारे बीच नहीं हैं। ... ही प्रयत्न षट्खंडागम की सुरक्षा का हो रहा है। वह भी ताम्रपत्र पर ... हो रहा है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक तरीके का उपयोग तो मुनि श्री पुण्य विजय जी ने ही किया है। उन्होंने जैसलमेर के भंडार की कई प्रतियों की सुरक्षा और सब सुलभ करने की दृष्टि से माइक्रोफिल्मिंग कराया है।

संशोधकों व ऐतिहासिकों का ध्यान खींचने वाली एक नई संस्था का ... प्रारंभ हुआ है। राजस्थान सरकार ने मुनि श्री जिनविजय जी की अध्यक्षता में 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' की स्थापना की है। राजस्थान में ... व ऐतिहासिक अनेकविध सामग्री बिखरी पड़ी है। इस संस्था द्वारा ... सामग्री प्रकाश में आएगी तो संशोधन क्षेत्र का बड़ा उपकार होगा।

प्रो० एच० डी० वेलणकर ने हरितोषमाला नामक ग्रन्थ माला में 'जयदामन्' नाम से छन्दःशास्त्र के चार प्राचीन ग्रन्थ संपादित किए हैं। 'जयदेव छन्दस', जयकीर्ति कृत—'छन्दोनुशासन', केदार का 'वृत्तरत्नाकर', और आ० हेमचन्द्र का 'छन्दोनुशासन' इन चार ग्रन्थों का उसमें समावेश हुआ है।

'Studien zum Mahanisiha' नाम से हेमबर्ग से अभी अभी एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें महानिशीथ नामक जैन आगम के छठे से आठवें अध्ययन तक का विशेषरूप से अध्ययन Frank Richard Hamm और डॉ० शूब्रिंग ने करके सब अध्ययन का जो परिणाम हुआ उसे लिपिबद्ध कर दिया है।

अन्य मुद्रित ग्रन्थ

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१—वर्द्धमान (महाकाव्य)—महाकवि अनूप शर्मा ।
२—नाममाला (सभाष्य) धनञ्जयकृत ।
३—कन्नड़ प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रंथ सूची—के भुजबली शास्त्री ।
४—थिरु कुरल काव्य (तामिल लिपि में)—ए चक्रवर्ती ।
५—केवल ज्ञान प्रश्न चूडामणि ।
६—जातकट्ठ कथा (प्रथम भाग)
७—महाबन्ध (वृष्टि बन्धाधिकार) द्वि पुस्तक ।
८—तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक—पं० महेन्द्रकुमार द्वारा सम्पादित, प्रथम भाग ।
९—वसुनन्दी श्रावकाचार ।
१०—भारतीय ज्योतिष—पं० नेमिचन्द्र जैन ।
११—आधुनिक जैन कवि ।
१२—जैन शासन ।
१४—सभाष्य रत्न मंजूषा ।
१५—मदन पराजय ।
१६—जैन जागरण के अग्रदूत ।

विजयवल्लभ सूरीश्वर ज्ञान मन्दिर, कोटा

१—तिलकमंजरी शान्त्याचार्य टिप्पण एवं लाभ विजयकृत टीका सहित ।
२—सिद्धहेमशब्दानुशासन बृहद्वृत्ति लाभविजयकृत टीका सहित ।

कान्ति तत्त्वज्ञान सिरीज़, बम्बई

१—तत्त्वार्थ प्रश्नोत्तर ।

सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा

श्रमण सूत्र—कवि अमरचन्द्र जी महाराज
सामायिक सूत्र—　　„
सत्य हरिश्चन्द्र　　„
जैनत्व की झाँकी　　„
भक्तामर स्तोत्र　　„
कल्याण मन्दिर स्तोत्र　　„
वीर स्तुति　　„

५—तत्त्वसमुच्चय—स० प्रो० हीरालाल जैन

६—तरंगवती कथा

७—जैनागमों में स्याद्वाद—स० उपाध्याय आत्माराम जी

ीघ्र ही प्रकाशित होने वाले सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थ—

१—खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली

२—कुमारपाल चरित्र

३—विविध गच्छीय पट्टावली संग्रह

४—जैन पुस्तक प्रशस्ति भाग २

५—विज्ञप्ति संग्रह

६—गणपालकृत जंबूचरित्र (प्राकृत)

७—जयपाहुड़

८—गुणचंद्रकृत— मंत्री कर्मचंद्र वंश प्रबंध

९—नयचंद्र कृत हम्मीर महाकाव्य

१०—नर्मदा सुंदरी कथा

११—काव्य प्रकाश, खंड १ (सिद्धिचंद्र)

१२—तिलोय पण्णत्ति—उपाध्ये।

१३—कल्पसूत्र—साराभाई नवाब।

१४—जैसलमेर की चित्र समृद्धि।

१५—महावीर चित्रावली।

१६—प्रवचन किरणावली।

१७—अनेकान्त व्यवस्था

१८—जैन तर्क भाषा।

१९—सिद्धसेन कृत द्वात्रिंशिकाएं

(१६–१९) लावण्य विजय जी म०।

२०—स्वप्नग्रहों का भ्रमण—मुनि कान्तिसागर।

२१—योगदृष्टि समुच्चय विवरण—डॉ० भगवान दास।

२२—बृहत्कल्प छठा भाग।

पत्र पत्रिका आदि में लेख—

Jain Antiquary Vol XV 1 2

(1) The Jain Critique of the Buddhist Theories of Pramana

Prof H M Bhattacharya

(2) History of Mathematics in India From Jaina Sources
—Dr A. N Singh

(Cont. Vol XVI)

Vol XVI 1—2

(3) Three New Kushan Inscriptions
—Syt K D Bajpai

(4) Jaina temples, monks and nuns in Poona
—Syt S R. Te

(5) Authors of the Names of Pūjyapad
—J P Jain

Indian Historical Quarterly Sept 1950

(1) Gleanings from the Kharatargaccha Pattavali
—Dasharath Sharma

(2) Dramaturgy found in the Mahapurana of Puspadanta
March 1951

(3) Sources of Hemchandra's Apabhranśa quotations
—S. N Ghoshal

New Indian Antiquary (April-June 1947)

(1) Further Contribution to the History of Jaina Cosmography and Mythology
—Dr - Z. Ahmed

श्री विश्वबन्धु द्वारा संपादित 'विश्व भारती' में जैनधर्म और प्राकृत ग्रन्थ से संबद्ध अनेक लेख है। उनके लेखक हैं डॉ० एस० के चटर्जी, डॉ० आनन्द दास गुप्त, डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० उपाध्ये श्री प्रबोध शास्त्री, डॉ० विंटरनित्ज डॉ० राघवन्।

एम्० एम्० पोद्दार स्मारक ग्रन्थ में डॉ० उपाध्ये का जैन और जैनधर्म के विषय में एक लेख है।

श्री वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में अनेक लेख जैनधर्म से संबंध रखते हैं।

मुनि श्री पुण्यविजय जी
द्वारा
जैसलमेर भण्डार का उद्धार

जैन साहित्य के उद्धार के लिए मुनि श्री पुण्यविजय जी जिस लगन तथा नियम के साथ कार्य कर रहे हैं वह साहित्यिक तपस्वियों के लिए जीता जागता आदर्श है। उन्होंने खम्भात, पाटन, बड़ौदा आदि आदि अनेक स्थानों के भण्डारों को सुव्यवस्थित किया और सुरक्षित बनाया है। अनेक विद्वानों के लिए सम्पादन-संशोधन में उपयोगी हस्तलिखित प्रतियों को सुलभ बनाया है। स्वयं संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संपादन भी किया है। लम्बे और परिपक्व अनुभव के बाद ई० स० १९४५ में वे जैन आगम संसद की स्थापना करके देश तथा विदेश में प्राप्य उपयोगी सामग्री जुटाने में लग गए। आगमों के संशोधन की दृष्टि से ही वे अपना विहारक्रम तथा अन्य कार्यक्रम बनाते हैं। इसी दृष्टि से बड़ौदा, खम्भात, अहमदाबाद आदि स्थानों में रहे और वहाँ के भंडारों को सुव्यवस्थित करते हुए आगमों के संशोधन में उपयोगी सामग्री एकत्रित की। भण्डारों से पर्याप्त सामग्री मिली। किन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ। १९५० के आरम्भ में दलबल के साथ वे जैसलमेर पहुँचे और वहाँ के प्रसिद्ध भण्डार का उद्धार किया। अनेक अप्राप्य ग्रंथों की फिल्म ली और उन्हें विद्वानों के लिए सुलभ बना दिया।

उस सामग्री का महत्व अनेक दृष्टियों से है। विशेषावश्यक भाष्य कुवलय माला, ओघनिर्युक्ति वृत्ति, आदि अनेक ताडपत्र और कागज पर लिखे ग्रन्थ ९०० वर्ष तक के पुराने हैं और प्रायः शुद्ध हैं। जैन परम्परा के अतिरिक्त बौद्ध और ब्राह्मण परम्परा के भी अनेक ग्रन्थ मिले हैं। उनमें खण्ड खण्ड खाद्य (शिष्य हितैषिणी वृत्ति तथा टिप्पणी आदि सहित), न्यायमञ्जरी ग्रन्थिभंग, भाष्यवार्तिक विवरण पंजिका, तत्त्वसंग्रह (पंजिका सहित) आदि उल्लेखनीय हैं। न्याय टिप्पणक—श्री कंठीय, कल्पलता विवेक (कल्प पल्लव शेष) बौद्ध नागार्जुन धर्मोत्तरीय टिप्पण आदि कुछ ग्रन्थ तो अपूर्व हैं।

सोलह मास के अल्प समय में मुनि श्री ने रात दिन जागकर, गर्मी और सरदी की तनिक भी परवाह किए बिना जैसलमेर सरीखे दुर्गम स्थान के भण्डारों का जीर्णोद्धार किया। इस विशाल कार्य के लिए उन्होंने जो तपस्या की है उसे दूर बैठा शायद ही कोई समझ सके। उस समय मुनि श्री की कार्यप्रणाली को देखने तथा अभिप्रेत साहित्यिक कृतियों की प्राप्ति के लिए अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वान वहां पहुँचे। उनमें हेम्बर्ग यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध प्राच्य विद्या विशारद डॉ० आल्सडोर्फ का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने भी मुनि श्री के साथ प्राच्य वस्तु तथा साहित्य के सैकड़ों फोटो लिए।

मुनि श्री का काम जैन ही नहीं भारतीय एवं मानव संस्कृति की दृष्टि से भी महत्व रखता है। यह भारतीय साहित्यिक तपस्वी की दीर्घ कालीन कठोर साधना है।

भण्डारों का उद्धार करते समय मुख्यतया नीचे लिखी तीन बातें करनी पड़ती हैं —

१—अधूरे और बिखरे हुए ग्रन्थों के एक दूसरे में मिश्रित ताड़पत्रीय व कागजी पत्रों को लिपि, कद, भाषा, विषय, पत्रांक आदि के आधार पर संकलित करके क्रमशः उस उस ग्रंथ के रूप में एकीकरण।

२—उन एकीकृत ग्रन्थों की तथा पूरे या अधूरे पर संरक्षणीय उपादेय ग्रन्थों की वर्गीकरण पूर्वक सूची, जिसमें रचयिता, लेखनकाल, विषय विशेष ज्ञातव्य आदि आवश्यक बातों का समावेश।

३—असली सामग्री को प्राचीन परंपरा के अनुसार जैसलमेर में रखकर भी उसकी सार्वत्रिक सुलभता की दृष्टि से तथा अपने अभिप्रेत संपादन में उसका उपयोग करने की दृष्टि से अनेक ताड़पत्रीय व कागजी ग्रन्थों का माइक्रोफिल्म में रूपान्तरण।

निम्नलिखित ग्रन्थों का माइक्रोफिल्म हुआ है

१—समवाय सूत्र
२—भगवती सूत्र
३—ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
४—जीवाभिगम सूत्र तथा लघुवृत्ति
५—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र तथा चूर्णी
६—वसुदेवहिण्डी प्रथमखण्ड
७—अनुत्तरौपपातिक दशांग सूत्र
८—[illegible]
९—निरयावलिकादि पंचोपांग सूत्र
१०—ज्योतिष्करण्डक वृत्ति तथा मूल
११—[illegible] वृत्ति आदि

१२— दशाश्रुतस्कंध चूर्णि
१३—दशाश्रुतस्कंध सूत्र
१४ दशाश्रुतस्कंध नियुक्ति
१५—कल्पबृहद्भाष्य प्रथम खंड
१६—कल्पबृहद्भाष्य प्रथम खण्ड
१७—व्यवहार सूत्र
१८—व्यवहार भाष्य
१९—व्यवहार चूर्णी
२०—निशीथ सूत्र
२१—निशीथ भाष्य
२२—निशीथ सूत्र चूर्णी प्रथम खंड दशम उद्देश पर्यंत
२३—निशीथसूत्र चूर्णी द्वितीय खंड
२४—निशीथ चूर्णी विंशोद्देशक व्याख्या
२५—ओघनिर्युक्ति वृत्ति
२६—दशवैकालिक चूर्णी
२७—पिंडनिर्युक्ति वृत्ति सह
२८—पिंडनिर्युक्ति लघुवृत्ति
२९—विशेषावश्यक महाभाष्य
३०—विशेषावश्यक वृत्ति प्रथम खंड
३१—विशेषावश्यक वृत्ति द्वितीय खंड
३२—ओघनियुक्ति बृहद्भाष्य
३३—आवश्यकनियुक्ति भद्रबाहु स्वामी
३४—षडावश्यक सूत्रवृत्ति-नमिसाधु
३५—ललित विस्तरा वृत्ति संक्षेप (चैत्यवंदन सूत्रवृत्ति-हरिभद्र सूरि)
३६—चैत्यवंदना सूत्र चूर्णी (यशोदेव सूरि)
३७—वंदनक सूत्र चूर्णी (यशोदेवसूरि)
३८—ईरियावहिया दंडक चूर्णी
३९—प्रत्याख्यान-स्वरूप प्रकरण गाथाबद्ध (यशोदेव)
४०—पाक्षिकसूत्र चूर्णी
४१—सर्वसिद्धांत विषमपद-पर्याय
४२—प्रकण पोथी
४३—सूक्ष्मार्थ विचार चूर्णी
४४—कर्म प्रकृति चूर्णी
४५—कर्म प्रकृति चूर्णी विशेष वृत्ति
४६—शतक चूर्णी
४७—शतक चूर्णी
४८—जम्बूद्वीपक्षेत्रसमास वृत्ति (हरिभद्र सूरि)
४९—पिंड विशुद्धि प्रकरण सटीक
५०—चैत्यवंदन भाष्य संघाचारे टीका सह
५१—पंचाशक प्रकरण लघुवृत्ति अष्टादश पंचाशकपर्यंत (यशोभद्र सूरि)
५२—उपदेश पद प्रकरण लघु टीका (वर्धमान सूरि
५३—उपदेश प्रकरण लघु टीका
५४ - दानशुद्धिप्रकरण विवरण सह
५५—संवेग रंग शाला
५६—धर्म विधि प्रकरण
५७—त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र गद्यबद्ध शांतिनाथ चरित्र पर्यंत
५८—नेमिनाह चरित्र अपभ्रंश
५९—अतिमुक्तक चरित्र

१०३—सप्ततिका कर्मग्रंथ टिप्पणक गाथाबद्ध
१०४—भगवद्गीता भाष्यसह
१०५—बृहत्संग्रहणी प्रकरण सटीक
१०६—महावीर चरित्र प्राकृत गाथा बद्ध
१०७—मुनिसुव्रत स्वामि चरित्र संस्कृत
१०८—पउम चरिउ प्राकृत गाथा
१०९—समराइच्च कहा—प्राकृत
११०—कुवलयमाला कथा
१११—विलासवई कहा—अपभ्रंश
११२—विलासवई कहा—अपभ्रंश
११३—पृथ्वीचन्द्र चरित्र
११४—सुखबोधा सामाचारी
११५—कातंत्र व्याकरण दुर्गसिंह वृत्ति विवरण पंजिका
११६—त्रिलोचन दास वृद्धवृत्ति
११७—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति पंचसंधिपर्यंत
११८—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति द्वितीयपाद पर्यंतटिप्पण सह
११९—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति कारक प्रकरण
१२०—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति तद्धित प्रकरण पर्यंत
१२१—सिद्धहेम शब्दानुशासन लघु वृत्ति पंचमाध्याय
१२२—स्यादंत प्रक्रिया
१२३—प्राकृत प्रकाश
१२४—जयदेव छंद शास्त्र
१२५—जयदेव छंद शास्त्र वृत्ति सह
१२६—कड्डसिटठकृत छंद शास्त्र वृत्ति
१२७—छंदोनुशासन
१२८—वृत्तरत्नाकर
१२९—काव्यप्रकाश टिप्पण सह
१३०—व्यक्तिविवेक काव्यालंकार
१३१—काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद पर्यंत
१३२—उद्भटालंकार लघुवृत्ति
१३३—अभिधा वृत्ति मातृका
१३४—रुद्रटालंकार तृतीयाध्याय तथा पंचमाध्याय पर्यंत
१३५—वामनीय काव्यालंकार स्वोपज्ञ वृत्ति टिप्पणसह
१३६—कविरहस्य टीका
१३७—भट्टिकाव्य
१३८—नैषधचरित महाकाव्य
१३९—नैषधीय महाकाव्य साहित्यविद्याधरी टीका
१४०—नैषधीय महाकाव्य
१४१—वृंदावन काव्य सटीक
१४२—घटखर्पर काव्य सटीक
१४३—शिवभद्र काव्य सटीक
१४४—मेघाभ्युदय काव्य सटीक
१४५—चंद्रदूत काव्य सटीक
१४६—राक्षस काव्य सटीक
१४७—घटखर्पर काव्य सटीक
१४८—वासवदत्ता आख्यायिका
१४९—चन्द्रपाणि विजय महाकाव्य
१५०—लीलावती कथा प्राकृतगाथा बद्ध-महाराष्ट्रीय दशीभाषामय
१५१—गउड वहो महाकाव्य सटीक

२०९—प्रज्ञापना सूत्र
२१०—प्रज्ञपना लघु वृत्ति
२११—भगवती मूल
२१२—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
२१३—पिंड नियुक्ति
२१४—बाल शिक्षा व्याकरण

नोट—इस सूची में कई नाम अनेक बार आए है। उसका यह अर्थ है कि उन ग्रन्थों की अनेक प्रतियों का माइक्रोफिल्म हुआ है

४—जीर्ण शीर्ण हुई और बहुत कम समय टिकने वाली पोथियों की नई वैज्ञानिक पद्धति से मरम्मत की गई उसमें निम्नलिखित बहुमूल्य प्रतियाँ शामिल है। इन सभी प्रतों के मार्जिन में किसी ने टिप्पणी भी लिखी है।

(१) न्यायभाष्य
(२) न्यायवार्तिक
(३) न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका
(४) तात्पर्य परिशुद्धि

इन चारों ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रत सं० १२७९ की है।

५—भंडार वाले स्थान की मरम्मत

६—ग्रन्थ आदि प्राच्य वस्तुओं के संरक्षणार्थ नए सिरे से उत्तम लोहे की अलमारियों का निर्माण।

७—ग्रन्थ के छोटे बड़े नाप के अनुसार एल्यूमिनियम् के डिब्बों को बनवा कर उनमें ग्रंथों का स्थापन।

८—जैसलमेर में उपलब्ध एक एक ग्रन्थ की अनेक प्रतियों के आधार पर निम्नलिखित ग्रन्थो का संशोधन पाठान्तर लेकर किया गया—

(१) अनुयोगद्वारसूत्र हारिभद्री और मलधारीया वृत्ति और चूर्णी
(२) नंदिसूत्र—मलयगिरीया वृत्ति, चूर्णी, हरिभद्रीयवृत्ति टिप्पणक (श्री चन्द्रीय दुर्गपद वृत्ति)
(३) सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति
(४) ज्योतिष्करण्डक प्रकीर्णक पादलिप्तकृत वृत्ति, मलयगिरि कृत वृत्ति
(५) विशेष्यावश्यक भाष्य—कोट्याचार्य कृत टीका
(६) आवश्यक सूत्र, चूर्णी, मलयगिरि कृत टीका, हरिभद्रकृत टीका मलधारिकृत टिप्पण
(७) बृहत्कल्प सूत्र—लघुभाष्य
(८) दश वैकालिक सूत्र, हरिभद्र वृत्ति,
(९) प्रज्ञापनोपांग सूत्र मलयगिरि टीका हरिभद्रकृत टीका
(१०) सूत्रकृतांगसूत्र टीका
(११) समवायांग सूत्र टीका
(१२) दशाश्रुतस्कंध चूर्णी

जैन व्याख्या पद्धति

पं० सुखलाल जी

जैन परम्परा में 'अनुगम' शब्द प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है व्याख्यान विधि। अनुगम के छह प्रकार आर्यरक्षित सूरि ने अनुयोगद्वार सूत्र (सूत्र० १५५) में बतलाए हैं। जिनमें से दो अनुगम सूत्रस्पर्शी और चार अर्थस्पर्शी हैं। अनुगम शब्द का निर्युक्ति शब्द के साथ सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम रूप से उल्लेख अनुयोग द्वार सूत्र से प्राचीन है इसलिए इस बात में तो कोई संदेह रहता ही नहीं कि यह अनुगम पद्धति या व्याख्यानशैली जैन वाङ्मय में अनुयोग द्वार सूत्र से पुरानी और निर्युक्ति के प्राचीनतम स्तर का ही भाग है। जो संभवतः श्रुत केवली भद्रबाहुकर्तृक मानी जाने वाली निर्युक्ति का ही भाग होना चाहिए। निर्युक्ति में अनुगम शब्द से जो व्याख्याविधि का समावेश हुआ है वह व्याख्या-विधि भी वस्तुतः बहुत पुराने समय की एक शास्त्रीय प्रक्रिया रही है। हम जब आर्य परम्परा के उपलब्ध विविध वाङ्मय तथा उनकी पाठशैली को देखते हैं तब इस अनुगम की प्राचीनता और भी ध्यान में आ जाती है। आर्य परम्परा की एक शाखा जरथोस्थियन को देखते हैं तब उनमें भी पवित्र माने जाने वाले अवेस्ता आदि ग्रन्थों का प्रथम विशुद्ध उच्चार कैसे करना, किस तरह पद आदि का विभाग करना इत्यादि क्रम से व्याख्यानविधि देखते हैं। भारतीय आर्य परम्परा की वैदिक शाखा में जो वैदिक मंत्रों का पाठ सिखाया जाता है और क्रमशः जो उसकी अर्थविधि बतलाई गई है, उसकी जैन परम्परा में प्रसिद्ध अनुगम के साथ तुलना करें तो इस बात में कोई संदेह ही नहीं रहता कि यह अनुगमविधि वस्तुतः वही है जो जरथोस्थियन धर्म में तथा वैदिक धर्म में भी प्रचलित थी और आज भी प्रचलित है।

जैन और वैदिक परम्परा की पाठ तथा अर्थविधि विषयक तुलना—

१ वैदिक	२ जैन
१—संहितापाठ (मंत्रपाठ)	१—संहिता (मूलसूत्रपाठ) १
२—पदच्छेद (जिसमें पद, क्रम, जटा आदि आठ प्रकार की विविधानुपूर्वियों का समावेश है)	२—पद २
३—पदार्थ विज्ञान	३—पदार्थ ३, पदविग्रह ४
४—वाक्यार्थज्ञान	४—चालना ५
५—तात्पर्यार्थनिर्णय	५—प्रत्यवस्थान ६

जैन ज्ञान भण्डारों के प्रकाशित सूची ग्रंथ

श्री अगरचन्द नाहटा

जैन साहित्य में ज्ञान आत्मा का विशेष गुण बतलाया है और इसीलिए ज्ञान को जनागमों में अत्यधिक महत्व दिया गया है। नंदी सूत्र नामक आगम ग्रंथ तो ज्ञान के विवेचन रूप में ही बताया गया है। स्वाध्याय-अध्ययन को अभ्यान्तर तप माना गया है। उसका फल परम्परा से मोक्ष है अतः जन मुनियों को स्वाध्याय करते रहने का दैनिक कर्तव्य बतलाया गया है। जनागमों में प्रतिपादित ज्ञान के इस अपूर्व महत्व ने मुनियों की मेधा का एवं विकास किया। उन्होंने अपने अमूल्य समय को विशेषतः विविध ग्रन्थों के अध्ययन, अध्यापन एवं प्रणयन में लगाया, फलतः साहित्य (वाङ्मय) का कोई ऐसा अङ्ग बच नहीं सका जिसपर जन विद्वानों ने अपनी गौरव-शालिनी लेखनी नहीं चलाई हो। वीरनिर्वाण के ९८० वर्ष में विशेष रूप से जनसाहित्य पुस्तकारूढ़ हुआ। उससे पहले आगम कण्ठस्थ रहते थे, अतः अध्ययन अध्यापन ही जन मुनियों का प्रमुख कार्य था। इसके बाद लेखन भी आवश्यक कार्यों में सम्मिलित हुआ और अधिकांश समय साधारण मुनियों ने, जिनमें ग्रन्थ प्रणयन का सामर्थ्य कम था, ग्रंथों के लिखने में ही लगा दिया। इसी कारण से लाखों प्रतियाँ जन मुनियों द्वारा लिखित यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। लिखने वाले पठित तो होते ही थे अतः ये प्रतियाँ दूसरों द्वारा लिखित प्रतियों से प्रायः शुद्ध पाई जाती हैं। साहित्य के प्रणयन एवं संरक्षण में जन विद्वान विशेषतः श्वेताम्बर विद्वान तो बड़े ही उदार रहे हैं। फलस्वरूप जैनेतर ग्रन्थों पर सकड़ों जन टीकाएँ उपलब्ध हैं * और जन भंडारों में जनेतर साहित्य प्रचुर परिमाण में सुरक्षित है। उनमें कई ग्रन्थों की प्रतियाँ तो एसी भी हैं

---

* देखें मेरा "जनेतर ग्रन्थ पर जैन विद्वानों की टीकाएँ नामक निबंध। प्र० भारतीय वि० भा० भा० २ अं० ३४।

मास से अधिक एक स्थान पर रहने का निषेध है। जितना भार वे स्वय उठा कर चल सकें उतनी ही पुस्तकें रखने का नियम होता ह अत निरन्तर भ्रमणशील जन मुनियों ने भारत के कोने कोने में पहुंच कर जन धम का प्रचार किया। परिणामस्वरूप भारत के सभी प्रान्तों में जन ज्ञान भण्डार स्थापित ह। नीचे प्रान्तवार कुछ प्रमुख स्थानों के नामो की सूची दी जा रही ह जहाँ जन भण्डार ह।

श्वेताम्बर जैन ज्ञान भडार—

राजपूताना व मालवा—जसलमेर बीकानेर, जोधपुर, पीपाड, आहोर, फलोधी, सरदारशहर, चूरू, जयपुर, झुंझनूं, फतहपुर, लाडणूं, सुजानगढ़, पाली, उज्जन, कोटा, उदयपुर, इदौर, रतलाम, बालोतरा, किशनगढ़, नागोर मंदसोर, ब्यावर, लोहावट आदि।

गुजरात, काठियावाड—पाटण, खभात, बडौदा, छाणी पादरा, बीजापुर अहमदाबाद सूरत पालनपुर राधनपुर डभोई मागरोल, ईडर सीनोर साणन्द, वीसनगर, कपडवज चाणस्मा वीरमगांव बिलीमोरा, झींझुवाडा खेडा वढ़वाण धोलेरा पाटडी दसाडा, लींबडी पूना बम्बई, भरौंच आदि।

काठियावाड—पालीताणा भावनगर राजकोट, जामनगर, लीम्बडी

कच्छ—कच्छकोडाय, मांडवी, मोरवी।

दक्षिण—मालेगाम मइसोर मद्रास।

संयुक्तप्रान्त—आगरा बनारस लखनऊ।

मध्यप्रान्त—नागपुर रायपुर बालापुर।

बङ्गाल—कलकत्ता अजीमगञ्ज जियागञ्ज राजगृह (बिहार)।

पञ्जाब—अम्बाला, जीरा रोपड सामाना मालेरकोटला लुधियाना, होशियारपुर, जालन्धर नकोदर, अमृतसर पट्टी जंडियाला लाहौर गुजरांवाला, स्यालकोट रावलपिंडी जम्मू।

विशेष जानने के लिए देखें जनसत्यप्रकाश वष ४ अङ्क १०–११ वष ५ अङ्क १, वष ६ अङ्क ५ में प्र० 'आपणी ज्ञानपरबो' लेख।

दिगम्बर जैन भडार—

यों तो इनके जहाँ जहाँ मन्दिर ह वहाँ थोडा बहुत पुस्तक सग्रह ह पर प्रमुख स्थानों के नाम इस प्रकार ह—

३-पत्तनस्थ प्राच्य जैन भांडागारीय ग्रन्थसूची (ताडपत्रीय प्रतियों की) प्र० बड़ौदा ओरियन्टल सीरीज, बडोदा सन १९३७।

(नं० २ ३ के स० चिम्मनलाल दलाल व लालचन्द गांधी)

४ लींबडी भडार सूची (स० चतुरविजय) प्र० आगमोदयसमिति, सूरत सं० १९८५ बम्बई।

५ पंजाब भंडार सूची (स० बनारसीदास जी) प्र० पजाब युनिवरसिटी लाहौर ई० सन् १९३९।

६ खभात शांतिनाथ प्रा० ताडपत्रीय जैन भंडार सूचीपत्र, प्र० शा० प्रा० ता० जन ज्ञान भडार, खभात सन् १९४२।

७ सूरत भंडार सूची (ग्रन्थ नाम मात्र) सं० केशरीचन्द झवेरी प्र० जन साहित्य फंड, सूरत सन १९३८।

८ मोहनलाल जी जन भंडार सूची (सूरत) ग्रन्थ नाम मात्र प्र० झवेरचद रायचन्द, गोपीपुरा सूरत सन् १९१८।

९ यति प्रेमविजय भडार सूची (उज्जन) (ग्रन्थ नाम मात्र) प्र० उज्जैन

१० रत्नप्रभाकर ज्ञान भंडार सूची (ओसियां) प्र० वीरतीर्थ ओसियां वीर स० २४४६।

११ जनधर्म प्रसारक सभा सग्रह सूची प्र० जनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर

१२ सुराणा लाइब्रेरी (चुरू) सूची छप रही ह।

१३ जन कैटलोगस कैटलोग्राम (स० एच० डी० वेलणकर—भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना मे छप रहा ह।)

१४ जन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, स० मोहनलाल द० देसाई प्र० जन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस, बम्बई, तीसरा भाग छप रहा ह।

१५ १७ जन गुर्जर कवियों भा० १ २ ३ (भाषा साहित्य) सं० मोहनलाल द० देसाई।

(नं० १५ से १७ के ३ ग्रन्थ श्वेताम्बर जन साहित्य की जानकारी के के लिये अत्यन्त ही महत्व के ह।)

२ कलकत्ता संस्कृत कालेज के संग्रहस्थ जैन ग्रन्थों के ३ भाग छपे है।

३ रायल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के संग्रह के जैन ग्रन्थों की एक छोटी सूची छपी है एवं उसके अन्य सूचीपत्रों में भी जैन ग्रन्थों का विवरण प्रकाशित है।

४ रायल एशियाटिक सोसाइटी—बम्बई के सूचीपत्र

५ ओरियन्टल मनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, उज्जैन के सूचीपत्रो में जैन ग्रन्थों का विवरण है।

६ इंडिया आफिस, बर्लिन के केटलौग, राजेन्द्रमित्र के केटलौग, तंजोर, मद्रास काश्मीर बनारस, आदि के सूचीपत्र।

७ पीटर्सनकी ६ रिपोर्ट, भांडारकर की ६, कीलहार्न की ३, बूल्हर की ८ काथवटे की २ में अनेक जैन भंडारों की प्रतियों का विवरण प्रकाशित हुआ है।

पूना से जिनरत्न कोश नामक एक महद् सूची प्रकाशित हुई है जो महत्वपूर्ण है।

[पृष्ठ ७० का शेष]

इन वर्णन से यह ज्ञात हो जायगा कि केवल लिखित-मुद्रित ग्रन्थों में से अवतरण लेकर उनके आधार से निबन्ध लिख देना इतना ही संशोधन का अर्थ नहीं है। बल्कि प्रतियों की प्राचीनता का यथावत मूल्यांकन करके तदनुसार पाठशुद्धि की व्यवस्था करना और उस उस विषय से सम्बद्ध सब बातों की गवेषणा करना एवं संशोधन की आधारभूत प्राचीन सामग्री की खोज, उसकी सुरक्षा एवं सर्वोपयोगी सुलभता की दृष्टि से व्यवस्था इत्यादि बातों का भी उसमें समावेश होता है।

मुनि श्री की साधना जैन साहित्य को तो प्रकाश में लाएगी ही, साथ ही भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के एक अज्ञात अध्ययन को प्रकट करेगी।

उनके द्वारा सम्पादित आगमों के संस्करण जैन परम्परा की अमूल्य निधि होंगे।

आगमों का उपयोग करना चाहते है, इससे उन्हें सुविधा हो जाएगी। आगमों का सुलभ एवं शुद्ध-पाठ संस्करण न होने के कारण विद्वान लोग उन्हें नहीं देख पाते और इतिहास तत्त्वज्ञान तथा आगमों में आए हुए अन्य विषयों से संबन्ध रखने वाली बहुत सी बातें अस्पष्ट एवं अपर्यालोचित रह जाती है। डॉ० द्विवेदी ने अपभ्रंश साहित्य की ओर लक्ष्य खींचा। डा० अग्रवाल ने बताया—यदि आप लोग चाहते है कि विद्वज्जगत् जैन साहित्य की ओर आकृष्ट हो तो सबसे पहले जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण इतिहास तैयार होना चाहिए। इसी प्रकार जैन विचारधारा का भी क्रमबद्ध इतिहास समय की मांग है। जैन विशेषनामों का कोश भी उतना ही आवश्यक है। इससे विद्वानों को जैन साहित्य का आलोडन करने में सुविधा हो जाएगी। डॉ० अग्रवाल की योजना निम्नलिखित छह भागों में विभक्त थी —

१ व्यक्तिवाचक शब्दकोश (Dictionary of Proper Names)—लङ्का के डॉक्टर मलाल शेखर ने (Dictionary of Pali Proper Names) बनाई है। उससे विद्वानों के लिए बौद्ध साहित्य का अध्ययन सुगम हो गया है। उसी पद्धति पर अर्द्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के समस्त जैन साहित्य में आए हुए व्यक्तिवाचक एवं भौगोलिक शब्दों का परिचय देते हुए एक कोश तैयार करना चाहिए। इसके लिए कम से कम चार विद्वानों को चार वर्ष तक लगातार काम करना होगा। ग्रन्थ के निर्माण में लगभग ५००००) पचास हजार रुपए खर्च होंगे। उसके बाद प्रकाशन के लिए २५०००) पच्चीस हजार की आवश्यकता होगी।

२ जैनदर्शन और धार्मिक विचारधारा का क्रमबद्ध इतिहास (History of Jaina Philosophy and religion) जिस प्रकार सर राधाकृष्णन ने "हिस्ट्री आफ इंडियन फिलोसोफी" तैयार की है, कुछ वैसी ही वस्तु दो हजार पृष्ठों में जैन दर्शन एवं धर्म के लिए तैयार होनी चाहिए। इस रूप में जैनदर्शन के सामने आने पर न केवल जैन समाज के लिए यह वस्तु अत्यन्त उपयोगी होगी, बल्कि भारतीय दर्शन की जो इतिहास कथा है उसमें जैन दर्शन अत्यन्त समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। वस्तुतः आने वाले समय में जैन दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण की व्याख्या करने के कारण यह ग्रन्थ एक विशेष स्थान की पूर्ति करेगा।

यह कार्य संस्था भवन में नियमित रूप से विद्वानों को नियुक्त करने की अपेक्षा विद्वानों के स्वतन्त्र प्रयत्न के द्वारा अधिक अच्छी तरह पूरा हो सकता

सस्था के मन्त्री लाला हरजसराय जी तीनों विद्वानों के विचारों को लेकर अमृतसर गए और अपने साथियों के साथ ऊहापोह किया। समिति की मर्यादा तथा साथियों के उत्साह को देखकर उन्होंने योजना के दूसरे या तीसरे भाग को हाथ में लेने की स्वीकृति प्रकट की और डाक्टर अग्रवाल को पत्र लिखा कि इन दोनों में से किसे हाथ में लिया जाय इस पर वे अपना निर्णय दें और भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करें।

तदनुसार ता० २५ जनवरी १९५३ को डा० अग्रवाल की अध्यक्षता में विद्याश्रम की प्रवृत्तियों से संबन्ध रखने वाले सज्जनों की एक बैठक हुई और उसमें जैन साहित्य के पूर्णाङ्ग इतिहास (योजना नं० ३) को हाथ में लेने का निश्चय किया गया। उसी में यह भी निश्चय हुआ कि योजना पर विचार करने के लिए विद्वानों की एक परिषद् बुलाई जाय और उसके लिए उनतीस नाम चुने गए। आवश्यकतानुसार और विद्वानों को बुलाने की भी गुंजायश रखी गई। मार्ग व्यय के लिए बाहर से आने वाले विद्वानों को तीन सेकेंड क्लास का किराया देना उचित समझा गया। परिषद् के लिए स्थान तथा समय सबन्धी निर्णय के लिए उसे अहमदाबाद में मुनि श्री पुण्यविजय जी की सुविधानुसार रखना उचित समझा गया।

ता० २७-१-५२ को फिर एक बैठक हुई जिसमें साहित्य के इतिहास को भाग तथा खण्डों में विभाजित किया गया और प्रत्येक खण्ड के लिए विस्तृत रूपरेखा बनाने तथा तत्सम्बन्धी कार्य को हाथ में लेने के लिए कुछ विद्वानों के नाम निर्दिष्ट किए गए। विभाजन की रूपरेखा निम्नलिखित है —

भाग १—(Vol 1) आगमिक साहित्य का इतिहास

(खंड १) मूल आगम (अंग-अंगेतर) और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और टबाओं का ऐतिहासिक क्रम से सांगोपांग परिचय।

—पं० बेचरदास जी

(खंड २) षट खंडागम, कषाय पाहुड, एवं महाबन्ध और उन पर रचित धवला, जयधवला, महाधवला आदि समस्त टीकाओं का परिचय।

—डॉ० हीरालाल जैन

नोट—दोनो खंड एक हजार पृष्ठ के लगभग होंगे।

(खंड ३) कर्मशास्त्र, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, गोम्मटसार, प्राचीन और नवीन कर्मग्रन्थ तथा समस्त कर्मसाहित्य। —पं० फूलचन्द्र जी

आने लगीं। इन्हीं दिनों प० सुखलाल जी वशाली महोत्सव की अध्यक्षता के लिए बगाली जाते हुए काशी आए और लगभग १५ दिन ठहरे। योजना संबंधी सभी प्रश्नों एव पूर्व तयारी की चर्चा की। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि विद्वत्परिषद् में मुनिश्री पुण्यविजय जी और मुनि श्री जिनविजय जी की उपस्थिति आवश्यक ह। गर्मी तथा लू के कारण काशी में ऋतु भी कठोर होती जा रही थी। विद्वत्परिषद में विचार के लिए कुछ पूव भूमिका भी आवश्यक थी। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर उन्होंने सलाह दी कि विद्वत्परिषद को अहमदाबाद में प्राच्यविद्या परिषद् (Oriental Conference) के साथ रखा जाय। उन दिनो डाक्टर अग्रवाल कार्यवश बाहर गए थे। दूसरी ओर स्वास्थ्य संबंधी कारणों से पण्डित जी शीघ्र रवाना होना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने विचार एक पत्र में लिखित रूप से दे गए और अहमदाबाद के लिए रवाना हो गए।

पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार पण्डित जी परिषद् की तिथि तक रुकने वाले थे। इसलिए डा० अग्रवाल निश्चिन्त थे। उन्हें पारिवारिक परिस्थिति वश बाहर रुकना पड़ा। दूसरी ओर मूडबिद्री, कोल्हापुर, अहमदाबाद, पूना इत्यादि सुदूर प्रदेशों से आने वाले विद्वानों को निश्चित सूचना भेजनी आवश्यक थी। परिणामस्वरूप ता० ६-४-५३ को एक अत्यावश्यक बठक बुलाई गई और उसमें परिषद् को स्थगित करने का निश्चय किया गया और आमंत्रित सदस्यों को तार द्वारा सूचना दे दी गई। यहां इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक ह कि परिषद् के स्थगन का अथ किसी प्रकार का काय शथिल्य नहीं था। काम को अत्यधिक सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए ही ऐसा किया गया। काय में वेग होना चाहिए किन्तु उस का सुविचारित होना भी आवश्यक ह।

वर्तमान स्थिति

(१) भाग—आगम साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—मूल आगम और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और और टबाओं का ऐतिहासिक क्रम से सांगोपांग परिचय।

इस खण्ड के लिए पं० बेचरदास जी को लिखा गया। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया ह। पण्डित जी ने आगम संबंधी लेखन

लगने लगीं। इन्हीं दिनों पं० सुखलाल जी वैशाली महोत्सव की अध्यक्षता के लिए वैशाली जाते हुए काशी आए और लगभग १५ दिन ठहरे। योजना संबन्धी सभी प्रश्नों एवं पूर्व तैयारी की चर्चा की। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि विद्वत्परिषद् में मुनिश्री पुण्यविजय जी और मुनि श्री जिनविजय जी की उपस्थिति आवश्यक है। गर्मी तथा लू के कारण काशी में ऋतु भी कठोर होती जा रही थी। विद्वत्परिषद में विचार के लिए कुछ पूर्व भूमिका भी आवश्यक थी। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर उन्होंने सलाह दी कि विद्वत्परिषद को अहमदाबाद में प्राच्यविद्या परिषद (Oriental Conference) के साथ रखा जाय। उन दिनों डाक्टर अग्रवाल कार्यवश बाहर गए थे। दूसरी ओर स्वास्थ्य संबन्धी कारणों से पण्डित जी शीघ्र रवाना होना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने विचार एक पत्र में लिखित रूप से दे गए और अहमदाबाद के लिए रवाना हो गए।

पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार पण्डित जी परिषद् की तिथि तक रुकने वाले थे। इसलिए डा० अग्रवाल निश्चिन्त थे। उन्हें पारिवारिक परिस्थिति वश बाहर रुकना पड़ा। दूसरी ओर मूडबिद्री, कोल्हापुर, अहमदाबाद, पूना इत्यादि सुदूर प्रदेशों से आने वाले विद्वानों को निश्चित सूचना भेजनी आवश्यक थी। परिणामस्वरूप ता० ६-४-५३ को एक अत्यावश्यक बैठक बुलाई गई और उसमें परिषद् को स्थगित करने का निश्चय किया गया और आमन्त्रित सदस्यों को तार द्वारा सूचना दे दी गई। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि परिषद के स्थगन का अर्थ किसी प्रकार का कार्य शैथिल्य नहीं था। कार्य को अत्यधिक सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए ही ऐसा किया गया। कार्य में वेग होना चाहिए किन्तु उस का सुविचारित होना भी आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति

(१) भाग—आगम साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—मूल आगम और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और और टब्बाओं का ऐतिहासिक क्रम से सांगोपांग परिचय।

इस खण्ड के लिए पं० बेचरदास जी को लिखा गया। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है। पण्डित जी ने आगम संबन्धी लेखन

दूसरा खण्ड—लाक्षणिक साहित्य—व्याकरण, कोष, अलङ्कार छन्द, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद संगीत शिल्प मुद्रा, रत्नशास्त्र ऋतुविज्ञान शकुन, सामुद्रिक, लक्षणशास्त्र, धातु उत्पत्ति (Metallurgy) इत्यादि।

इसके लिए डॉ० ए एन उपाध्ये को लिखा गया था, उन्होंने अन्य सभी प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया किन्तु दूसरे काम में व्यस्त होने के कारण मुख्य लेखन का उत्तरदायित्व लेने में असमर्थता प्रकट की। परिणाम स्वरूप बड़ोदा के पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी को लिखा गया। पण्डित जी ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट बड़ोदा में दीर्घकाल तक अनुशीलन का काम करते रहे है तथा जन भण्डारों एवं विविध साहित्य के पुराने अभ्यासी है। हर्ष की बात है कि वृद्धावस्था होने पर भी पण्डित जी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है और अपने अनुभव का लाभ देने का आश्वासन दिया है। आशा है, इस साहित्य की रूपरेखा भी शीघ्र ही प्राप्त हो जाएगी।

(३) भाग—साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—पुराण चरित कथा, प्रबन्ध साहित्य।

दूसरा खण्ड—काव्य नाटक, चम्पू स्तुति स्तोत्र और साहित्यिक टीकाएं।

इसके लिए डा० भोगीलाल सांडेसरा को लिखा गया था। उन्होने दोनों खण्डों की रूपरेखा भेज दी है।

(४) भाग—लोकभाषाओं का साहित्य

पहला खण्ड—अपभ्रंश साहित्य। पहले वाली रूपरेखा में अपभ्रंश साहित्य को अलग स्थान न देकर तत्तद् विषयों के साहित्य में अन्तर्भाव कर लेने का निश्चय किया गया था। किन्तु ता० २८-४-५३ की बठक में यह निर्णय किया गया कि अपभ्रंश साहित्य का खण्ड अलग रखा जाय। इसकी रूपरेखा के लिए श्री केशवलाल काशीप्रसाद शास्त्री, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद का निर्देश किया गया है। उनकी स्वीकृति प्राप्त की जा रही है।

दूसरा खण्ड—हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि।

इसके लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा ने रूपरेखा भेजी है। हिन्दी साहित्य के लिए भी नाथूराम जी प्रेमी को लिखा गया था। उन्होंने जबलपुर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में पढ़ने के लिए हिन्दी जन साहित्य का इतिहास नामक विस्तृत निबन्ध लिखा था। उसके बाद ३०-३५ वर्षों में जो नई खोज

के लिए सम्भावित प्रश्नों की एक विस्तृत सूची बनाकर भेजी है। उन प्रश्नों को पाँच भागों में बाँट कर पाँच अधिकारी लेखकों के नाम सुझाए हैं। सूची इसी अंक में अन्यत्र छापी है। उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

१ इतर साहित्य के साथ आगमों का सम्बन्ध—इस विषय से सम्बन्ध रखने वाले सभी प्रश्न— पं० बेचरदास जी
२ भाषा विज्ञान संबन्धी प्रश्न—डॉ० प्रबोध पण्डित
३ सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक प्रश्न—डॉ० वा० श० अग्रवाल
४ सामाजिक प्रश्न—डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
५ दार्शनिक विचार तथा विकास—प्रो० दलसुख भाई मालवणिया
डा० नथमल टाँटिया

निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीका साहित्य के लिए उन्होंने मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज का नाम सुझाया है।

विभागीय लेखकों की स्वीकृति के लिए पत्रव्यवहार किया जा रहा है। इस प्रकरण के अध्यायों की रूपरेखा पण्डित जी शीघ्र भेजने वाले हैं।

दूसरा खण्ड—षट् खण्डागम, कषायपाहुड, एवं महाबन्ध और उन पर रचित धवला, जयधवला, महाधवला आदि समस्त टीकाओं का परिचय।

इसके लिए डॉ० हीरालाल जैन नागपुर की स्वीकृति तथा रूपरेखा प्राप्त हो गई है।[1]

तीसरा खण्ड—कर्म शास्त्र, कम्मपयडी पंचसंग्रह गोम्मटसार, प्राचीन तथा नवीन कर्मग्रन्थ तथा समस्त कर्म साहित्य।

इसके लिए पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री की स्वीकृति और रूपरेखा प्राप्त हो चुकी है। इस की रूपरेखा तैयार है।

चौथा खण्ड—आगमिक प्रकरण साहित्य। इसकी भी रूपरेखा तैयार है।

(२) भाग-दार्शनिक और साम्प्रदायिक साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—ज्ञान प्रमाण, नय, निक्षेप संबन्धी तथा द्रव्य गुण पर्याय संबन्धी-साहित्य का परिचय। रूपरेखा तैयार है।

---

[1] इसकी रूपरेखा इसी अंक के अन्त में दी गई है।

दूसरा खण्ड—लाक्षणिक साहित्य—व्याकरण, कोष, अलङ्कार छन्द, ज्योतिष, गणित आयुर्वेद, संगीत, शिल्प मुद्रा रत्नशास्त्र, ऋतुविज्ञान शकुन, सामुद्रिक, लक्षणशास्त्र धातु उत्पत्ति (Metallurgy) इत्यादि।

इसके लिए डॉ० ए एन उपाध्ये को लिखा गया था उन्होंने अन्य सभी प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया किन्तु दूसरे काम में व्यस्त होने के कारण मुख्य लेखन का उत्तरदायित्व लेने में असमर्थता प्रकट की। परिणाम स्वरूप बड़ोदा के प० लालचन्द्र भगवान् गांधी को लिखा गया। पण्डित जी ओरिएण्टल इंस्टिटयूट बड़ोदा में दीर्घकाल तक अनुशीलन का काम करते रहे हैं तथा जैन भण्डारों एवं विविध साहित्य के पुराने अभ्यासी हैं। हर्ष की बात है कि वृद्धावस्था होने पर भी पण्डित जी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है और अपने अनुभव का लाभ देने का आश्वासन दिया है। आशा है, इस साहित्य की रूपरेखा भी शीघ्र ही प्राप्त हो जाएगी।

(३) भाग—साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—पुराण चरित, कथा प्रबन्ध साहित्य।

दूसरा खण्ड—काव्य नाटक, चम्पू स्तुति स्तोत्र और साहित्यिक टीकाएं।

इसके लिए डॉ० भोगीलाल सांडेसरा को लिखा गया था। उन्होंने दोनों खण्डों की रूपरेखा भेज दी है।

(४) भाग—लोकभाषाओं का साहित्य

पहला खण्ड—अपभ्रंश साहित्य। पहले वाली रूपरेखा में अपभ्रंश साहित्य को अलग स्थान न देकर तत्तद् विषयों के साहित्य में अन्तर्भाव कर लेने का निश्चय किया गया था। किन्तु ता० २८-४-५३ की बैठक में यह निर्णय किया गया कि अपभ्रंश साहित्य का खण्ड अलग रखा जाय। इसकी रूपरेखा के लिए श्री बेचरदास जीवराज(?) प्राणीप्रसाद शास्त्री, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद का निर्देश किया गया है। उनकी स्वीकृति प्राप्त की जा रही है।

दूसरा खण्ड—हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि।

इसके लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा ने रूपरेखा भेजी है। हिन्दी साहित्य के लिए श्री नाथूराम जी प्रेमी को लिखा गया था। उन्होंने जबलपुर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में पढ़ने के लिए हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास नामक विस्तृत निबन्ध लिखा था। उसके बाद १०-१५ वर्षों में जो नई खोज

हुई है उसको सम्मिलित करके अब उन्होंने नया ग्रन्थ लिखने का प्रारम्भ किया है। वृद्धावस्था तथा अन्य व्यस्तताओं के कारण वे पूरा काम अपने हाथ से न कर सकेंगे किन्तु किसी योग्य सहायक को रख कर अपने मार्गदर्शन में सारा काम करा सकेंगे। समिति ने उनकी सुविधानुसार व्यवस्था कर देने का वचनासन देते हुए कार्य को हाथ में लेने की प्रार्थना की है।

राजस्थानी के लिए नाहटा जी योग्यतम व्यक्ति हैं। गुजराती के लिए भी ये स्वयं लिखेंगे या योग्य व्यक्ति का सुझाव करेंगे।

तीसरा खण्ड—कन्नड, तामिल, तेलुगु आदि दक्षिणी भाषाओं का साहित्य।

इसके लिए भी पं० भुजबली शास्त्री ने रूपरेखा बनाकर भेजी है, साथ ही कुछ लेखकों का नाम सुझाया है।

तामिल जैन साहित्य पर श्री ए० चक्रवर्ती की लेखमाला जैन सिद्धान्त भास्कर में प्रकाशित हुई है। उससे भी सहायता ली जाएगी।

भावी कार्यक्रम

अहमदाबाद में प्राच्यविद्या परिषद् (Oriental Conference) अक्टूबर में होगी। उसी समय जैन विद्वानों का भी एक सम्मेलन किया जाएगा जो योजना को अन्तिम रूप देगा। उससे पहले हमें नीचे लिखी तैयारी कर लेनी है —

१ विभिन्न खण्डों के अन्तर्गत विभागीय लेखकों से स्वीकृति प्राप्त करना।
२ लेखक द्वारा अपेक्षित सूची या अन्य सामग्री को जुटाना।
३ परिषद् में विचारणीय प्रश्न तथा अन्य बातों का ऊहापोह द्वारा एक निश्चित भूमिका पर लाना।
४ ग्रन्थ से संबन्ध रखने वाली अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना।
५ साहित्यिक पत्रों में आए जैन साहित्य संबन्धी लेखों की सूची बनाना।

हम चाहते हैं परिषद् में योजना अपना अन्तिम रूप ले ले और तत्काल कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय।

रूपरेखाएं

(१) भाग—आगमिक साहित्य

पहला खण्ड—अर्धमागधी आगम ([illegible])

दूसरा खण्ड—दिगम्बर आगम साहित्य—

कर्म प्राभृत और कषाय प्राभृत तथा उनकी टीकाएँ

(क) कम प्राभृत (षट्खण्डागम)

१ कमप्राभृत की आगमिक परम्परा

२ सूत्र और उनकी टीकाओ के रचियता और उनका रचना काल

३ सूत्र और टीकाआ की भाषा व रचना शली

४ विषय परिचय—

खण्ड–१ जीवट्ठाण २ खुद्दाबंध ३ बन्धस्वामित्वविषय ४ वेदना
५ वगणा ६ महाबंध

(प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेशबंध)

(ख) कषाय प्राभृत (पेज्जदोस पाहुड)

१ कषाय प्राभृत की आगमिक परम्परा

२ क० प्रा० के गाथाकार व टीकाकार और उनका रचनाकाल

३ गाथा व टीकाओं की भाषा और रचनाशली

४ विषय परिचय

(१) पेज्जदोस विभक्ति (२) स्थिति विभक्ति (३) अनुभाग विभक्ति (४) प्रदेश विभक्ति (५) बंधक (६) वेदक (७) उपयोग (८) चतु स्थान (९) व्यञ्जन (१०) दशन मोहोपश (११) दशन मोह क्षपणा (१२) देशविरत (१३) सयम लब्धि (१४) चरित्र मोहोपश (१५) चारित्र मोह + क्षपणा

तीसरा खण्ड—कम साहित्य

१ कर्मवाद की पृष्ठभूमि

१ वैदिक साहित्य और कमवाद

२ पुराण साहित्य और कमवाद

३ नीति ग्रन्थ और कमवाद

४ कारण मीमांसा और कमवाद

स्वभाव, काल, नियति, ईश्वर, कम,

५ जगदुत्पत्ति की विविध मान्यताएँ और कमवाद

६ पुनजन्म की विविध मान्यताएँ और कमवाद

७ आधुनिक मत और कमवाद डार्विनिज्म, मेंडेलिज्म आदि

८ समीक्षा

२ कर्म साहित्य और उसका क्रमिक विकास

१ अङ्गसाहित्य और पूर्व साहित्य

२ मूल ग्रन्थ और उनकी चूर्णियाँ

३ टीका ग्रन्थ

४ अन्य साहित्य—कर्म प्रकृति, पञ्चसंग्रह (दि० श्वे०), कर्मग्रन्थ (प्रा० अ०), कर्मकाण्ड आदि

३ कर्ममीमांसा

अन्य आवश्यक विषय जिनका प्रस्तुत खण्ड में विवेचन करना इष्ट होगा।

चौथा खण्ड—आगमिक प्रकरण साहित्य

प्र० १ आगमिक प्रकरणों का उद्भव

प्र० २ आगमसार और द्रव्यानुयोग संबंधी साहित्य

प्र० ३ औपदेशिक साहित्य

प्र० ४ योग और अध्यात्म

प्र० ५ अनगार और अगार के आचार संबंधी साहित्य

प्र० ६ विधि विधान कल्प-मंत्र तंत्र संबंधी साहित्य

प्र० ७ पर्वों और तीर्थों के संबंध में

(२) भाग—दर्शन और लाक्षणिक साहित्य

पहला खण्ड—दार्शनिक साहित्य

प्र० १ भूमिका—दार्शनिक साहित्य रचना की भूमिका

(क) आगमों का प्रभाव (ख) जैनेतर दार्शनिक साहित्य का प्रभाव

(ग) अन्य प्रभाव

प्र० २ विषय प्रवेश

(क) अनेकान्तवाद (ख) प्रमाण प्रमेय विचार—प्राचीन और नवीन

(ग) सांप्रदायिक खण्डन मंडन (घ) अन्यतर दार्शनिक टीका ग्रन्थ

प्र० ३ वि० १०० से वि० ६५०

आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, भद्रबाहु पूज्यपाद सिद्धसेन समन्तभद्र, मल्लवादी, जिनभद्र सिंहसूर आदि के ग्रन्थ

प्र० ४ ६५१—१०००

हरिभद्र, अकलंक, वीरसेन कुमारनंदी पात्र केसरी, सिद्धसेन गणि, विद्यानन्द, शाकटायन, अनन्तवीर्य (१) माणिक्यनन्दि, सिद्धर्षि, देवसेन आदि

प्र० ५ १००१—१२५०

सोमदेव, अभयदेव, माणिक्यनंदी, कनकनंदी जयराम, हरिषेण, अमितगति, जिनेश्वर, वादिराज, प्रभाचन्द्र, पद्मसिंह, कीर्ति, शान्त्याचार्य, आनन्दसूरि अमरसूरि, अनन्तवीर्य, वसुनन्दी, चन्द्रप्रभ, मुनिचन्द्र मलधारी हेमचन्द्र, वादीदेव, अनन्तवीर्य (२), शुभचन्द्र, हेमचन्द्र, मलयगिरि, पार्श्वदेव, चन्द्रसूरि, समन्तभद्र (२), श्रीचन्द्र, जिनदत्त, देवभद्र, रत्नप्रभ अमृतचन्द्र देवभद्र यशोदेव, यशोवर्धन, रामचन्द्र गुणचन्द्र, रविप्रभ, चन्द्रसेन, प्रद्युम्न, चक्रेश्वरसूरि, जिनपति

प्र० ६ १२५१—१७००

परमानन्द, जिनपाल, माघनंदी धर्मघोष नरसिंह, आशाधर महेन्द्रसूरि महाशांतिदास, अभयतिलक, प्रबोधचन्द्र, मल्लिषेण जिनप्रभ, राजशेखर, सोमतिलक, ज्ञानचन्द्र, सूरचन्द्र (१६७९)

ज्ञानकलश, जयसिंहसूरि, मेरुतुंग जयशेखर साधुरत्न, गुणरत्न, धर्मभूषण, भुविसुंदर, जिनवर्धन जिनमंडन साधुविजय, भुवनसुंदर, सिद्धांतसार, ज्ञानभूषण, श्रुतसागर, सौभाग्यसागर, विजयदानसूरि, हीरविजय

धर्मसागर धर्नाव शुभचन्द्र (२), राजमल्ल, पद्मसागर दयारत्न, शांतिचन्द्र, सिद्धिचन्द्र, शुभविजय, भावविजय रत्नचन्द्र, राजहंस, विमलदास गुणविजय (गुणविनय)

प्र० ७ १७९१—२०००

विनय विजय, यशोविजय, मानविजय दानविजय, यशस्वतसागर, मेघविजय, अमृतसागर, भावप्रभ, देवचन्द्र, मयाचन्द्र, भोजसागर क्षमाकल्याण, वाचकसायम, गंभीरविजय, आनन्दसागर, मंगलविजय*

(२) भाग—साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—चारित्रात्मक तथा कथात्मक साहित्य

(१) जैन चारित्रात्मक तथा कथात्मक साहित्य के विषय में प्रास्ताविक

डा० उपाध्ये।

* कई ऐसे आचार्य हैं जिनका समय मालूम नहीं हो सका और कई ऐसे ग्रंथ हैं जिनके लेखक का पता नहीं चला। इन सबका निर्देश करना इस भाग में तभी संभव होगा जब वे ग्रंथ देखे जायें। देखकर यथासंभव यथाशक्ति निर्णय करके उन्हें यथास्थान रख देना चाहिए।

२ राजस्थानी—साहित्य के निर्माता जन ग्रंथकार व उनके ग्रंथ
१ प्रारम्भ—ग्रंथकार १३ वीं से १६ वीं का प्रारम्भ
(प्राचीन गुजराती राजस्थानी का साहित्य)
२ उत्थानकाल—सोलहवीं सत्रहवीं अठारहवीं सदी
३ अवनतिकाल—१९ वीं से २० वीं के पूर्वार्द्ध तक
३ राजस्थानी ग्रंथ, ग्रंथकार व उनकी रचनाएं
१ ग्रंथ का प्रारम्भ/व प्रकार (प्रारम्भ, टीकाएं वर्णनात्मक)
१४ वीं से १६ वीं पूर्वार्द्ध
२ १७ वीं से २० वीं के प्रारम्भ तक के ग्रंथकार
उपसंहार

(ख) गुजराती जैन साहित्य

१ भूमिका—१ गुजरात से जनों का संबंध
२ गुजरात में जन साहित्य रचना का प्रारम्भ
३ गुजराती एव राजस्थान की भाषागत एकता
४ गुजराती का पृथक्करण
गुजराती भाषा के जन कवि व उनके ग्रंथ
१ सोलहवीं से १८ वीं सदी का गुजराती जन साहित्य
२ १९ वीं से २० वीं तक
गुजराती गद्य ग्रंथ—
आरम्भ से २ वीं तक
उपसंहार

(ग) हिन्दी जैन साहित्य

१ भूमिका—१ हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—अपभ्रंश से परम्परा
हिन्दी प्रदेश
२ हिन्दी जन साहित्य का प्रारंभ, विकास प्रकार, पद्यादि
३ विविध विषयक हिन्दी जन साहित्य
२ हिन्दी जन साहित्यकार व उनके ग्रंथ—
१ सोलहवीं से—(दि० श्वे०)
२ १८ वीं १९ वीं
३ २० वीं से वर्तमान तक

३ जैन हिन्दी गद्य—प्रारम्भ विकास

१ सत्रहवीं—१८ वीं

२ १९ वीं से २० वीं

तीसरा खण्ड—कन्नड भाषा का इतिहास

१ कन्नड भाषा की प्राचीनता

२ कन्नड में जैन साहित्य

(१) आगम (क) तत्त्व (ख) आचार

(क) तत्त्व सिद्धान्त, अध्यात्म, न्याय, योग, कर्म साहित्य इत्यादि।

(ख) आचार व्रतविधान, आराधना, प्रतिष्ठा पाठ, स्तोत्र भजन, क्रिया काण्ड इत्यादि।

(२) साहित्य (क) लौकिक (ख) धार्मिक

(क) लौकिक रामायण भारत, कादंबरी, लीलावती, इत्यादि।

(ख) धार्मिक पुराण, काव्य, नाटक, चम्पू, चरित, कथा, प्रबन्ध गीति, सुभाषित, समीक्षा, स्तुति स्तोत्र इत्यादि।

(३) लाक्षणिक व्याकरण कोश अलंकार छंद इत्यादि।

३ शास्त्र (वैज्ञानिक) (क) ज्योतिष (ख) गणित (ग) आयुर्वेद (घ) शकुन (ङ) सामुद्रिक इत्यादि।

४ कलाएं (क) वास्तुशास्त्र (ख) नृत्यशास्त्र (ग) शिल्पशास्त्र (घ) संगीतशास्त्र (ङ) रत्नशास्त्र इत्यादि।

५ ऐतिहासिक (क) चरित्र (ख) शासन इत्यादि।

जैन साहित्य और अनुशीलन

वर्तमान अनुयायियों की संख्या पर ध्यान दिया जाय तो जैन समाज एक छोटा सा समाज है। नई जनगणना के अनुसार इस के सदस्य चौबीस लाख से अधिक नहीं है। किन्तु भारत के जनमानस पर इस परम्परा की जो गहरी छाप है उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और कच्छ एवं सौराष्ट्र से लेकर बंगाल तक इसके मानने वाले महत्वपूर्ण स्थान रखते है। भारतीय व्यवसाय तथा उद्योग धन्धों में तो अग्रणी स्थान है ही, स्वाधीनता सग्राम में भी वे किसी से पीछे नहीं रहे।

किन्तु जैन परम्परा की सबसे अधिक मूल्यवान देन है उसका साहित्य। ईसा के ८०० वर्ष पहले भगवान पार्श्वनाथ से लेकर आजतक जैन साहित्य का भण्डार बराबर बढ़ता रहा है। आर्यों की इस भूमि ने इतने लम्बे काल में जो क्रान्तियाँ की परस्पर विचारों के संघर्ष से जीवन के जो नए सूत्र प्राप्त किए, विदेशियों के सम्पर्क में आकर जो लेन देन की, सम्प्रदायवाद तथा खण्डन मण्डन के युग में पड़कर जिस अमृत और विष की सृष्टि की, वे सब इस साहित्य में प्रतिबिम्बित है। न्याय, व्याकरण साहित्य, दर्शन अर्थशास्त्र, धर्म मूर्तिकला, स्थापत्य, शिल्पशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, ज्योतिष, गणित आयुर्वेद पशुशास्त्र आदि एक भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर जैन आचार्यों की महत्वपूर्ण रचनाएँ न हों। जहाँ सांस्कृतिक देन का प्रश्न है जैन परम्परा बौद्ध और वैदिक परम्पराओं के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चली है। इसने भारतीय मस्तिष्क को अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी से सींचा है। भावनाओं के सात्विक विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है तथा जन साधारण को दया परोपकार, भगवद्भक्ति, त्यागी तथा तपस्वियों की सेवा, प्राणिमात्र से मैत्री आदि समाज तथा धर्म के मूल सिद्धान्तों की ओर प्रेरित किया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस विशाल साहित्य का अनुशीलन जैसा चाहिए था, अभी नहीं हुआ। अब भी सैकड़ों ग्रन्थ अन्धकार में छिपे हुए है जो सामने आने पर भारतीय साहित्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाल सकते है। जो छप चुके है उनके भी प्रामाणिक संस्करण नहीं निकले। भाषा, दर्शन इतिहास, अलङ्कार, स्थापत्य आदि शास्त्रों के विकास की दृष्टि से उनका अध्ययन तो बिलकुल ही नहीं हुआ।

ज्ञानहीन होने पर कोई कहने वाला नहीं है।" इसी प्रकार गृहस्थ के पास पैसा होना चाहिए, ज्ञान रहे या न रहे। किन्तु ब्राह्मण समाज में आज तक विद्या की अपेक्षा रही है। मिथिला में एक कहावत है —

अचीकमत यो न जानाति यो न जानात्यपस्पशा।
अजर्घा यो न जानाति तस्मै कन्या न दीयते।

"अचीकमत आदि व्याकरण के ऐसे प्रयोग है, जिन पर विद्वानों का शास्त्रार्थ होता था। शादी करने से पहले उन का परिज्ञान आवश्यक माना जाता था। क्या जैन समाज भी केवल विद्या के बल पर प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले वर्ग की रचना कर सकता है?

कुछ सुझाव—

जैन साहित्य के विकास के लिए अभी जो प्रयत्न हो रहे हैं उनमें कोई व्यवस्था नहीं है। एक ग्रन्थ कई स्थानों से छप जाता है तो दूसरे ग्रन्थ यों ही पड़े रह जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि सभी प्रकाशन संस्थाएँ मिल कर एक योजना बना लेवें और आपस में काम को बाँट लेवें। इससे समय, धन और शक्ति का दुरुपयोग बच जाएगा। योग्य हाथों में योग्य कार्य देने से कार्य भी सुन्दर होगा। इसके लिए हम नीचे लिखे सुझाव समाज के सामने रखना चाहते हैं —

१—श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापंथी परम्परा से संबंध रखने वाले जितने ग्रंथ हैं उनकी एक सूची बनाई जाय। उसमें नीचे लिखी बातों का उल्लेख रहे —

१—ग्रन्थ का नाम।	५—विषय।
२—कर्ता का नाम।	६—प्रकाशित या अप्रकाशित।
३—समय।	७—उपलब्धि स्थान।
४—भाषा।	

२—सूची तयार होने के बाद विद्वानों की एक समिति प्रकाशन योग्य ग्रन्थ तथा उनके लिए उपयुक्त सम्पादकों का चुनाव करे।

३—यदि सभी ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति (Jain Text Society) के रूप में एक संस्था बन जाय तो अत्युत्तम है अन्यथा विभिन्न प्रकाशन संस्थाएँ उन ग्रन्थों को आपस में बाँट लेवें।

४—सम्पादन तथा प्रकाशन के लिए समय की अवधि पहले से निश्चित कर दी जाय।

इस प्रकार सामूहिक प्रयत्न द्वारा थोड़े समय में अधिक कार्य हो सकता है। आशा है, विभिन्न संस्थाएँ अपना इस ओर ध्यान देंगी। सूची निश्चित हो जाय तो कोई एक संस्था भी ले सकती है।

श्वेताम्बर जैन आगमों के प्रकाशन के लिए कई संस्थाओं की ओर से प्रयत्न हो रहा है। उसे भी व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। साम्प्रदायिकता के व्यामोह में पड़कर धन और शक्ति का दुरुपयोग न करना चाहिए।

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर ने निम्नलिखित काम अपने हाथ में लिए हैं —

१—जैन साहित्य का इतिहास।

२—जैन तत्त्वज्ञान का इतिहास।

३—पारिभाषिक एवं व्यक्तिवाचक शब्द कोष।

इन कार्यों के लिए विद्वानों की एक समिति बन गई है और प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रत्येक विषय अधिकारी विद्वान् के द्वारा लिखा जाय।

इसके अतिरिक्त आगमों के पुनरुक्त पाठों को कम करके उनका एक जिल्द में एक सुबोध्य एवं सुलभ शुद्ध संस्करण निकालने की आवश्यकता है। इसी का अनुशीलन करने वाले जैन एवं अजैन सभी विद्वानों को सुविधा हो सकेगी। जैन साहित्य का परिशीलन करने वाले भारतीय तथा विदेशी सभी विद्वानों ने इस मांग को प्रकट किया है।

आगमों के विषय में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर मान्यताओं में भेद है। फिर भी बहुत सा साहित्य ऐसा है जो उभयमान्य है। आचार्य कुन्दकुन्द का बहुत सा अंश दिगम्बर ग्रन्थों में आता है, श्वेताम्बरों में प्रचलित आगम और उसके मिलता है। दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि सूत्रों का भी बहुत सा अंश उभयमान्य है। इसी प्रकार कथा साहित्य का बहुत सा भाग है। डा॰ उपाध्ये ने अपने प्रवचनसार की भूमिका (पृ॰ ११ फुटनोट) में इसका निर्देश किया है। प्राकृत अंक में डा॰ जैन का लेख भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। यदि इस प्रकार के उभयमान्य अथवा साहित्य को एक साथ प्रकाशित कर दिया जाय तो हम संसार के सामने ऐसा साहित्य रख सकेंगे जो श्वेताम्बर या दिगम्बर का न होकर अखण्ड जैन समाज का साहित्य होगा। हम भारत जैन [illegible]

सरीखी अखण्ड जैनत्व का प्रचार करने वाली संस्था का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं।

जैन कथा साहित्य का महत्त्व बौद्ध तथा वैदिक कथा साहित्य से भी अधिक है। जैन साधुओं का सम्पर्क मुख्यतया साधारण जनता से रहा है। इस लिए उनकी कथाओं में प्राचीन भारतीय जन जीवन का चित्रण मिलता है। यह भारत का प्राचीन जन-साहित्य है। उसको प्रकाश में लाना भारतीय इतिहास की अमूल्य सेवा होगी। बहुत सी कथाएँ तो फारसी, ग्रीक तथा लटिन साहित्य में ज्यों की त्यों मिलती हैं। राज्याश्रय या अन्य किसी साधन के बिना ये कथाएं किस प्रकार समुद्र यात्रा करके दूर देशों में पहुँची, यह भी एक रोचक कथा है।

जैन देवता जैन गणित जैन स्थापत्य, धर्म दर्शन भाषा विज्ञान आदि विविध विषयों में अनुशीलन के लिए योग्य विद्यार्थी एवं विद्वानों को प्रोत्साहन देना भी साहित्य प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत होना चाहिए।

विश्वविद्यालयों में प्राकृत तथा जैनदर्शन के पाठ्यक्रम का होना भी महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए समाज के अग्रणी व्यक्तियों को प्रयत्न करना चाहिए।

वैदिक परम्परा में महाभारत, पुराण आदि ऐसा विपुल साहित्य है जिसमें श्रमण मार्ग पर विस्तृत रूप से लिखा गया है यह जैन मान्यता से बिल्कुल मिलता है। उन सब की खोज करके जैन धर्म के तत्त्वों का पता लगाना भी जैन अनुशीलन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।

आध्यात्मिक उत्थान के लिए ध्यान, लेश्या, गुणस्थान आदि की मान्यताएँ जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह खेद का विषय है कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान का आज्ञाविचय आदि विस्तार शास्त्रों में मिलता है किन्तु उसका अभ्यास लुप्त हो गया है। बौद्धों में अब भी ध्यान परम्परा चल रही है। हमें अपनी परम्परा को पुनर्जीवित करना चाहिए।

वैशाली इंस्टिट्यूट की स्थापना

बिहार सरकार ने वैशाली इंस्टिट्यूट की योजना को मूर्तरूप देने का निश्चय कर लिया है। इस समाचार से जैन ही नहीं भारती के उपासक समस्त विद्वत्समाज को प्रसन्नता होगी। आशा है, अब यह कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाएगा। संस्था का नाम रखा गया है —

का अपने आप निर्माण हो रहा है। माथुर साहब के सरल एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण दूसरे अधिकारी भी इस कार्य में पर्याप्त रुचि लेने लगे हैं। हाजीपुर के वर्तमान एस० डी० ओ० तथा मजिस्ट्रेट इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं। देहातों में रचनात्मक कार्य के लिए श्री जनार्दन मिश्र, जो वैदिक जी के नाम से ख्यात हैं, का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदाचार्य करके संकुचित वातावरण में रहते हुए भी उन्होंने अपने को जिस प्रकार बदला है, वह सचमुच प्रशंसनीय है।

वैशाली इंस्टिट्यूट के लिए बहुत बड़ा श्रेय तेरापंथी सभा को है जिसने पाँच लाख रुपए की व्यवस्था करके सरकार को सक्रिय कदम उठाने के लिए प्रेरित किया। योजना बहुत दिनों से बनी हुई थी, किन्तु रुपए के अभाव में काम अटका हुआ था। तेरापंथी समाज में शक्ति है, संगठन है, तुलसी गणि सरीखे प्रतिभाशाली आचार्य की प्रेरणा है। जैन साहित्य तथा संस्कृति के विकास के लिए उसका अग्रसर होना शुभ लक्षण है। हमें यह जानकर और भी हर्ष हुआ कि तेरापंथी सभा ने यह दान समस्त जैन समाज की ओर से दिया है और उसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता को नहीं आने दिया। यदि हम कम से कम सरकार के सामने एक होकर उपस्थित होना सीख लें तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है।

यदि समस्त जैन समाज इस कार्य में सरकार का साथ दे तो यह संस्था अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर सकती है। भारत के स्वतन्त्र होते ही विदेशियों का ध्यान भारतीय संस्कृति की ओर गया है। बड़े बड़े राष्ट्र भारतीय दर्शन धर्म एवं साहित्य का अध्ययन करने के लिए अपने विद्यार्थियों को भारत में भेज रहे हैं। बिहार ने प्राचीन भारत की तीन प्रमुख धाराओं का अध्ययन केन्द्र बनकर इस विषय में दूरदर्शितापूर्ण कदम बढ़ाया है। इसमें सरकार तो अपने कर्तव्य का पालन करेगी ही किन्तु जनता की सहायता भी आवश्यक है। बौद्ध और वैदिक केन्द्रों को धीरे विदेशी राष्ट्र, राजा महाराजा, बड़े बड़े उद्योगपति तथा विशाल समाज है। जैन केन्द्र में भी विद्या, अनुशीलन सम्बन्धी सामग्री तथा योग्य अध्यापकों का ऐसा आकर्षण होना चाहिए जिससे विदेशी एवं भारतीय विद्यार्थी जैन परम्परा को समझने के लिए खिंचे चले आयें। जैन परम्परा को प्रामाणिक एवं आकर्षक रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत करना भी इसी संस्था का कार्य होगा।

इस अवसर पर हम एक बात और लिखना चाहते हैं। प्राकृत तथा जैन

श्वेताम्बर दिगम्बर का संकुचित प्रश्न न खड़ा करते हुए जैन वाङ्मय एवं परम्परा के सभी उपासक हृदय से सहयोगी बनेंगे।

काशीस्थ पार्श्वनाथ विद्याश्रम की ओर से जो साहित्य निर्माण की योजना प्रकाशित हुई है उसमें भी साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह ठीक है कि श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, जो कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम की मातृसंस्था है मुख्यतया स्थानकवासियों का संगठन है। इसका अर्थ इतना ही है कि अर्थ व्यवस्था के लिए उसका क्षेत्र अब तक मुख्यतया स्थानकवासी समाज रहा है। उद्देश्य और कार्य की दृष्टि से उसने साम्प्रदायिकता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। विद्याश्रम ने ग्रन्थलेखन या रिसर्च के लिए जिन विद्वानों या विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता द्वारा प्रोत्साहन दिया है उसमें श्वेताम्बरों की अपेक्षा दिगम्बर अधिक है। हम यह भी नहीं कहना चाहते कि दिगम्बरों के प्रति कोई विशेष उदारता दिखाई जाती है। इसका अर्थ इतना ही है कि संस्था जैन वाङ्मय के उद्धार को सामने रखकर चल रही है। उसमें श्वेताम्बर तथा दिगम्बर परम्पराओं से सम्बन्ध रखने वाला समस्त साहित्य आ जाता है, जो विद्यार्थी इस ओर रुचि प्रकट करता है या जो विद्वान संस्था द्वारा अपेक्षित ग्रन्थ लेखन के लिए योग्य है उसे श्वेताम्बर दिगम्बर का भेद किए बिना स्वीकार कर लिया जाता है।

साहित्य-योजना में भी यही दृष्टि सामने रखी गई है। डा० हीरालाल जैन ए एन उपाध्ये श्री नाथूराम जी प्रेमी, पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री आदि दिगम्बर समाज के प्रतिष्ठित विद्वानों को लेखनकार्य में सम्मिलित किया गया है। उनके लिए यह कहना कि वे पैसे द्वारा खरीदे जा सकते हैं, या पैसे लेकर कोई ग़लत बात लिख देंगे सूर्य पर धूल फेंकने के समान है। उनके अतिरिक्त और विद्वान भी जो इस कार्य में सहयोगी बनना चाहें समिति उनका सहर्ष स्वागत करेगी। हम तो यह चाहेंगे कि दिगम्बर श्रीमन्तों को भी इस योजना में सम्मिलित होकर अखण्ड जैनत्व का मंच तैयार करना चाहिए। पारस्परिक सन्देह, ईर्ष्या तथा अन्य संकुचित वृत्तियों के कारण हम बहुत हानि उठा चुके हैं। अब स्वतन्त्र भारत में हमें राष्ट्र के सामने दिगम्बर श्वेताम्बर के रूप में नहीं किन्तु श्रमण संस्कृति के उपासक जैन के रूप में आना चाहिए।

आशा है, साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करने वाले हमारे बन्धु इस ओर ध्यान देंगे। उन्हें यह समझना चाहिए कि दिगम्बरत्व की रक्षा के

श्रमण का साहित्य-अंक

प्रथम भाग

जैन साहित्य कितना समृद्ध, विशाल एवं सर्वस्पर्शी है ..., अब से इस का एक झाँकी देने का प्रयत्न किया गया है। द्वि... भाग में शेष विषयों की चर्चा की जाएगी। उसका प्रकाशन ... वर्ष सितम्बर या अक्टूबर में होगा।

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान एवं अन्य विषयों का प्रामाणिक परिचय देना ही श्रमण का मुख्य ध्येय है।

इसके ग्राहक बनकर जैन साहित्य के विषय में होने वाले अनुसंधानों की जानकारी प्राप्त कीजिए। साथ ही इस साहित्यिक अनुष्ठान में सहयोगी बनिए।

श्रमण का वार्षिक मूल्य सिर्फ ४) रु० है। प्रस्तुत अंक का मूल्य १) रु० है किन्तु वार्षिक ग्राहकों से अतिरिक्त न लिया जाएगा।

व्यवस्थापक—

'श्रमण', श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस-५

इस अंक में

वार्षिक मूल्य ४)   एक प्रति ।=)

सम्पादक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री ... सिंह

जैनी कौन ? चारो सम्प्रदायो के विद्वानों की दृष्टि से

श्री अगरचंद नाहटा

श्रमण के गत अगस्त अंक में प्रो० दलसुख जी मालवणिया का 'क्या मैं जैन हूँ ?' शीर्षक लेख छपा है। इसे पढ़कर सहजही में यह जिज्ञासा होती है कि जैन कौन है ? इसकी पहिचान व निश्चय किन लक्षणों से की जाय। वास्तव में जैनत्व कोई बाहरी चीज नहीं जो ऊपरी दृष्टि से देखते ही पहचान लिया जाय, यह तो आत्मिक परिणति या भाव विशेष है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि रागद्वेष को जीतनेवाले जिन हैं उनका जो अनुयायी हो वह जैन है अर्थात् जिसका लक्ष्य व प्रयत्न रागद्वेष को कम करते जाने का है, वही जैन कहलाने योग्य है। इस तराजू पर तौलने से वर्तमान में कहे जानेवाले १४-१५ लाख जैनों में से बहुत थोड़े से ही जैन रह जायँगे। वास्तव में महत्व संख्या को नहीं, गुण को मिलना चाहिए।

प्रस्तुत लेख में मैं इस सम्बन्ध में अपनी ओर से विशेष नहीं लिखकर अन्य विद्वानों की इस सम्बन्ध में क्या राय है, वे कैसे आचार विचारवाले व्यक्ति को जैन की संज्ञा देते हैं, उनके वचन ही यहाँ संगृहीत करके दे रहा हूँ। इसमें जैन समाज के दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी व तेरापंथी चारों प्रधान सम्प्रदायों के ४ विद्वानों के विचार प्रकाशित किये जाते हैं जिससे उनके विचारों का भलो भांति परिचय मिल जाय। इसम से उपाध्याय यशोविजय जी १८ वी शती के नामांकित तपागच्छीय विद्वान हैं। इनके इस गीतिवाद खरतरगच्छीय आध्यात्मिक संत श्रीमद् ज्ञानसार जी ने विवेचन लिखा है जिसे हम ज्ञानसार ग्रंथावली में प्रकाशित कर रहे हैं। दिगम्बर विद्वान् भागचंद जी भी १८ वीं शती के हैं। स्थानकवासी मुनिवर्य अमरचंद जी व तेरापंथी मुनि श्री नथमल जी अभी विद्यमान ही हैं। श्री वंसी लिखित आदर्श जैन पुस्तक में भी जैन की सुन्दर व्याख्या पाई जाती है।

पुन्य पाप विधि बंध उदय में, प्रमुदित होत न दीना।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरन निज, भाव सुधारस भीना॥ जिन०॥ २॥

विषय चाह तजि, निज वीरज सजि, करत पूर्वविधि छीना।
भागचन्द साधक है साधत, साध्य स्वपद स्वाधीना॥ जिन०॥ ३॥

उपाध्याय अमरचन्द जी लिखित जैनत्व की झाँकी से

जैन जीवन

जैन भूख से कम खाता है। जैन बहुत कम बोलता है।
जैन व्यर्थ नहीं हँसता है। जैन बड़ों की आज्ञा मानता है।
जैन सदा उद्यमशील रहता है।
जैन गरीबी से नहीं शर्माता। जैन धन पर नहीं अकड़ता।
जैन किसी पर नहीं झुँझलाता। जैन किसी से छल कपट नहीं करता।
जैन सत्य के समर्थन से नहीं डरता।
जैन हृदय से उदार होता है। जैन हित, मित, मधुर बोलता है।
जैन संकट सहते हँसता है। जैन अभ्युदय में नम्र रहता है।

जैनागम

लूह वित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्तं न गच्छिज्जा, सुच्चाणं जिण सासणं॥
गु० छाया—रूक्ष वृत्ति सुसंतुष्ट, अल्पेच्छु संयमीजन।
करे ना ते कदी रोष, जिन धर्मे रति धरी॥

मुनि गणेशमल जी रचित पद

जैनी कौन ?

जैनी मन तो वेदन करिये, पर स्वपर कल्याण की।
धंगन अम्बर और अवनी पर आत्म-समान की॥

पुन्य पाप विधि बंध उदय में, प्रमुदित होत न दीना ।
सम्यक दर्शन ज्ञान चरन निज, भाव सुधारस भीना ॥ जिन० ॥ २ ॥

विषय चाह तजि,निज वीरज सजि,करत पूर्वविधि छीना ।
भागचन्द साधक है साधत, साध्य स्वपद स्वाधीना ॥ जिन० ॥ ३ ॥

उपाध्याय अमरचन्द जी लिखित जैनत्व की झाँकी से

जैन जीवन

जैन भूख से कम खाता है । जैन बहुत कम बोलता है ।
जैन व्यर्थ नहीं हँसता है । जैन बड़ों की आज्ञा मानता है ।
जैन सदा उद्यमशील रहता है ।
जैन गरीबी से नहीं घबराता । जैन धन पर नहीं अकड़ता ।
जैन किसी पर नहीं झुँझलाता । जैन किसी से छल कपट नहीं करता ।
जैन सत्य के समर्थन से नहीं डरता ।
जैन हृदय से उदार होता है । जैन हित, मित, मधुर बोलता है ।
जैन संकट सहते हँसता है । जैन अभ्युदय में नम्र रहता है ।

जैनागम

लूह वित्ती सुसंतुट्ठे, अपि को सुरे छिया ।
आसुरत्तं न गच्छिज्जा, सुच्चाणं जिय सासणं ॥
सु० छाया—रुक्ष वृत्ति सुसंतुष्ट, अल्पेच्छु संयमी जन ।
करे ना से क्रोध, जिन धर्म रति धारी ॥

मुनि गणेशमल जी रचित पद

जैनी कौन ?

जैनी जन तो तेने कहिये, करे स्व-पर कल्याण जी ।
जंगम थावर जीव जगत में जाने आत्म-समान जी ॥

मूक-साहित्य-सेवी श्री पन्नालाल जी

श्री माईदयाल जैन बी० ए० आनर्स, बी० टी०

साहित्य सेवा या सरस्वती देवी की पूजा के अनेक ढंग और विभिन्न तरीके हैं। पुस्तक-लेखन, प्रकाशन, पत्र-पत्रिका-सम्पादन तथा प्रकाशन और पुस्तकालय तथा संग्रहालय खोलना तो सर्वविदित है। साहित्यकारों तथा कवियों को राज्याश्रम, पुरस्कार तथा सहायता देना भी साहित्य सेवा है। साहित्यकारों के लिये सुविधाओं का प्रबंध करना और उनको साहित्यिक सामग्री भेंट करने से भी साहित्यकारों को बड़ी आसानी हो जाती है। साहित्यिक संस्थाओं के संचालन के लिये द्रव्य देना भी आवश्यक है। साहित्यकार समस्त संसार में प्रायः आर्थिक संकटों से घिरे रहते हैं, इसलिए उनके जीवन काल में उनको आर्थिक कठिनाइयों से बचाने की बड़ी आवश्यकता है और यह काम साहित्यकारों के देहान्त के पश्चात् आदर सम्मान करने से कहीं अधिक जरूरी है। बड़े नामी साहित्यकारों के साथ साथ छोटे या कम ख्यातिप्राप्त स्थानीय लेखकों तथा कवियों को प्रोत्साहन देना और उनकी सहायता करना भी साहित्यिक परम्परा को जारी रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जिस प्रकार सेना म सेनापतियों के अतिरिक्त सिपाही और दूसरे बीच के कप्तान इत्यादि होते हैं, इसी प्रकार देश की साहित्यिक सेवा में केवल चंद बड़े बड़े साहित्यकार ही नहीं होते, वरन् छोटे-छोटे सहस्रों साहित्यकार तथा मध्यम श्रेणी के सैकड़ों कवि और लेखक होते हैं, जिनकी आवश्यकताएँ भी बड़े बड़े साहित्यकारों के समान है। यदि उनकी समुचित देखभाल या उनको प्रोत्सा हन न दिया जाय तो साहित्यकारों की परम्परा को हानि पहुँच सकती है। अच्छी अच्छी पुस्तकों की बीस-बीस प्रतियाँ मँगाकर पुस्तकालयों तथा विद्वानों को भेंट करने से भी साहित्य का प्रचार होता है और प्रकाशकों तथा लेखकों का लाभ होता है। बम्बई के स्वर्गीय प्रसिद्ध दानवीर सेठ माणिकचन्द जी अच्छे जैन ग्रंथों को चार सौ प्रतियाँ तक मँगाकर मन्दिरों तथा विद्वानों इत्यादि को भेंट

इनकी देखभाल तथा रक्षा जिन महानुभावों के हाथों में है, वे काफी जागरूक, समझदार और साहित्यिक कर्तव्य का पालन करनेवाले हैं। श्री पन्नालाल जी भी एक ऐसे ही योग्य व्यक्ति हैं। जो यहाँ के शास्त्रों को जैन-साहित्य के उद्धार कार्य में अभिरुचि रखनेवाले किसी भी विद्वान् या संस्था को चाहे वह भारत का हो या भारत से बाहर का, समय समयपर आवश्यकतानुसार ग्रन्थ भेजते रहते हैं। इनकी साहित्यसेवा का क्षेत्र बड़ा विशाल है। आपके सहयोग से नीचे लिखे ग्रंथों के प्रकाशन में सहायता मिली है।

वीर सेवा मन्दिर सरसावा, जिला सहारनपुर, द्वारा प्रकाशित—१—अध्यात्म कमल मार्तण्ड, २—पुरातन जैन वाक्य सूची, ३—आप्त परीक्षा, ४—न्यायदीपिका, ५—बनारसी नाम माला, ६—विवाह क्षेत्र प्रकाश।

माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बंबई द्वारा प्रकाशित—१—वराग चरित्र, २—हरिवंश पुराण, ३—जम्बू स्वामि चरित।

भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस द्वारा प्रकाशित-१—मदन पराजय, २—महा पुराण, ३—हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, ४—जैन जागरण के अग्रदूत, ५—तत्वार्थ वृत्ति, ६—वसुनन्दि श्रावकाचार।

अम्बादास चवरे दिगम्बर ग्रथमाला, कारंजा, द्वारा प्रकाशित—१—पाहुड दोहा, २—सावयधम्म दोहा।

मद्रास विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित—१—वृहद् अंगरेजी सूची श्री काशीदास कपूर गुप्त द्वारा लिखित, २—हिन्दी सेवी संसार, श्री अद्भुत शास्त्री द्वारा लिखित, ३—आज के हिन्दी सेवी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई द्वारा प्रकाशित, ४—अर्द्ध कथानक।

जीवराज ग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित—१—तिल्लोयपन्नती के दो भाग, जर्मन विद्वान एच० वी० ग्लैसनप द्वारा लिखित डेर जैनिज्म Der Jainisms।

प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित—१—हिन्दी का सर्वप्रथम आत्म-चरित्र अर्द्ध कथानक।

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत द्वारा प्रकाशित-१—आदि पुराण २—चन्द्रप्रभ पुराण, ३—चिद्विलास। इनके अतिरिक्त आलापपद्धति,

श्री पन्नालाल जी अत्यन्त मिलनसार, निहायत सादे, प्रेमी, धर्मपरायण और सरल स्वभाव के हैं। 'गुणिषु प्रमोदम्' आपका आदर्श वाक्य है। युवावस्था में पदार्पण करते ही इन पंक्तियों के लेखक का परिचय आपसे हुआ था और तब से वह बराबर बढ़ता चला आ रहा है।

आपका जन्म माघ शुक्ल द्वादशी संवत् १९६० को हुआ था। आपके पिता लाला भगवानदास जी थे और आपका जन्म नसीराबाद छावनी में हुआ था पर बचपन में ही आप दिल्ली आ गये थे। आपको स्वास्थ्य, योग्य पुत्र आज्ञाकारी धर्मपत्नी और आर्थिक-निश्चितता आदि सभी सुख प्राप्त हैं। आयु में मुझसे दो वर्ष से कुछ छोटे हैं। इसलिए मैं आपकी दीर्घायु की शुभकामना करता हुआ यही चाहता हूँ कि स्वतंत्र भारत में प्राचीन साहित्य के उद्धार और नवीन साहित्य के निर्माण का जो महान् कार्य होना है, उसमें आप पूर्ववत् अधिक से अधिक सहयोग दें। और दूसरे नवयुवक आप की साहित्य-सेवा के इस ढंग को अपनायें। विद्वानों को भी श्री पन्नालाल जी की सेवाओं का खूब उपयोग करना चाहिए।
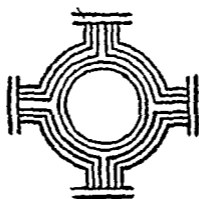
नए गीत

महावीर की पुण्य स्मृति में

सागर करुणा का लहराया !

जलते जग के तट पर मंगल-घट ले चुपके कोई आया।
छिड़क बूँद मरु के जीवन में मधु कमलों का वन सरसाया॥
अश्रु-कणों ने शान्त कर दिया पल में ज्वाल ताप युग-युग का,
धीर-वीर हे घायल मानवता का दिल किसने सहलाया ?
वैशाली के राज्य भाग पर लात मार दी निर्मोही ने—
दया द्रवित पर, मर्त्य लोक के कण-कण में अमृत छलकाया।
लड़-लड़ जन्म-मृत्यु से हिंसा माया के ऊँचे दुर्गों पर,
महावीर ! तुमने दुर्लभ जय के निज झंडों को फहराया।
अर्हत्, रागातीत, पुण्यस्मृति, जिन देवता, मुक्ति के साधक !
तीर्थंकर, अभयंकर, मंगलकर ! अब सर्वनाश-स्वर छाया।
मैत्री-सेवा-साम्य भाव धन के भंडारी, चिर उदार हे,
दया करो, कुछ दो, जो बापू के सपनों में था बिखराया !
सागर करुणा का लहराया !'

—प्रो० सीताराम 'प्रभास', एम० ए०

उड़ा व्योम पर चहक न पाया

प्राण-विहग, हुआ मुक्त फिर उड़ा व्योम पर चहक न पाया'

(१)

मधुमास की मधुर याद में, पूछा मैंने कहाँ चले तुम ?
हरे भरे इस सरस नीड़ को, छोड़ चले क्यों आ पगले तुम ?
परिचित सी आधार रेख पर करती नित शृंगार नया जो,
रात रसीली तुम सुहाग सौन्दर्य स्वप्न सा बीत गया जो।
हृदय-कुंज में, सौरभ से लद, निशा कुसुम पर महक न पाया !

यद्यपि निश्चित महापुरुष भी होते हैं साधारण जन में।
जो बढ़ते जीवन के पथ में उच्च लक्ष्य साधन ले मन में॥
काम-नाममय जिनका जीवन करने को नित जग-जन में।
चरणों शीश झुकाये वह प्रियवर विश्व रहा करता है॥
पहले असफल देख उठे जो पागल-मूर्ख कहा करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

किसने सोचा ऐसे कितने मानव-जगती के तल में?
बच न सकें जो निज जीवन में परुष परिस्थिति के छल से॥
जन-जनता दायित्व न समझे अघी वह नेता के बल में।
महापुरुष तो बढ़ जाते पर जन-समुदाय वहीं रहता है॥
केवल जय घोषों को लेकर वह कृत कृत्य हुआ करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

किसने सोचा ऐसे कितने तारे ऊपर नील गगन में?
जो न साधनों के मिलने से सूर्य चन्द्र से जीवन में॥
जीवन के अरमान अधूरे साध घनी मन की मन में।
विज्ञापन के विशाल युग में भाई नाम छुपा करता है॥
अखबारों की इस जगती में बहुधा काम छिपा करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

—श्री लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

प्रेम

है नहीं वह व्यक्ति, जिसका प्रेम से हो हृदय खाली।

शुभ्र, सुन्दर, सरस सर में
प्रेम से ही कमल खिलते।
प्रेम से ही हो प्रभावित,
हृदय नभ-नक्षत्र मिलते।
'वाद' के भी सृजन में है—
मृदु, मंजुल प्रेम कहानी॥

प्रेम सदा ही अमर! इसका
महत्व भी अतिमय है।
सौन्दर्य, शक्ति का रूप भी तो

प्रेम से सौंदर्यमय है।
विश्व के कमनीय कानन
प्रेम के ही हैं खिलाड़ी॥
शून्य औ संसार सारा
प्रेम के बल पर टिका है।
प्रेम ने नीरव अधिर—

नर को सरस, स्थिर किया है।
प्रेम से ही पूर्णिमा की
चाँदनी दिखती निराली॥

(२)

उधर नील नभ की रचना में, नीर बहाती रो रो आँखें।
निर्जन निस्वन शून्य शांत संसार बना हग झुक झुक झाँकें॥
दुर्धर आंधी गगन विदारक विस्फोटों से, उड़ते पत्थर,
पावस धारा से कुंठित पर ओझल नभ काँपे लय थर थर।
लगी आग उर क्षार पुञ्ज पर ज्वलित हुताशन मन्द न पाया॥

(३)

अपनी चेतनता दे फिर से, आये पिंजर विहग इकेले।
धरती से आकाश मिलाने, रोग अनेकों खेल दुकेले॥
प्राणों के धागों का बन्धन खिली मुक्ति शतदल सी शाश्वत,
प्राण पंख उड़ दश आ आ कर, करते यों अभिनन्दन स्वागत।
दौड़ धूप में पर प्राणों का, उर स्पन्दन फिर थमक न पाया॥

—श्री नरेंद्रकुमार [illegible]

नीरव का बलिदान

नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है।
वर्तमान जनता का जीवन गति ले यहीं रहा करता है॥
खिलने के पहले और देव-मन्दिर में चढ़ने के पहले।
कितने सोचा कितने प्रसून [illegible] बीथी के पहले।
चढ़े देश के चरण-शीश जो ठुकलाये जो श्रम के बदले।
धिक्कार! नाम उन्हीं का जग के मुख पर नित्य रहा करता है।
'अधखिले कुसुम की क्या कीमत?' यह संसार कहा करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है॥

दीपक जलता जाती बाती और तेल भी जलता रहता।
जिसका जीवन वस्तु गल गलकर तिमिर हटा पथ प्रकट करता॥
स्नेही शिखा की दल [illegible] चरणों पर [illegible] पड़ा करता।
मूक आत्म दीपन-गुण देकर [illegible] नित्य किया करता है॥
वर्तमान जगती का दीपक गर्व में यहीं कहा करता है।

यद्यपि निश्चित महापुरुष भी होते हैं साधारण जन में।
जो बढ़ते जीवन के पथ में उन्च लक्ष्य साधन ले मन में ।।
काम-नाममय जिनका जीवन करने को नित जग-जन में।
चरणों शीश झुकाये वह प्रियवर विश्व रहा करता है ।।
पहले असफल देख उसे जो पागल-मूर्ख कहा करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

किसने सोचा ऐसे कितने मानव-जगती के तल में?
बच न सकें जो निज जीवन में परुष परिस्थिति के छल से ।।
जन-जनता दायित्व न समझे आधी वह नेता के बल में।
महापुरुष तो बढ़ जाते पर जन समुदाय वहीं रहता है ।।
केवल जय घोषों को लेकर यह कृत कृत्य हुआ करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

किसने सोचा ऐसे कितने तारे ऊपर नील गगन में?
जो न साधनों के मिलने से सूर्य-चन्द्र से जीवन में ।।
जीवन के अरमान अधूरे साथ बने मन की मन में।
विज्ञापन के विशाल युग में माइ नाम छुपा करता है ।।
अखबारों की इस जगती में बहुधा काम छिपा करता है।
नीरव का बलिदान विश्व में किसको याद रहा करता है!

—श्री लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

प्रेम

है नहीं वह व्यक्ति, जिसका प्रेम' से हो हृदय खाली।

शुभ, सुन्दर, सरस सर में
प्रेम से ही कमल खिलते।
प्रेम से ही हो प्रभावित,
हृदय नभ-नक्षत्र गिनते।
'वाद' के भी सृजन में है—
मूल, मंजुल प्रेम प्यारी ।।

प्रेम पथ पर चरे! इधर
मरु पथ भी शान्तिमय है।
रवि, शशि का रूप भी तो
प्रेम से सौंदर्यमय है।
विश्व के कमनीय कानन
प्रेम के ही हैं खिलाड़ी ।।
शून्य औ संसार सारा
प्रेम के पथ पर टिका है।
प्रेम ने नीरस अथिर—
नर को सरस, स्थिर किया है।
प्रेम से ही पूर्णिमा के
चाँदनी दिखती निराली ।।

कबीर खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना सो चले हमारे साथ।

घर फूँकने का अर्थ है धन और मान का मोह त्याग देना, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ देना और सत्य के सामने सीधे खड़े होने में जो कुछ भी बाधा हो उसे निर्ममता पूर्वक ध्वंस कर देना। पर सत्यों का सत्य यह है कि लोग कबीरदास के साथ चलने का प्रतिज्ञा करने के बाद भी घर नहीं फूँक सके। मठ बने, मन्दिर बने, हजार साधन आविष्कार किये गये और उनकी महिमा बताने के लिये अनेक पोथियाँ रची गई। इस बात का बराबर प्रयत्न होता रहा कि अपने इर्द गिर्द के समाज में कोई यह न कह सके कि इनका अमुक काम सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। अर्थात् विद्रोही कबीर की प्रतिज्ञा भूल गई, सुलह और समझौते का रास्ता स्वीकार कर लिया गया। आगे चलकर 'गुरु' पद पाने के लिए हाईकोर्ट की भी शरण ली गई।

यह कह देना कि सब गलत हुआ, कुछ विशेष मान की बात हुई। क्यों यह गलती हुई? माया से छूटने के लिए माया के प्रपंच रचे गये, यह सत्य है। कबीरपंथ का नाम तो यहाँ इसलिए आ गया है कि ये बातें कबीरपंथी साहित्य पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में आई हैं, नहीं तो सभी महापुरुषों के प्रवर्तित मार्गों की यही कहानी है। माया के जाल छुड़ाये छुटते नहीं, यह इतिहास की चिरोद्घोषित बात सब देशों और सब कालों में समान भाव से सत्य रही है।

स्पष्ट ही मालूम होता है कि यह घर छोड़ने की माया बड़ी प्रबल है और संसार का विरला ही कोई इसका शिकार होने से बच सकता है। इतनी प्रबल शक्ति के यथार्थ को उलटा नहीं जा सकता। उसको मानकर ही उसके आकर्षण से बचने की बात सोची जा सकती है। स्वयं कबीरदास ने न जाने कितनी बार इस प्रबल माया की शक्ति के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है।

ई माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो।
चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारे काहु न राखे नेरा हो।
मौनी पीर दिगम्बर मारे ध्यान धरन्ते जोगी हो।
जंगल में के जंगम मारे माया किन्हु न भोगी हो।

वेद पढ़न्ते वेदुआ मारे पूजा करते स्वामी हो।
अरथ विचारत पंडित मारे बांधे सकल लगामा हो।
इत्यादि।

मैं ज्यों-ज्यों कबीरपंथी साहित्य का अध्ययन करता गया त्यों-त्यों यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती गई कि इर्दगिर्द की सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव बड़ा जबर्दस्त साबित हुआ है। उसने सत्य, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य को बुरी तरह दबोच लिया है। केवल कबीरपंथ में ही ऐसा नहीं हुआ है। सब बड़े बड़े मतों की यही अवस्था है। समाज में मान, प्रतिष्ठा पाने का साधन पैसा है।

जब चारों ओर पैसे का राज हो तब उसके आकर्षण को काट सकना कठिन है। पंथ की प्रतिष्ठा के लिये भी पैसा चाहिए। जो लोग इस आकर्षण को नहीं काट सकने वाले की निन्दा करते हैं वे समस्या का बहुत ऊपर ऊपर से देखते हैं।

मैं बराबर सोचता रहा कि क्या ऐसा कोई उपाय नहीं हो सकता कि समाज में पैसे का राज हो जाय ? हमारे समस्त बड़े प्रयत्न इस एक चट्टान से टकरा कर चूर हो जाते हैं। क्या कोई ऐसी व्यवस्था हो सकती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने मतलब भर का पैसा पा जाय और उससे अधिक पा सकने का कोई उपाय ही न हो ? यदि ऐसा हो सकता तो यह समूचा बेहूदा साहित्य लिखा ही न जाता जो केवल पन्थों और उनके प्रवर्तकों की महिमा बढ़ाने के उत्साह में बराबर उन बातों को ढँकने का प्रयत्न करता है, जिन्हें पंथ के प्रवर्तक ने कठिन साधना से प्राप्त किया था। पुराने तांत्रिक आचार्यों ने बताया था कि जो राग बंधन के कारण होते हैं, वे ही मुक्ति के भी कारण होते हैं। काम-क्रोध आदि मनःशक्तियाँ, जिन्हें 'शत्रु' कहा जाता है, सुनियन्त्रित होकर परम सहायक मित्र बन जाती हैं। क्या कोई ऐसी सामाजिक व्यवस्था नहीं बन सकती, जिसमें 'घर जोड़ने की माया' जीती भी रहे और सत्य के मार्ग में बाधक भी न हो।

मेरा मन कहता है कि यह सम्भव है।

कबीर खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना सो चले हमारे साथ।

घर फूँकने का अर्थ है धन और मान का मोह त्याग देना, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ देना और सत्य के सामने सीधे खड़े होने में जो कुछ भी बाधा हो उसे निर्ममता पूर्वक ध्वंस कर देना। पर सत्यों का सत्य यह है कि लोग कबीरदास के साथ चलने की प्रतिज्ञा करने के बाद भी घर नहीं फूँक सके। मठ बने, मन्दिर बने, प्रचार के साधन आविष्कार किये गये और उनकी महिमा बनाने के लिए अनेक पोथियाँ रची गई। इस बात का बराबर प्रयत्न होता रहा कि अपने इर्द गिर्द के समाज में कोई यह न कह सके कि इनका अमुक काम सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। अर्थात् विद्रोह करने की प्रतिज्ञा भूल गई, सुलह और समझौते का रास्ता स्वीकार कर लिया गया। आगे चलकर 'गुरु' पद पाने के लिए हाईकोर्ट की भी शरण ली गई।

यह कह देना कि सब गलत हुआ, कुछ विशेष काम की बात हुई। क्यों यह गलती हुई? माया से छूटने के लिये माया के ही प्रपंच रचे गये, यह सत्य है। कबीरपंथ का नाम तो यह इसलिए आ गया है कि ये बातें कबीरपंथी साहित्य पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में आई हैं, नहीं तो सभी महापुरुषों के प्रवर्तित मार्गों की यही कहानी है। माया के जाल छुटाये छुटते नहीं, यह इतिहास की चिरोद्घोषित बात सब देशों और सब कालों में समान भाव से सत्य रही है।

स्पष्ट ही मालूम होता है कि यह घर छोड़ने की माया बड़ी प्रबल है और संसार का विरला ही कोई इसका शिकार होने से बच सकता है। इतनी प्रबल शक्ति के यथार्थ को उलटा नहीं जा सकता। उसको मानकर ही उसके आकर्षण से बचने की बात सोची जा सकती है। स्वयं कबीरदास ने न जाने कितनी बार इस प्रबल माया की शक्ति के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है।

ई माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरा हो।
चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारे काहु न राखे नेरा हो।
मौनी बीर दिगम्बर मारे ध्यान धरन्ते जोगी हो।

हो रही ठनाठन पैसों की,
भर गया हाल है खचाखच,
सज करके सुन्दर सूटों में,
बैठे बाबू जम सीटों पर,
श्रा रही बाढ़ सुन्दरियों की,
सज करके नए-नए फैशन,
मच रही हँसी, हो रही खुशी,
चहुँ ओर छा रहा राग रंग,
मस्ती में बन रहे सभी मस्त,
खिल खिल-खिल-खिल हँसते जाते,
जीवन का उठा रहे आनन्द।
ओ सन्मुख ही होटल अन्दर,
मिठाओं से सज रहे थाल,
भोजन सुन्दर से सुन्दर ओ—
उत्तम से उत्तम पेय यहाँ,
हो रही बड़ी मनुहारें हैं,
अजि, ले लीज पेठा तो और,
यह लिए आपके कलाकन्द,
कुछ थोड़ा सा ही खा लीज,
कमसे कम ले लीज गर्म चाय,
कुछ बिस्कुट, केक डबल रोटी,
पर, खाते बाबू नखरों से,
उड़ रहे यहाँ गुलछर्रे हैं।
पर, मेरा ऐसा कहाँ भाग्य ?
मैं यहाँ कहा भी जाता हूँ,
गाली, जूते ही पाता हूँ,
खाता गर्मी-सर्दी टक्कर, पर
मिले न अन्न का दाना एक,
हा कहा पहुँच घिरियाता हूँ,
रोटी के बदले डंडों की—

तीखी चोटें ही खाता हूँ,
मुझसे तो होटल के ये श्वान,
हैं बहुत बड़े ही भाग्यवान,
जो बची खुची सामग्री पर,
झट हाथ साफ कर जाते हैं,
है भाग्यशालिनी चिड़िया भी,
जो ले चोंच में पेड़े को उड़ जाती है,
और बैठ वृक्ष की डालों पर—
बड़े मज़े से खाती है॥
हे भगवन् यह कैसा अन्याय !
क्या हाय गरीब की खाली जाने पायगी?
क्या टूटेंगी न पूँजीवाद की दीवारें !
फड़ फड़, फिर की करुण पुकार,
ओ माई बाप, कुछ दे जाओ,
कुछ तो रहम मुझ पर खाओ,
निकले जाते हैं मेरे प्राण,
आँते बाहर निकली पड़तीं,
पर, देख सभी मुस्काते हैं,
गाली सुना बढ़ जाते हैं,
कटता घृणा से यह कोई—
सर पर ही चढ़ता आता है,
क्या मरा परे नहीं जाता है,
कर हाय बेचारा रह जाता,
रुक-रुक के लो आ रही साँस,
कुछ देर तड़प कर भूमि पे,
जो, हो गया बेचारा संज्ञा हीन,
सो गया सदा के लिए—
बेचारा चिर निद्रा में।
हे भगवन् क्या इस भारत में,
अन्त न गरीबी का होगा !

—मुनि कीर्तिचन्द्र जी 'यश'

— ०:—

र बेचारे इतना भी विश्वास नहीं कर पाते कि भला धर्म का सौदा
तना आसान है।

कुछ का तो सारा आचरण दिखावे भर के लिये होता। न करने
से समाज में निन्दा होती, इसीलिये मन मसोस कर हाथ बाँध
लाइन में खड़े हो जाते।

ऐसे भी थे जो निस्वार्थ भाव से अपनी आत्मा के उत्थान में
सहायक इन धार्मिक रीतियों में मन, वचन, काय से योग देते। उन्हें
कोई भौतिक लाभ की आकांक्षा नहीं थी। वे तो आत्मिक सुख और
शान्ति के पुजारी थे। ऐसा ही तो समझ कर वे पत्थर के भगवान की
पूजा करते, उनके आदर्श और उपदेशों का मनन करते और 'जय'
मनाते। ऐसे सज्जनों को अगर शरीरधारी उपदेशक निर्ग्रंथ गुरु मिल
जाए तो उनके आनन्द का क्या ठिकाना। वे तो औरों की तरह फूलों
का रस ले लेते। देव, शास्त्र, गुरु की पूजा अर्चना कर अपने को
सुधार लेते। जिसकी पूजा करते उसके गुणों को देखते, उसके दोषों
की ओर ध्यान नहीं देते। ऐसों के संसर्ग में गुरु भी अगर अविवेकी
हो तो रास्ते पर आ जाए। पर ऐसे सद्‌गृहस्थ होते ही कितने हैं।

तो, हर प्रकार की भीड़ मुनियों के चरणों पर पहुँचती। उनकी
वन्दना करती और जय-जयकार करती। सन्ध्या होते होते अपने
अपने घरों को लौट जाती। बहुतेरों ने रात का अड्डा भी वहीं बना
लिया था। क्योंकि सुबह होते ही मुनियों के आहार का प्रबन्ध करने
में समय भी तो लगता था।

इसी भीड़ में एक दिवस एक वृद्धा छोटे बालक का हाथ पकड़े
आश्रम पहुँची। शुभ्र वसन, उन्नत ललाट, प्रभावक व्यवहार के साथ
साथ उसकी गौरवमयी चाल सहज में ही ध्यान आकर्षित करती।
मन्त्रोच्चारण करते हुए जब परिधान (!) संभालती हुई आश्रम के
द्वार पर पहुँची तो बरबस लोग उसकी ओर देखने लगे। इतने में ही
उसके साथ के बालक के पास अन्य बालकों की भीड़ सी लग गई।
सभी साश्चर्य उसके कीमती कपड़े की ओर, चमकते जूते की ओर
देख रहे थे। इतने में ही एक ढीठ बालक ने आगे बढ़कर उसके कपड़े
को खींच लिया और लड़का चीख उठा। उसका चीखना था कि वायु
वेग से वृद्धा ने आततायी लड़के को खींचकर इतने जोर से थप्पड़
मारा कि वह वहीं लोट गया। हाय! हाय! मच गयी। लड़का बेहोश

धर्म का मर्म

सुबोध कुमार जैन

नगर के बाहर आश्रम में मुनियों का संघ आया हुआ था। नगरवासी लोगों के जत्थे के जत्थे उधर ही आते जाते दीखते। लोगों की धार्मिक भावना में चेतना सी दीखने लगी थी। घर कार्यों में सभी स्त्रियाँ सारा कार्य पूरा कर इतना समय निकाल लेतीं कि पुरुषों को आश्चर्य होता। पर्दा प्रथा के बहुतेरे प्रतिबन्ध टूट गये थे। पुरुषों की सामर्थ्य नहीं रही थी कि ऐसे पुनीत धर्मकार्य में अड़ंगा लगावें। क्या करते बेचारे पुरुष, आखिर वे भी औरतों के साथ-साथ पुण्य और धर्म बटोरने लगे। पर ऐसे सभी पुरुष नहीं और न सभी स्त्रियाँ ऐसी थीं। यह अवश्य था कि स्त्रियों का नम्बर पुरुषों से दूना रहता। बच्चों को तो ऐसी स्वतन्त्रता मिल गई थी कि कुछ न पूछिये।

यह सब तो था ही, साथ-साथ मुनियों को आहार देने के लिए चौके बहुतायत से लगते। सारी विधि के साथ उन्हें पड़गाहा जाता और फिर गृहस्थ भाव सहित आहार देकर धन्य-धन्य हो जाते।

अब नियमों में भी बढ़ती नजर आती। इसमें वयोवृद्धों का नम्बर आगे रहता और फिर उनमें भी औरतों का। पुरुष तो अपने काम-धन्धों की आड़ में भाग खड़े होते और जो बच जाते थे वे ऐसे नियम लेना चाहते थे जिससे कोई नई बात न खड़ी हो। भरसक उसी वस्तु का त्याग करते जो उनके व्यवहार में नहीं रहती या उनके पहुंच के अन्दर नहीं होती। इन्द्रिय-लोलुपता और परिग्रह में इतनी ममता व्याप्त थी कि कुछ भी छोड़ने को जी नहीं करता। ऐसा नियम भी ले लिया गया था कि चीज पड़ी-पड़ी नष्ट हो जाए, परन्तु दूसरों की जरूरी आवश्यकता पर भी उसे देने का मन नहीं होता। इस तरह की बात तो स्त्रियों और पुरुषों में बराबर ही होती।

इस प्रकार का हृदय लेकर गृहस्थ चाहते कि आहार दान देकर वे पुण्योपार्जन इतना कर लें कि स्वर्ग में स्थान निश्चित हो जावे। कितने तो इसी भव में धन-जन की आकांक्षा लेकर धर्म का सौदा करते।

पर बेचारे इतना भी विश्वास नहीं कर पाते कि भला धर्म का सौदा इतना आसान है।

कुछ का तो सारा आचरण दिखावे भर के लिये होता। न करने से समाज में निन्दा होती, इसीलिये मन मसोस कर हाथ बाँध ाइन में खड़े हो जाते।

ऐसे भी थे जो निस्वार्थ भाव से अपनी आत्मा के उत्थान में ाहायक इन धार्मिक रीतियों में मन, वचन, काय से योग देते। उन्हें ोई भौतिक लाभ की आकांक्षा नहीं थी। वे तो आत्मिक सुख और ान्ति के पुजारी थे। ऐसा ही तो समझ कर वे पत्थर के भगवान की ूजा करते, उनके आदर्श और उपदेशों का मनन करते और 'जय' मनाते। ऐसे सज्जनों को अगर शरीरधारी उपदेशक निर्ग्रंथ गुरु मिल जाए तो उनके आनन्द का क्या ठिकाना। वे तो भौंरों की तरह फूलों का रस ले लेते। देव, शास्त्र, गुरु की पूजा अर्चना कर अपने को सुधार लेते। जिसकी पूजा करते उसके गुणों को देखते, उसके दोषों की ओर ध्यान नहीं देते। ऐसों के संसर्ग में गुरु भी अगर अविवेकी हो तो रास्ते पर आ जाए। पर ऐसे सद्गृहस्थ होते ही कितने हैं।

सो, हर प्रकार की भीड़ मुनियों के चरणों पर पहुँचती। उनकी वन्दना करती और जय-जयकार करती। सन्ध्या होते होते अपने अपने घरों को लौट जाती। बहुतेरों ने रात का अड्डा भी वहीं बना लिया था। क्योंकि सुबह होते ही मुनियों के आहार का प्रबन्ध करने में समय भी तो लगता था।

इसी भीड़ में एक दिवस एक वृद्धा छोटे बालक का हाथ पकड़े आश्रम पहुँची। शुभ्र वसन, उन्नत ललाट, प्रभावक व्यवहार के साथ साथ उसकी गौरवमयी चाल सहज में ही ध्यान आकर्षित करती। मन्त्रोच्चारण करते हुए जय परिधान (!) संभालती हुई आश्रम के द्वार पर दीखी तो बरबस लोग उसकी ओर देखने लगे। इतने में ही उसके साथ के बालक के पास अन्य बालकों की भीड़ सी लग गई। सभी साश्चर्य उसके कीमती कपड़े की ओर, चमकते जूते की ओर देख रहे थे। इतने में ही एक ढीठ बालक ने आगे बढ़कर उसके कपड़े को खींच लिया और लड़का चीख उठा। उसका चीखना था कि वायु वेग से वृद्धा ने आततायी लड़के को खींचकर इतने जोर से थप्पड़ मारा कि वह वहीं लोट गया। हाय ! हाय ! मच गयी। लड़का बेहोश

था और उसके मुँह से खून आ गया था। इस पर आश्चर्य और क्रोध की बात यह हुई कि वृद्धा के ऊपर इसका कोई असर न हुआ। वह अपने साथ के बालक को लिये हुए आगे बढ़ चुकी थी। पीछे से मुड़कर नहीं देखा उसने।

बात इतने ही पर खतम न हुई। उसने अपनी बात [illegible] देने के ख्याल से झूठी कितने तरह की बातें उस आततायी [illegible] खिलाफ लगायीं। कहा उसने—हमारे बच्चे को मार दिया। [illegible] दी। इत्यादि इत्यादि।

आततायी? बच्चे की माँ ने वृद्धा का रास्ता रोक लिया और [illegible] करने को तैयार हो गई। फिर तो दोनों में ऐसी लड़ाई हुई कि बीच-बिचाव करने वालों को एक तमाशा मिल गया। सब तो सब, उस वृद्धा के सौम्य मुख से क्रोध और अपशब्द की हुंकार बड़ी बीभत्स लगती। दुःख होता कि बाह्य और अन्तर में इतना अधिक अन्तर क्योंकर हुआ। यही वृद्धा जो कि धर्म लाभ के लिये मुनियों की शरण में आयी थी, अज्ञान के कारण अशरण हो गई। पहली दृष्टि में जैसा अच्छा प्रभाव उसके व्यक्तित्व ने डाला था, उससे अधिक घृणा की पात्र वह सारे उपस्थित समुदाय की हो गई।

आखिर बात आचार्य श्री के पास पहुँची। तब तक वृद्धा भी अपने बालक के साथ वहाँ पहुँची थी। साष्टांग दण्डवत् के उपरान्त उसने बड़ी भक्ति से मुनियों की पूजा अर्चना की। बच्चे से भी वही रीति करवाई।

सभी ध्यानपूर्वक देख रहे थे कि आगे क्या होता है। आततायी बच्चे की माँ अपने घायल बच्चे के सिर में पट्टी बाँधे हाथ पकड़े हुए लिये आ रही थी।

आचार्य श्री ने कहा—यही बच्चा घायल हुआ है?

फरियादी माँ ने चीख कर कहा—इसी बाबा ने मार [illegible] कही थी।

गम्भीर शब्दों में आचार्य श्री ने कहा—अपने इस घायल बच्चे को [illegible] हुई क्यों ला रही हो? ऐसा ही अगर कोई दूसरा करे तो अपने बराबर की बात उठाकर बखेड़ा मचाओगी। भला! जब तुम्हीं अपने बच्चे के प्रति इतनी निर्दय हो तो दूसरे ने मार ही दिया तो

वह बोली—महाराज ! इस दुष्ट लौंडे को कितनी ही बार मना कर चुकी कि दूसरे से छेड़ छाड़ मत कर। भला ! हमारी कही मानता तो ऐसी दुर्गति क्यों होती ?

आचार्य श्री बोले—तब तो बस वृद्धा का कुसूर ही क्या, जब कि तुम कहती हो तुम्हारा लड़का ही दुष्ट है।

अपनी बात कौन हारना पसन्द करता है। स्त्री का धैर्य छूट गया। वह बोली—महाराज ! पर इस बच्चे ने क्या ऐसा किया था कि इतने जोर से इस बुढ़ी ने मारा ? फिर हमारे बच्चे को मारनेवाली यह कौन ?

महाराज हँसे। बोले—भव्ये ! कौन किसका अपना है और किसे पराया कहूँ। हम वैरागी हुए। अपनी स्त्री, माँ, बाप, बच्चों को छोड़ा। आज यहाँ अपने घर से इतनी दूर रम रहे हैं। क्या इसलिये कि फिर अपने पराये के चक्कर में पड़ूँ। मैं इस क्रोध कषाय की बातों में पड़ना नहा चाहता। इतना ही कहता हूँ कि अपने पराये का भेद-भाव मिटा दो, तभी सच्चा सुख मिलने लगेगा। यही सारे रोग की जड़ है।

यह कहते कहते आचार्य महाराज एकाएक रुक गये। फिर वे मुस्कराने लगे लोगों ने उनकी नजर की ओर देखा—उनकी आँखें दूर पर दो खेलते हुए बच्चों पर थीं।

वे बोले—हमारी आँखें कमजोर हैं तुममें से कोई उन दोनों बच्चों को पहचानता है ?

विस्मित हो लोगों ने देखा माताओं के झगड़े से दूर वे ही दो बच्चे आपस में खेल रहे थे।

महाराज हँसे और बोले—तुम दोनों माँ आपस में झगड़कर अपनी आत्मा कलुषित कर चुकी हो, बुरे कर्मों का बन्ध तो इतना कर चुकी होगी कि उनकी निर्जरा न जाने कब होकर रहेगी। ऐसे कर्मों के फलस्वरूप तुम पशु या तिर्यंच गति में जा सकती हो। फिर तुम्हारे बच्चे तुम्हारे किस काम आवेंगे। ये तो देखो, शुभ कर्मों का बंध कर रहे हैं। तुम्हारे झगड़ों से दूर, तुम्हारे क्रोध-मान से परे होकर आपस में मित्र की भाँति खेल रहे हैं। तुमसे नहीं, तो क्या अपने बच्चों से ही शिक्षा नहीं ले सकती हो।

हुआ होगा। आहार देने के लिये इससे बढ़कर दूसरा सुपात्र कैसा होता होगा? आहारदान का वास्तविक पुण्य यही तो कहलाता होगा?

आहार के उपरान्त सारा जन समुदाय जय घोष कर उठा। आनन्दातिरेक के आँसुओं से भीगी फरियादिनी अपने को हत-भागिनी समझती हुई भी धन्य धन्य हो रही थी।

अब उसकी फरियाद थी—'माता जी मुझे क्षमा करो! मुझे क्षमा करो!!'

अर्पण

आप कितने वर्ष जीए, इस बात का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि आप कैसे जीए। आप एक वर्ष जीएँ या सौ वर्ष, जितना जीएँ किसी महान् ध्येय के लिये जीएँ।

पेट भरने के लिये जीना नहीं होता किन्तु जीने के लिए पेट भरा जाता है। पहले यह सोचिए कि आप किस लिये जीना चाहते हैं, फिर उस जीने के लिये पेट भरने की व्यवस्था कीजिए। इतना खाइए जिससे जीवन को उस ध्येय की पूर्ति में सहायता मिले। इतना मत खाइए कि जीवन पेट का गुलाम बन जाय और ध्येय विस्मृत हो जाय।

× × ×

आपके पास कितना धन है, इस बात का महत्व नहीं है। महत्व इस बात का है कि उस धन का उपयोग आप कैसे करते हैं। आपके पास एक पैसा हो या करोड़ रुपया। वह तभी मूल्यमान् है यदि उसका उपयोग किसी उच्च ध्येय की पूर्ति में किया जा सके।

× × ×

आपके पास ज्ञानबल है, वाणी का बल है, तपोबल है योगबल है अथवा अन्य किसी प्रकार का बल है। किन्तु वह अपने आप में कुछ नहीं है। उनका मूल्य तभी है जब उन्हें किसी महान् ध्येय की पूर्ति में अर्पित कर दिया जाय।

इसी का नाम यज्ञ है।
इसी का नाम त्याग है।
इसी का नाम अर्पण है।
इसी का नाम महत्व है।
इसी का नाम अमृत है।

आ होगा। आहार देने के लिये इससे बढ़कर दूसरा सुपात्र कैसा होता होगा ? आहारदान का वास्तविक पुण्य यही तो कहलाता होगा ?

आहार के उपरान्त सारा जन समुदाय जय घोष कर उठा। आनन्दातिरेक के आँसुओं से भींगी फरियादिनो अपने को हत भागिनी समझती हुई भी धन्य धन्य हो रही थी।

अब उसकी फरियाद थी—'माता जी मुझे क्षमा करो! मुझे क्षमा करो !!'

अर्पण

आप कितने वर्ष जीए, इस बात का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि आप कैसे जीए। आप एक वर्ष जीएं या सौ वर्ष, जितना जीएँ किसी महान् ध्येय के लिये जीएँ।

पेट भरने के लिये जीना नहीं होता किन्तु जीने के लिए पेट भरा जाता है। पहले यह सोचिए कि आप किस लिये जीना चाहते हैं, फिर उस जीने के लिये पेट भरने की व्यवस्था कीजिए। इतना खाइए जिससे जीवन को उस ध्येय की पूर्ति में सहायता मिले। इतना मत खाइए कि जीवन पेट का गुलाम बन जाय और ध्येय विस्मृत हो जाय।

× × ×

आपके पास कितना धन है, इस बात का महत्व नहीं है। महत्व इस बात का है कि उस धन का उपयोग आप कैसे करते हैं। आपके पास एक पैसा हो या करोड़ रुपया। वह तभी मूल्यमान् है यदि उसका उपयोग किसी उच्च ध्येय की पूर्ति में किया जा सके।

× × ×

आपके पास ज्ञानबल है, वाणी का बल है, तपोबल है, योगबल है अथवा अन्य किसी प्रकार का बल है। किन्तु वह अपने आप में कुछ नहीं है। उनका मूल्य तभी है जब उन्हें किसी महान् ध्येय की पूर्ति में अर्पित कर दिया जाय।

इसी का नाम यज्ञ है।
इसी का नाम त्याग है।
इसी का नाम अर्पण है।
इसी का नाम महलय है।
इसी का नाम अमृत है।

'इन्दु'

दहेज की देन

श्रीमती सत्य जैन 'प्रभाकर'

'भाभी ! खाना खा लो', धीमी सी आवाज आई।

परन्तु, उर्मिला अचेत सी पड़ी।

'भाभी !' किवाड़ खोलकर भीतर प्रवेश करते हुए एक बालिका ने कहा और दीवार के सहारे चटाई पर बैठी उर्मिला को हिला कर बोली—भाभी ! खाना खा लो।

'हूँ … मैं … 'हड़बड़ा कर उठती हुई उर्मिला बोली—मुझे भूख नहीं है बहिन।

'जरा सा खा लो न, भाभी !' बालिका के स्वर में करुण आग्रह था।

उर्मिला के नेत्रों से टप टप आंसू टपक पड़े। 'मुझे भूख नहीं है बहिन', रुँधते हुए कंठ से, पुचकारते हुए उर्मिला बोली।

'तुम रोओ मत भाभी … ये देखेंगी तो और भी बिगड़ेंगी …'

' … किसी का कुछ दोष नहीं बहिन … और मैं रो कहाँ रही हूँ ?' आँसुओं से गीले मुख पर हँसी की क्षीण रेखा लाने की चेष्टा करते हुए उर्मिला ने कहा तो सही परन्तु उसका बाँध टूट गया था और रोकते रोकते भी उसके नेत्रों से सावन भादों की झड़ी लग गई।

बालिका चली गई।

कुछ क्षणों के पश्चात्—उर्मिला को ऐसा प्रतीत हुआ मानों कड़कड़ाती बिजली उसी के ऊपर गिरने वाली है। क्रोध से लाल पीली हुई उर्मिला की सास एक दम आकर वाग्बाण वर्षा करने लगी—

मरी रो कुचैल ! किस बूते पर मुझ पर रौब जमाने चली है ? तेरे बाप ने मुझे कौन से हाथी घोड़े दहेज में दिए हैं ? यहाँ मरने को गई था, कब मरती है या आज मर। मैं तुझे घर में रखना भी नहीं चाहती। निकल यहाँ से, जहाँ से आई है वहीं चली जा।

न जाने क्या अनाप शनाप बोलती हुई जब वे कमरे में से बाहर चली गईं तो उर्मिला ने चैन की साँस ली। दो दिन हो गए, इस

घर में प्रवेश करते ही वह जो इस छोटे से कमरे का आश्रय लेकर पड़ी है तो पड़ी है, किसी ने उसके खाने पीने की सुधि नहीं ली। लेता भी कौन ? सास तो दहेज देखकर आग बबूला हो उठी थी, और ससुर साहब माया धुनने में व्यस्त थे। जेठानी। भला वह क्यों सास से दो रत्ती कम होती। और पति। वह अपने घरवालों से विपरीत कैसे हो ?

प्यास के मारे उर्मिला का कंठ सूख रहा था, किन्तु वह अपने अश्रुओं का खारी जल पीकर सो गई थी, इस लड़की ने आज शाम को आकर खाने की सुधि क्या ली, एक बवाल खड़ा कर दिया।

कहाँ गये वे कालेज के सुनहले सपने! उन्नत मास्तिष्क। माँ की ममता, पिता का प्यार, भैया का मधुर स्नेह! हाय रे नारी जीवन। उर्मिला जी भर कर रोई, परन्तु वहाँ उसे चुप करानेवाला कौन था ? सामने की दीवार पर चित्र टँगा हुआ था उस युवक व्यक्ति का जिसने दो दिन पहले अग्नि को साक्षी बनाकर उसका साथ निभाने का वचन दिया था, सुख दुःख में कर्तव्य का परिधान किया था। उर्मिला ने अश्रुपूरित पलकों से ऊपर देखा—उसे चित्र में अंकित मुस्कराहट कटु व्यंग सी प्रतीत हुई।

धीरे-धीरे वह सौम्य बाला निद्रा देवी की गोद में पड़ कर अचेत हो गई। रात लगभग आधी से कम बीत चुकी थी, किसी ने धीरे से उसे हिलाया, चौंक कर उर्मिला ने पूछा 'कौन ?'

'मैं हूँ चंदा', उर्मिला को सहारा देते हुए चंदा ने कहा।

रात्रि वल्लभ की धुँधली आभा में उर्मिला ने चंदा को पहिचान कर कहा—ओहो। आप ?

' उर्मिला मैं तुम्हारा साथ निभा न सकूँगा, तुम जानती हो मैं अपने माता पिता के बिना कुछ नहीं कर सकता '

उर्मिला कलेजा पकड़कर धरती पर बैठ गई। 'परन्तु आप अपनी प्रतिज्ञा को केवल दहेज की कमी के बदले में चकनाचूर कर देंगे! आपका मेरे प्रति क्या यही कर्तव्य है ?' उर्मिला के मुरझाये पुष्प से मुख पर ऐसी आभा प्रदीप्त हो उठी जिसके समक्ष चंदा हतप्रभ हो गये।

'यह मैं कुछ नहीं जानता उर्मिला, जानता हूँ केवल इतना कि मैं कायर हूँ। मैंने दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली है, मैं विवश हूँ, परन्तु तुम्हारी दिल हिलकर के मृत्यु नहीं देख सकूँगा चाहे मरी दरिया में एक बार ही ढकेल दूँ, उठो '

उर्मिला सिसक उठी, 'कहाँ जाऊँ ? पीहर। मैं नहीं जाऊँगी इ
प्रकार अपमानित होकर।'

'मारुँगा मैं जो तुम्हारे मामा रहते हैं ? चलो वहीं तुम्हें छो
आता हूँ'

'ओह" वे तो इसाई हो गये हैं।'

'तुम्हारे पिताजी भी तुम्हारी खोज खबर लिये बिना न रहेंगे, चे
मत करो।'

उर्मिला कठपुतली की भाँति उठ खड़ी हुई। ओह! इस घर
क्या मेरे लिये तिल भर भी स्थान नहीं है ?

'यह लो उर्मिला अपने गहनों का डिब्बा। तुम समझ लेना तुम्हार
पति कायर था। और देखो मेरे नाम तक को भी भूल जाना, तुम
पढ़ी लिखी हो, अपनी जीवन नैया स्वयं खे सकती हो, आओ भगवा
तुम्हारा साथ देंगे।'

उर्मिला का सोया हुआ अभिमान जागृत हो उठा, हृदय की टंका
वाणी के रूप में झंकृत हो उठी—आप पुरुष होकर भी अपने कर्त्त
से च्युत हो जाइये, परन्तु मैं नारी होकर भी अपने कर्तव्य पर अटल
रहूँगी। गहनों का डिब्बा मुझे नहीं चाहिए, मेरे माता-पिता ने विदा
के रूप में मुझे जो आभूषण पहिना दिये हैं, वही मेरे लिये पर्याप्त हैं।
सामने की दीवार पर का चित्र उर्मिला ने झपटकर उतार लिया और
मस्तक से लगाकर बोली—

मैं जन्म भर इस देवता की अर्चना करूँगी, भारत की कन्या
गणिका नहीं है, वह अपना मार्ग चुनने के लिये सदैव स्वतन्त्र रही
है। जाइये आप मुझे भूल जाइये, परन्तु मैं आपको भूल न सकूँगी।
माता पिता आपका साथ न निभेंगे, भैया भाभी भी मोहबिना का
बदला चुकाये बिना न रहेंगे, परन्तु मैं आपकी सेवा के लिये सदैव
प्रस्तुत हूँ।

पैरों पर गिरती हुई उर्मिला को हाथों पर [illegible] हुए भैया
बोले—अधिक न सताओ [illegible] लगा [illegible] सताओ
पर्याप्त है, अब अधिक [illegible]

साथ होंगे ही पर मैं [illegible] अपना
पारिवा, रात को चोरी से [illegible]

क्यों, क्या घर से झगड़कर आये हो ?—एक साइकिल सवार
न्य महिला ने ठोकर लगने से बचाते हुए एक पैदल चलते व्यक्ति
कहा।

"झगड़ कर तो आया हूँ परन्तु साइकिल की चोट से मर तो नहीं
कता था, तुम ने व्यर्थ में ही बचाया।" घुटने को दबाते हुये वह
क्ति बोला।

रंगीन चश्मा उतार कर महिला ने गौर से व्यक्ति की ओर देखा,
दय धड़क उठा

'तुम कौन हो ?"

"एक राह चलता पंथी, तुम्हें इस से क्या", वह आगे बढ़ने लगा।

'अरे ! अपना नाम तो बताते जाओ।" महिला ने फिर टोका।

'चंदा"।

'ऐं चदा ! ठहरो आप ने मुझे पहचाना ?"

"नहीं हैं ! उर्मिला ! तुम कहा !"

'इधर चलो फुट पाथ पर।" उर्मिला हाथ पकड़ कर चंदा को फुट
पाथ पर ले आई, मानो वह एक खोई हुई निधि को पुन पाकर खो
जाने से डरती हो।

'मैं कॉलेज जा रही थी, क्या समाचार है आपके घर वालों का ?
सब अच्छे हैं न ! और आप इतने दुर्बल क्यों हो गये ?"

"तुम तो एक दम बदल गई उर्मिला मैं तुम्हें पहचान भी न सका।"

"यह सब पीछे बताऊँगी, मेरे देवता ने मुझे आज इस पदवी
पर पहुँचा दिया है पहिले अपने समाचार सुनाइये आप तो बहुत
ही दुर्बल !"

"क्या पूछती हो उर्मिला ! आज छ: महीने तुम्हें घर से निकले हो
गये, हमारे घर की हस्ती ही मिट गई पिताजी ने सट्टे के व्यापार में
घाटा दिया, मकान बिका, घर में कलह मची उसी के फलस्वरूप
पिताजी घर छोड़कर चले गए और अम्मा हार्टफेल से अपनी जीवन-
लीला समाप्त कर गईं, मेरा नौकरी छूट गई, भैया भाभी के तानों से
तंग आकर मैं कल घर से निकल पड़ा था, निरुद्देश्य, शायद मृत्यु
की खोज में !"

उर्मिला के नेत्र सजल हो उठे "ओहो ! इतने कष्ट सहने पड़े
आपको !"

"तुम जैसी देवी की अवहेलना करके भी कष्ट न पाता तो आश्चर्य
था, उर्मिला मैंने तुम पर बड़ा अत्याचार किया ~ !"

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

उर्मिला सिसक उठी, 'कहाँ जाऊँ ? पीहर ! मैं नहीं जाऊँगी इस प्रकार अपमानित होकर।'

'माटुगा में जो तुम्हारे मामा रहते हैं ? चलो वहीं तुम्हें छोड़ आता हूँ'

'ओह वे तो ईसाई हो गये हैं।'

'तुम्हारे पिताजी भी तुम्हारी खोज खबर लिये बिना न रहेंगे चिन्ता मत करो।'

उर्मिला कठपुतली की भाँति उठ खड़ी हुई। ओह! इस घर में क्या मेरे लिये तिल भर भी स्थान नहीं है ?

'यह लो उर्मिला अपने गहनों का डिब्बा। तुम समझ लेना तुम्हारा पति कायर था। और देखो मेरे नाम तक को भी भूल जाना, तुम पढ़ी लिखी हो, अपनी जीवन नैया स्वयं खे सकती हो, जाओ भगवान तुम्हारा साथ देंगे।'

उर्मिला का सोया हुआ अभिमान जागृत हो उठा, हृदय की वेदना वाणी के रूप में झंकृत हो उठी—आप पुरुष होकर भी अपने कर्तव्य से च्युत हो जाइये, परन्तु मैं नारी होकर भी अपने कर्तव्य पर अटल रहूँगी। गहनों का डिब्बा मुझे नहीं चाहिए, मेरे माता-पिता ने विदा के रूप में मुझे जो आभूषण पहिना दिये हैं, वही मेरे लिये पर्याप्त हैं। सामने की दीवार पर का चित्र उर्मिला ने झपटकर प्यार किया और मस्तक से लगाकर बोली—

मैं जन्म भर इस देवता की अर्चना करूँगी, भारत की कन्या गणिका नहीं है, वह अपना मार्ग चुनने के लिये सदैव प्रस्तुत रहती है। जाइये आप मुझे भूल जाइये, परन्तु मैं आपको भूल न सकूँगी। माता पिता आपका साथ न निभेंगे, भैया भाभी भी मौलिकता का चस्का चखाये बिना न रहेंगे, परन्तु मैं आपकी सेवा के लिये सदैव प्रस्तुत हूँ।

पैरों पर गिरती हुई उर्मिला को हाथों पर सम्हालते हुए पति बोले—अधिक न सताओ उर्मिला, मुझे जगाने के लिये यही बहुत पर्याप्त है, अब अधिक विलम्ब मत करो।

प्रातः होते ही घर में कुहराम मच गया—कुल कलंकिनी, अनाचारिणी, रात को चोरी से भाग गई।

४

क्यों, क्या घर से झगड़कर आये हो ?—एक साइकिल सवार भव्य महिला ने ठोकर लगने से बचाते हुए एक पैदल चलते व्यक्ति से कहा।

"झगड़ कर तो आया हूँ परन्तु साइकिल की चोट से मर तो नहीं सकता था, तुम ने व्यर्थ में ही बचाया।" घुटने को दबाते हुये वह व्यक्ति बोला।

रंगीन चश्मा उतार कर महिला ने गौर से व्यक्ति की ओर देखा, हृदय धड़क उठा

'तुम कौन हो ?"

"एक राह चलता पंथी, तुम्हें इस से क्या", वह आगे बढ़ने लगा।

'अरे ! अपना नाम तो बताते जाओ।" महिला ने फिर टोका।

'चंदा"।

'एँ चदा ! ठहरो आप ने मुझे पहचाना ?"

"नहीं हूँ ! उर्मिला ! तुम कहा !"

"इधर चलो फुट पाथ पर।" उर्मिला हाथ पकड़ कर चंदा को फुट पाथ पर ले आई, मानो वह एक खोई हुई निधि को पुन पाकर खो जाने से डरती हो।

"मैं कॉलेज जा रही थी, क्या समाचार है आपके घर वालों का ? सब अच्छे हैं न ! और आप इतने दुर्बल क्यों हो गये ?"

"तुम तो एक दम बदल गई उर्मिला, मैं तुम्हें पहचान भी न सका।"

"यह सब पीछे बताऊँगी, मेरे देवता ने मुझे आज इस पदवी पर पहुँचा दिया है पहिले अपने समाचार सुनाइये आप तो बहुत ही दुर्बल।"

"क्या पूछती हो उर्मिला ! आज छः महीने तुम्हें घर से निकले हो गये, हमारे घर की हस्ती ही मिट गई पिताजी ने सट्टे के व्यापार में घाटा दिया, मकान बिका, घर में कलह मची उसी के फलस्वरूप पिताजी घर छोड़कर चले गए और अम्मा हार्टफेल से अपनी जीवन-लीला समाप्त कर गई, मेरी नौकरी छूट गई, भैया भाभी के तानों से तंग आकर मैं कल घर से निकल पड़ा था, निरुद्देश्य, शायद मृत्यु की खोज में।"

उर्मिला के नेत्र सजल हो उठे 'ओहो ! इतने कष्ट सहने पड़े आपको।"

"तुम जैसी देवी की अवहेलना करके भी कष्ट न पाता तो आश्चर्य था, उर्मिला मैंने तुम पर बड़ा अत्याचार किया।"

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

चर्चाओं की दर्शनान्तरों के साथ तुलना की है। इसलिए
नात्मक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। शुद्ध मूलपाठ तथा
शिष्टों के कारण पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। —इन्द्र

शान्ति और जैन धर्म

लेखक—साहित्यरत्न प० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, न्याय-तीर्थ। प्रकाशक—जुगलकिशोर जैन बी० एस-सी०, जैनेन्द्र भवन, आरा, मूल्य – आठ आना।

प्रस्तुत पुस्तक निबन्ध प्रतियोगिता के लिए लिखी गई थी। भा० दि० जैन विद्वत् परिषद् की ओर से इस पर लेखक को प्रथम पुरस्कार दिया गया। निबन्ध के प्रारम्भ में मानव की मूलभूत प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। शान्ति और अशान्ति का मानव-जीवन से क्या संबन्ध है, इसे स्पष्ट करते हुए अशान्ति के कारणों का वर्गीकरण किया गया है। यह अशान्ति वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय आदि अनेक रूपों में पाई जाती है। विश्व की विविध विचार धाराओं द्वारा शान्ति के लिए किए गए प्रयत्नों की समीक्षा करने के उपरान्त जैन दृष्टि से शान्ति की स्थापना कैसे हो सकती है। इस पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। निबन्ध पठनीय है।

भगवान् महावीर और उनका साधना मार्ग

लेखक—रिषभदास राका सम्पादक—जमनालाल जैन
प्रमुख वितरक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा, मूल्य–चार आना

इस पत्रिका के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें भगवान् महावीर का जीवन चित्रित किया गया है एवं उनके उपदेशों की सारभूत समीक्षा की गई है। प्रारम्भ में कुछ पृष्ठ महावीर के जीवन पर हैं जो एक स्वतन्त्र निबन्ध के रूप में काम में लाए जा सकते हैं। दूसरे भाग में महावीर की साधना के मार्ग का विश्लेषण है। कर्म को दूर करने के लिए जिन दस धर्मों की आवश्यकता रहती है उनका विवेचन करने के बाद बारह भावनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। साधक को जिन बाइस परीषहों को जीतना चाहिए उनका विवेचन करने के बाद पुस्तिका समाप्त हो जाती है। इस प्रकार आचार शास्त्र की भूमिका के रूप में [illegible]

विश्वविद्यालय तथा जैन पाठ्यक्रम

जैन साहित्य के प्रकाश में न आने का एक प्रबल कारण यह भी है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में उसका कोई स्थान नहीं है। वेदान्त, न्यायदर्शन, बौद्धदर्शन आदि पर अंग्रेजी म अनेक प्रामाणिक पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। इसका कारण यही है कि वे विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं। उन विषयों के अध्ययन एवं अध्यापन के लिए योग्य पुस्तकों की माग रहती है। यदि जैन दर्शन को भी उसी प्रकार स्थान मिल जाय तो अध्यापक एवं विद्यार्थियों का ध्यान अपने आप इस ओर आकृष्ट होने लगे। इसके लिए बम्बई विश्वविद्यालय का उदाहरण हमारे सामने है। जब वहाँ अर्धमागधी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला है, इस भाषा के छोटे मोटे अनेक ग्रन्थ निकल चुके हैं। जैन एवं जैनेतर सभी ने इस ओर ध्यान दिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उससे अर्धमागधी साहित्य की अपूर्व सेवा हुई है।

यदि दूसरे विश्वविद्यालयों में भी इसी प्रकार का पाठ्यक्रम रखा जाय तो अर्द्धमागधी का प्रचार समस्त भारत में हो सकता है।

हम जैन समाज के पत्रों, विद्वानों एवं नेताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। हम चाहते हैं श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापंथी सभी मिलकर इस आन्दोलन को बलवान् बनाएं कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों में जैन दर्शन एवं प्राकृत को पाठ्यक्रम के रूप में स्थान मिले। हमारी माँग निम्नलिखित होनी चाहिए—

१—जहाँ वेदान्त, मीमांसा आदि दूसरे दर्शनों के स्वतन्त्र प्रश्न पत्र हैं, वहाँ जैन दर्शन का भी प्रश्नपत्र रहे। जहाँ वे वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकृत हैं वहाँ जैन दर्शन का भी एक विकल्प हो।

२—द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत के समान प्राकृत का विकल्प भी रहे।

३—जिस प्रकार विशेष अध्ययन के लिए शंकर, रामानुज, मध्व आदि को रखा जाता है, उसी प्रकार उमास्वाति, कुन्दकुन्द, सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, जिनभद्र, हरिभद्र, देवसूरि, हेमचन्द्र, यशोविजय आदि जैन दार्शनिकों को भी रखा जाय।

अपनी बात

हमारी साहित्य चेतना

जैन साहित्य को प्रामाणिक एवं आधुनिक रूप में प्रकाशित करने के लिए चारों ओर से आवाज उठ रही है। भारतीय संस्कृति साहित्य का प्रत्येक प्रेमी इस आन्दोलन का स्वागत करेगा। इससे भारतीय पुरातत्व की एक कड़ी जो अँधेरे में छिपी हुई है, प्रकाश में आ जाएगी और परम्परा की शृंखला के सन्धान में महत्वपूर्ण [illegible] होगी। कार्य इतना महान् है कि इसके लिए विविध प्रकार की योग्यता रखने वाले अनेक विद्वानों का सम्पर्क स्थापित करना होगा, साथ ही विपुल धनराशि की भी आवश्यकता पड़ेगी। हम [illegible] लिख चुके हैं कि जो संस्थाएँ या व्यक्ति इस ओर कार्य करना चाहते हैं उन्हें पवित्र निष्ठा के साथ आगे आना चाहिए और केन्द्रीय संगठन बनाकर व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ना चाहिए। यदि कोई संस्था स्वतन्त्र रूप से ही कार्य करना चाहती है तो [illegible] स्पर्धा होने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि निश्चित [illegible] तथा पद्धति से कार्य होता रहे तो थोड़े ही समय [illegible] अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसके लिए पहला काम यह है कि [illegible] अप्रकाशित एवं पुराने प्रकाशन योग्य ग्रन्थों की एक सूची बना ली जाए। हस्तलिखित भण्डारों के व्यवस्थापक [illegible] की सूचियाँ तैयार करके स्वतन्त्र पुस्तिका या पत्रों में प्रकाशित करें। उनके आधार पर विद्वद्वर्ग एक विस्तृत सूची तैयार करे और विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं को [illegible] करे। संस्थाएँ अपनी [illegible] इच्छानुसार उनमें से ग्रन्थ निश्चित करके प्रकाशन [illegible] कर दें। [illegible] अपनी [illegible] के अनुसार [illegible] प्रकार [illegible] अपनी [illegible] [illegible] साहित्य [illegible] में एक व्यवस्था हो जाएगी। [illegible] दूर [illegible] और [illegible] हुआ करेगा।

विश्वविद्यालय तथा जैन पाठ्यक्रम

जैन साहित्य के प्रकाश में न आने का एक प्रबल कारण यह भी है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में उसका कोई स्थान नहीं है। वेदान्त, न्यायदर्शन, बौद्धदर्शन आदि पर अंग्रेजी में अनेक प्रामाणिक पुस्तकें लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। इसका कारण यही है कि वे विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते हैं। उन विषयों के अध्ययन एवं अध्यापन के लिए योग्य पुस्तकों की माग रहती है। यदि जैन दर्शन को भी इसी प्रकार स्थान मिल जाय तो अध्यापक एवं विद्यार्थियों का ध्यान अपने आप इस ओर आकृष्ट होने लगे। इसके लिए बम्बई विश्वविद्यालय का उदाहरण हमारे सामने है। जब वहाँ अर्धमागधी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला है, इस भाषा के छोटे मोटे अनेक ग्रन्थ निकल चुके हैं। जैन एवं जैनेतर सभी ने इस ओर ध्यान दिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उससे अर्द्धमागधी साहित्य की अपूर्व सेवा हुई है।

यदि दूसरे विश्वविद्यालयों में भी इसी प्रकार का पाठ्यक्रम रखा जाय तो अर्द्धमागधी का प्रचार समस्त भारत में हो सकता है।

हम जैन समाज के पत्रों, विद्वानों एवं नेताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। हम चाहते हैं श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापंथी सभी मिलकर इस आन्दोलन को बलवान् बनाएं कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों में जैन दर्शन एवं प्राकृत को पाठ्यक्रम के रूप में स्थान मिले। हमारी माँग निम्नलिखित होनी चाहिए—

१—जहाँ वेदान्त, मीमांसा आदि दूसरे दर्शनों के स्वतन्त्र प्रश्न पत्र हैं, वहाँ जैन दर्शन का भी प्रश्नपत्र रहे। जहाँ वे वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकृत हैं वहाँ जैन दर्शन का भी एक विकल्प हो।

२—द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत के समान प्राकृत का विकल्प भी रहे।

३—जिस प्रकार विशेष अध्ययन के लिए शंकर, रामानुज, मध्व आदि को रखा जाता है, उसी प्रकार उमास्वाति, कुन्दकुन्द, सिद्धसेन, समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, जिनभद्र, हरिभद्र, देवसूरि, हेमचन्द्र, यशोविजय आदि जैन दार्शनिकों को भी रखा जाय।

४—प्रत्येक विश्वविद्यालय में जैन दर्शन के अध्यापन की समुचित व्यवस्था हो।

उपरोक्त आन्दोलन के लिए प्रस्ताव तो कई बार पास हुए हैं किन्तु विशेष प्रयत्न नहीं हुआ। भारत जैन महामण्डल ने अपने मद्रास (१९४९) अधिवेशन में इस आशय का प्रस्ताव पास किया था। १९५२ में स्थानकवासी कान्फरेंस ने भी इसे पास किया था।

हम चाहते हैं, यह आन्दोलन समस्त जैन समाज की ओर से हो।

१—इसके लिए सर्व प्रथम केन्द्रीय प्रधानमन्त्री तथा शिक्षामन्त्री, प्रान्तीय प्रधान मन्त्री तथा शिक्षा मन्त्री तथा सभी विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के पास एक स्मृतिपत्र भेजा जाय। उसमें जैन समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाले प्रमुख संगठनों के सभापति एवं प्रधानमन्त्रियों के हस्ताक्षर हों।

२—स्मृतिपत्र के कुछ दिन बाद शिष्ट मण्डल के रूप में मिला जाय।

३—सौराष्ट्र, मध्यभारत, राजस्थान आदि राज्यों में जहाँ जैनियों की बड़ी संख्या है, विशेष प्रयत्न किया जाय।

४—जगह जगह सभाएँ करके यह माँग सरकार के सामने रखी जाय।

५—विश्वविद्यालयों, कोर्ट तथा काउंसिल की बैठकों में इस विषय का प्रस्ताव रखने के लिए सदस्यों को तैयार किया जाय।

विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान मिलने पर जैन साहित्य के प्रकाश में आयगा ही, साथ ही नवीन दृष्टिवाले जैन दर्शन एवं साहित्य के विद्वान् भी तैयार होंगे।

'श्रमण' के इसी अंक का मोड़-पत्र

श्री सोहनलाल जैन प्रचारक समिति

अमृतसर

चौदहवीं रिपोर्ट

१९५२

प्रकाशक

मंत्री, श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति,

अमृतसर

(एक्ट २१ सन् १८६० के अनुसार रजिस्टर्ड)

की

चौदहवीं रिपोर्ट

सन् १९५?

१—इस वर्ष भी समिति का कार्य बराबर प्रगतिशील रहा है। रिसर्च आदि कार्यों के अतिरिक्त समिति नवीन साहित्य निर्माण आदि प्रवृत्तियों की ओर भी अपना कदम उठाने की चिन्ता और चेष्टा में रही है, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के सुझाववानुसार उनकी योजनाओं में से "जैन साहित्य के इतिहास" की तैयारी के लिए प्रयत्न आरम्भ करने का निश्चय किया गया है। वर्तमान वर्ष में अनेक स्कालरों की सहायता से इस कार्य की उचित रूपरेखा प्राप्त करने और लेखकार्य सौंपने का प्रयत्न करने की व्यवस्था की जाएगी। इसके लिए 'जैन साहित्य निर्माण योजना समिति' की रचना की गई है।

२—जैन साहित्य का इतिहास कई कारणों से तैयार करना आसान भी नहीं है, जैनाचार्यों और इस क्षेत्र के अन्य महापुरुषों की मान्यता यही रही है कि धर्म सब पुरुषों के लिए हितकर एवं आवश्यक संस्कार है। इसलिए इसका किसी एक या विशेष भाषा में ही लिखा होना जनसाधारण के लिए उतना उपयोगी होना कठिन है जितना कि उन प्राणी-हितैषियों की कामना थी। इस प्रेरणा के कारण से उन पूर्व पुरुषों ने जहाँ जहाँ वह धर्मोपदेश देने के लिए विचरते रहे वहाँ वहाँ की भाषा का उपयोग किया है। इस कारण से जैनसाहित्य संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश, तामिल, तेलगु, कन्नड आदि में भी बहुत विस्तृत है। वर्तमान भाषाओं में भी है। इन सब विस्तृत ग्रन्थों का परिग्रहण करना व्यापक दृष्टि और परिश्रम का काम है।

३—जैन साहित्य के इतिहास का कार्य इससे पहले इस रूप में अभी हुआ नहीं जैसा कि वर्तमान धारणाएँ इस प्रकार के कार्य के लिए मानते हैं।

समिति के उद्देश्य

१—जैन समाज में आगम, दर्शन, साहित्य, पुरातत्त्व तथा अन्य विषयों के गम्भीर विद्वान् एवं लेखक तैयार करना।

२—जैन संस्कृति और तत्सम्बन्धी प्रामाणिक साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन।

३—योग्य विद्वानों को भारतीय संस्कृति का सांस्कृतिक-प्रचारक बनाकर देश तथा विदेश में भेजना।

४—भारतीय तथा विदेशी विद्वानों का ध्यान जैन संस्कृति की ओर खींचना।

५—भारतीय संस्कृति के व्यापक रूप को प्रकाश में लाने के लिए शोधकार्य एवं अन्य प्रयत्न करना।

समिति द्वारा संचालित
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस की
वर्तमान प्रवृत्तियाँ—

१—जैन साहित्य निर्माण योजना

२—शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय

३—Research Fellowships
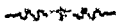
४—छात्रावास एवं छात्रवृत्तियाँ

५—'श्रमण' (हिन्दी मासिक)

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति,

अमृतसर

(एक्ट २१ सन् १८६० के अनुसार रजिस्टर्ड)

की

चौदहवीं रिपोर्ट

सन् १९५८

१—इस वर्ष भी समिति का कार्य बराबर प्रगतिशील रहा है। रिसर्च आदि कार्यों के अतिरिक्त समिति नवीन साहित्य निर्माण आदि प्रवृत्तियों की ओर भी अपना कदम उठाने की चिन्ता और चेष्टा में रही है, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के सुझावानुसार उनकी योजनाओं में से "जैन साहित्य के इतिहास" की तैयारी के लिए प्रयत्न आरम्भ करने का निश्चय किया गया है। वर्तमान वर्ष में अनेक स्कालरों की सहायता से इस कार्य की उचित रूपरेखा प्राप्त करने और लेखनकार्य सौंपने का प्रयत्न करने की व्यवस्था की जाएगी। इसके लिए 'जैन साहित्य निर्माण योजना समिति' की रचना की गई है।

२—जैन साहित्य का इतिहास कई कारणों से तैयार करना आसान भी नहीं है, जैनाचार्यों और इस क्षेत्र के अन्य महापुरुषों की मान्यता यही रही है कि धर्म सब पुरुषों के लिए हितकर एवं आवश्यक संस्कार है। इसलिए इसका किसी एक या विशेष भाषा में ही लिखा होना जनसाधारण के लिए उतना उपयोगी होना कठिन है जितना कि उन प्राणी-हितैषियों की कामना थी। इस प्रेरणा के कारण से उन पूर्व पुरुषों ने जहाँ जहाँ वह धर्मोपदेश देने के लिए विचरते रहे वहाँ वहाँ की भाषा का उपयोग किया है। इस कारण से जैनसाहित्य संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश, तामिल, तेलगु कनड़ आदि में भी बहुत विस्तृत है। वर्तमान भाषाओं में भी है। इन सब विस्तृत क्षेत्रों का परिभ्रमण करना व्यापक दृष्टि और परिश्रम का काम है।

३—जैन साहित्य के इतिहास का कार्य इससे पहले उस रूप में अभी हुआ नहीं जैसा कि वर्तमान धारणायें इस प्रकार के कार्य के लिए मान्य हैं।

यदि इस मेमोरियल फण्ड के (जो स्वर्गीय आचार्य श्री काशीरामजी महाराज की स्मृति के लिए अम्बाला में उनके देहावसान के अवसर पर प्रारम्भ किया गया था) वे दानी महाशय जिन्होंने उसमें सहायता देने का वादा जाहिर किया था, अपने वादे की रकम भी ट्रस्ट को दे दें तो यह कार्य और भी विस्तार से किया जा सकता है।

६—समिति संस्कृत माध्यम के विद्यार्थियों को जैनदर्शन के अध्ययन के लिए सहायता देती है, इसके अतिरिक्त आर्टस (Arts) के एम॰ ए॰ के योग्य विद्यार्थियों को भी छात्रवृत्तियाँ देती है यदि वे अपना विषय ऐसा चुनें जिसमें जैन पेपर लिये जा सकें या वे जैन दर्शन का अध्ययन करना चाहें।

७—यदि समाज ध्यान दे तो विदेशी विद्यार्थी भी ऐसे उपस्थित होते रहते हैं जो जैन दर्शन पढ़ना चाहते हैं परन्तु उन्हें आर्थिक सहायता की जरूरत रहती है। ६००) से ६००) रु॰ वार्षिक प्रति विद्यार्थी का खर्च होता है।

इस प्रकार अनेक रास्ते इस ओर काम करने के निकल या बन सकते हैं। समाज का ध्यान होना जरूरी है।

स्कालर, विद्यार्थी और श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस—

८—सन् १६५२ में निम्न स्कालर और विद्यार्थी समिति की ओर से पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस में संशोधन (रिसर्च) और विद्याध्ययन करते रहे हैं—

(१) डॉ॰ इन्द्रचन्द्र शास्त्री—पहले लिखा जा चुका है कि उनका "जैनों के ज्ञानवाद" Jain Epistemology का निबन्ध हिन्दू यूनिवर्सिटी ने स्वीकृत कर लिया था। इसके उपलक्ष में उन्हें पीएच॰ डी॰ की डिग्री यूनिवर्सिटी से मिली है। परीक्षकों ने उनके निबन्ध को मान्य करते हुए उनकी प्रशंसा की है और इसको अधिक उपयोगी बनाने के लिए सुझाव भी दिये हैं। डा॰ इन्द्रचन्द्र अब उस निबन्ध को पुस्तकाकार देने में लगे हैं। श्रमण का सम्पादकत्व और जैन साहित्य निर्माण योजना की व्यवस्था भी आपके हाथ में है।

(२) श्री गुलाबचन्द्र चौधरी एम॰ ए॰—इनका निबन्ध (Thesis) तैयार है। इस अगस्त में यूनिवर्सिटी को परीक्षार्थ पेश किया जायगा। आशा है इसके स्वीकृत होने पर श्री गुलाबचन्द्र भी डाक्टर आफ फिलासफी (Ph D) हो जायेंगे। इस [illegible]

शतावधानी रत्नचन्द्र लायब्रेरी, बनारस—

१२—उपरोक्त विद्या विकास सम्बन्धी कार्यों के लिए विशिष्ट पुस्तक संग्रह की जरूरत तो स्वयं सिद्ध ही है। इस सम्बन्ध में हम प्रतिवर्ष विस्तार से लिखते चले आ रहे हैं। सन् १९५२ के अन्त में लायब्रेरी में ४६०५ तक पुस्तकसंख्या पहुँच गई है। यह संग्रह विशेष ध्यान और दृष्टि से करना होता है ताकि रिसर्च के साधारण कार्य के लिए उपयुक्त पुस्तकों के अलावा समय समय पर चालू रिसर्च कार्य के लिए भी आवश्यक पुस्तकें भी संगृहीत होती रहें। समिति की ओर से उचित परामर्श प्राप्त करने की व्यवस्था रहती है।

१३—इसमें सन्देह नहीं कि लायब्रेरी के वर्तमान संग्रहालय के लिए स्थान छोटा हो गया है। पर पुस्तकसंख्या और अन्य सम्बन्धित जरूरतें बढ़ती जा रही हैं। इसी हेतु से विद्याश्रम की बढ़ती हुई जरूरतों और विकास को ध्यान में रखकर जैनाश्रमके चारों ओर की जमीन लेने के लिए Land Aquisition Act के अधीन कोशिश आरम्भ की जा चुकी है।

श्रमण (मासिक)—

१४—समिति की इस तीसरी प्रवृत्ति का चौथा वर्षारम्भ हो चुका है। इस वर्ष श्री मोहनलाल मेहता ने इसका सम्पादन पूरी जिम्मेवारी के साथ कुछ महीने किया है। अब फिर डा० इन्द्रचन्द्र जी ने सँभाला है। 'श्रमण' के संचालन में समिति की नीति क्या है इसका उल्लेख गतवर्ष इन शब्दों में किया गया था—

> "समिति इस परिवार (श्रमण के सम्पादन परिवार या बोर्ड) को जैन धर्म और अन्य विषयों पर समयोपयोगी अपने विचारों को स्वतन्त्रता से प्रकट करने के पक्ष में है किन्तु वे विचार समिति या इसकी संस्थाओं के अधिकृत नहीं समझने चाहिए। प्रतिबन्ध इतना है कि स्वतन्त्रता से विचार प्रकट करते समय जैनधर्म के विशाल दृष्टिकोण को आहत न किया जाए। लेखों में गम्भीरता (dignity) जिम्मेदारी और निर्माण की झलक रहनी चाहिए। कोई अशिष्टता और कलकवाद न होना चाहिए।"

१५—श्रमण के ग्राहकों की संख्या पर्याप्त नहीं है। एक सम्पन्न या उन्नति शील समाज में इस प्रकार के मासिक का कदर खूब होनी चाहिए। इसके लेखों में ठोस सामग्री रहती है। यदि इसमें प्रकाशित विचारों में किसी का मतभेद हो तो श्रमण परिवार उन विचारों का स्वागत करने को तैयार रहता है। किसी एक

और भूमि लेने का प्रबंध समिति ने किया है। सरकार को लैंड एक्विज़िशन एक्ट के अनुसार उक्त भूमि (Acquire) ले लेने की अर्जी इस वर्ष में प्रेषित की थी। हिन्दू यूनिवर्सिटी के वाईस चांसलर (कुलपति) महोदय ने इस विषय में हमारी जोरदार सिफारिश की थी। हमारी इस अर्जी (application) पर कार्यवाही रूप में हमें १५२०४) रुपये सरकारी खजाने में जमा कराने का हुकम हुआ है ताकि उक्त Act के section ४ के अनुसार घोषणा हो सके। मूल्य के निश्चय करने में आपत्ति होने पर भी यह रकम जमा कर दी गई है। आशा है सरकार हमें कब्जा (possession) शीघ्र दिला देगी। इस ३ ७८ एकड़ भूमि को मिलाकर समिति के पास वर्तमान विकासाय १६३६० वर्ग गज जमीन हो जायगी।

२० जमीन प्राप्त करने के संबंध में यह उल्लेख करना अत्यावश्यक है कि इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए २५०००) रुपये का उदार और बड़ा दान कलकत्ता व जयपुर निवासी दानशील सेठ सोहनलाल जी दूगड़ से मिला है। इन्होंने ही पिछले वर्ष १५ १६ हजार का वादा किया था और समय पर पचीस हजार तक बढ़ाने में संकोच नहीं किया है। इस वृहत् दान प्राप्ति का सारा श्रेय पण्डित श्री सुखलाल जी को है।

२१ इस विषय में इतना और भी लिखना जरूरी है कि समिति के कार्यकर्ता किसी अन्य विशेष कारण से जमीन के प्राप्त करने में विलम्ब नहीं कर रहे हैं। कानून और उसके संचालक अधिकारी अपनी ही गति से कार्य करते हैं। कानून की माँगों की पूर्ति किये बिना अगला कदम भी नहीं उठाया जा सकता। यह विवशता है। जमींदार जब कोई पक्की बात ही न करे तब उनको निश्चय भी तो नहीं किया जा सकता।

पर्युषण पर्व—

२२ इस वर्ष भी पर्युषण पर्व पूर्ववत् मनाया गया था और उसका खर्च अमृतसर निवासी लाला दुनीचन्द प्यारेलाल ने प्रदान किया था।

आर्थिक अवस्था—

२३ समिति का रुपया १९५२ में भी गवर्नमेंट [illegible] ७०३१८)॥) तक उसी प्रकार लाभार्थ लगा रहा है।

सन् १९५४ का हिसाब—

२४ इस रिपोर्ट के साथ [illegible] (Audit) किया हुआ हिसाब [illegible] प्रकाशित है। इस वर्ष [illegible] पर २[illegible]॥ का [illegible] हुआ है और [illegible]

१) श्री बलवन्तसिंह चोघा, उदयपुर
५) „ चतुरसिंह बोरया, „
२) „ जोरावरसिंह सोलखी, „
२) बलतावरलाल तलेसरा, „
२) श्री छगनमल सिंघवी, „
२) „ भँवरलाल सोरला, „
५) श्री भँवरलाल मादय्या, उदयपुर
४) „ मयाचन्द चोपड़ा, „
२) „ नन्दलाल कन्हैयालाल कोठारी, „
३१) „ मसानियामल श्रालूमल, श्रम्बाला शहर

९९३॥=) योग

३ मितिदान —

३०) श्री रमेशचन्द्र मरह M Sc श्रमृतसर
३०) „ श्रमृतलाल जैन, B A LL B, कलकत्ता
३०) „ ज्योतिप्रसाद जैन, I T O फिरोजाबाद
१०) „ राजेन्द्र सिंह सिंघी, कलकत्ता
३०) „ रामलाल चिरंजीलाल श्रग्वाला
१०) „ छज्जूमल लच्छमीचन्द, „
१०) „ हीरालाल नौरातराम, „
३०) „ विजयकुमार जैन दिल्ली व सार (बम्बई)
३०), मगलश्रुपिजी, लुधियाना
३०) „ सुन्दरलाल शान्तिलाल, बनारस
१०) „ कृष्णचन्द्राचार्य, „
३०) „ प्यारेलाल श्रमृतसर
३०) „ मिलखीमल बनारसीदास „
१०), मिलखीमल चैतनोमल ,
३०), बलवन्तमल, „
३०), राजकुमार (ला हुकमचंद बलवन्तमल) ,
३०), लालूमल (ला नत्थूमल लालूमल) „
३०) श्री टेकचन्द (ला नत्थूमल लालूमल) श्रमृतसर
३०) „ मोतीलाल (ला नत्थमल लालूमल) „
३०) „ सरदारीलाल (ला नत्थूमल लालूमल) „
३०) „ मिलखीमल हसराज „
३०) „ रलियाराम कस्तूरीलाल „
३०), हरजसराय जैन, „
३०) श्रीमती जीवनदेवी जगनाथ „
३०) श्री सुरेन्द्रनाथ M A B com „
३०) श्रीमती मायादेवी खनचंद „
९०) श्री हसराज (ला रतनचन्द हरजसराय—३ मिति),„
६०) श्रीमती श्रतरदेवी हसराज—२ मिति „
३०) नृपेन्द्रनाथ जैन B Sc Eng „
३०) श्रीमती लाजवन्ती हरजसराय „
३०) „ „ राजदुलारी नृपेन्द्रनाथ „
३०) श्री जगन्नाथ जैनी, सार (बम्बई)
३०) „ हरिश्चन्द्र जैन, सार .

१०) श्री मदनलाल जैन B A (ला० मुनिलाल मोतीलाल) दिल्ली
१०) श्रीमती विमला मदनलाल (ला० मुनिलाल मोतीलाल) „
१०) „ अरिदमन जैन ला० A D Ramlal „
१०) „ चम्पादेवी अरिदमन ला० A D Ramlal „
१०) „ रामलाल जैन ला० A D Ramlal „
१०) „ तिलकचन्द (रामलाल शोरीलाल) „
१०) „ सुखचैनलाल „
१०) „ जीवामल मेघकुमार „
१०) „ बनारसीदास प्रेमकुमार „
•) „ दुनीचन्द रतनचन्द „
१०) „ जगीलाल जैन M A LL B अम्बाला कैंट
१०) „ रामलाल (ला० रामलाल शोरीलाल), अमृतसर
६०) „ चिरञ्जीवलाल मनोहरलाल, मालेरकोटला
१०) „ नवलचन्द अभयचन्द मेहता, बम्बई
१०) „ ज्ञानचन्द c/o ला० ताराचन्द रतनचन्द, दिल्ली
१०) श्रीमती स्वर्णा ज्ञानचन्द „
१०) „ विलायती राम c/o टी० सी० रतनचंद, अमृतसर
१० श्रीमती मोहनदेवी विलायती राम अमृतसर
१०) „ भैयासीदास दौलतराम, दिल्ली
१०) „ पन्नालाल, विलायतीराम [illegible] दिल्ली

१०) श्रीमती लीला पन्नालाल विलायतीराम पन्नालाल दिल्ली
१०) „ विजयकुमार „ „
१०) „ राजकुमार „
१०) „ इन्दिर कौर भगवानदास „
१०) „ शोरीलाल जैन, कपूरथला
६०) „ तेलूराम जैन, जालन्धर छावनी
१०) „ मुनिलाल ला० मुनिलाल मोतीलाल अमृतसर
३०) „ मोतीलाल „
२०) भीमसेन „
१०) हसराज ला० मुनिलाल „
१०) श्रीमती फूलचन्दी हसराज „
१०) श्री शादीलाल B Com अमृतसर
१०) „ रोशनलाल „
१०) „ टेकचन्द, „
१०) श्रीमती गुरदेवी टेकचन्द, „
१०) श्री चिरञ्जीलाल, Bombay Trading Co, दिल्ली
३१) कोठारी गिरधरसिंह जी उदयपुर मेवाड़
११) „ हिम्मतसिंह सरूपरियाजी „
३०) „ सुजानसिंह जी बोरदिया „
३) „ भंवरलाल बोयतरा उदयपुर „
३१) श्रीमती रोशन बाई जीवनसिंह कोठारी „
१०) श्री कुन्दनसिंह सिमसेरा „
११) „ भीकमजी तोलारामजी, „
१०) „ हीरालाल दौलतराम जालन्धर शहर
१०) „ ज्ञानचराम दौलतराम „
१०) „ जगीलाल कस्तूरीलाल „
१०) „ बद्रीदास एण्ड संस „
१) „ मुनीलाल [illegible] „

सन् १९५३ के सदस्यों की सूचियाँ

(क) संरक्षक तथा उपसंरक्षक

१ सर्वश्री रतनचन्द हरजसराय अमृतसर, (संरक्षक)
२ सेठ छोटेलाल केशवजी शाह, कालबा देवी रोड, बम्बई, (संरक्षक)
३ सेठ सोहनलाल जी, दुगड़, कलकत्ता (संरक्षक)
४ सर्वश्री राजेन्द्रसिंह नरेन्द्रसिंह जी सिंघी, कलकत्ता (उपसंरक्षक)

(ख) आजीवन सदस्य सूची—

नियम नं० ६ (४) (b) व Proviso नं० १ के अनुसार

अमृतसर—

१ श्री जैन प्रेम सभा
२ ,, हुकमचंद काशीराम
३ ,, दुनीचद प्यारेलाल
४ ,, अमरावसिंह, राजपाल, लक्खीशाह
५ ,, भगवानदास पन्नालाल
६ ,, मोतीलाल सरदारीलाल सुपु० श्री लालूशाह
७ ,, नत्थूमल लालूमल
८ ,, हुकमचद बसन्तमल
९ ,, सालगराम बनारसीदास
१० ,, खगतराम बचीकचद
११ ,, मुनीलाल मनोहरलाल } ला० मुनीलाल मोती लाल
१२ ,, मोतीलाल शान्तीलाल
१३ ,, भीमसेन
१४ ,, हंसराज सत्यराम
१५ ,, रतनचद सुरेन्द्रनाथ } ला रतन चद हर जसराय
१६ , हरजसराय अमरचद
१७ ,, हंसराज नौरतराम
१८ ,, मुनीलाल भगवानदास, दबर दैचनेरीयां
१९ श्री टेकचद फगवाड़वाले—सा० विलायतीराम टेकचद
२० श्री बिशनदास अमरनाथ गोटेवाले
२१ ,, गंगाराम रक्खाराम
२२ ,, मिलखीमल हंसराज
२३ ,, रलेशाह पन्नालाल
२४ ,, लच्छमनदास मस्तराम
२५ ,, अर्जुनदास, बैशनोदास, बनारसीदास पुत्र ला मिलखीराम
२६ श्री नत्थूमल हंसराज ईंधनवाले

कपूरथला—

२७ श्री त्रिभुवननाथ
२८ ,, पृथ्वीराज सरदार, पटवोके

अम्बाला शहर

२९ श्री छज्जूमल लच्छमीचंद
३० , मेहरचंद बाबूराम
३१ ,, हीरालाल नौरतराम
३२ ,, मोहनलाल कुन्दनलाल

दिल्ली—

३३ श्री रामनारायण B A ,P C S Retd, नारायणनिवास, दरियागंज
३४ श्री कुन्दनलाल शीतलप्रसाद, [illegible] बाजार

२३ ,, मिलखीमल हसराज
२४ ,, मिलखीमल वैशनोदास
२५ ,, रलयाराम कस्तूरीलाल
२६ ,, मिलखीमल बनारसीदास
२७ ,, रामलाल शोरीलाल
२८ , प्यारेलाल स्यालकोटी
२९ , मंगलचन्द
३० ,, धनपतमल धमपाल
३१ ,, टेकचन्द
३२ ,, विलायतीराम
३३ श्रीमती फूलचन्दी हसराज
३४ ,, शकुन्तला भूपेन्द्रनाथ
३५ ,, अतरदेवी हसराज
३६ ,, लामदेवी हरबसराय
३७ , जीवनदेवी जगनाथ
३८ , मायादेवी रतनचन्द
३९ ,, मोहनदेवी विलायतीराम
४० , गुरदेवी टेकचन्द
४१ श्री मस्तराम जैनी

अम्बाला शहर —

४२ ,, बाबूराम टेकचन्द
४३ ,, हीरालाल नौरातराम
४४ ,, श्रीचन्द अमरनाथ
४५ , छज्जूमल लच्छमीचन्द
४६ , रामलाल चिरजीलाल
४७ ,, हजारीशाह पूरणचन्द
४८ ,, मानामल नैरायतीराम
४९ , मोहनलाल बाबूराम
५० ,, दुगादास डा० राजकुमार
५१ ,, बाबूराम जैन प्रींटिंग प्रेस
५२ ,, विद्याप्रकाश जैन
५३ ,, शादीलाल शानचन्द दर्जीम
५४ ,, बन्नोलाल जैन M A LL B (अम्बाला छावनी)

इन्दौर —

५५ श्री जेठमल धन्यतावरमल
५६ ,, अमृतलाल हसराज
५७ , मुन्नलाल भय्यरा
५८ ,, रायदास जगजीवनदास
५९ , कृष्नलाल हीरालाल मोदी
६० , सालमचन्द भैरोलाल
६१ ,, तेजमल मदनलाल जवेरी

उदयपुर (मेवाड़) —

६२ ,, कोठारी गिरधर सिंह
६३ ,, हिम्मतसिंह सरूपरीया (हाल-बम्बई)
६५ ,, मैंदरलाल बाराठ्य
६६ , कुन्दन सिंह मिमना
६७ , भीकम श्री सेमाराम जा

समिति के सम्मान्य सदस्य

[घ] आनरेरी मेम्बर

१ डॉ मंगलदेव शास्त्री M A D Phil , Ex Principal & Registrar, Government Sanskrit College Banaras

२ डॉ जी॰ एल॰ आत्रेय M A D Litt , K C K T
युनिवर्सिटी प्रोफेसर ऑफ फिलॉसॉफी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

३ डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

४ डॉ॰ आर सी॰ मजूमदार, कॉलेज ऑफ इण्डोलॉजी, बनारस हि॰ यू॰।

५ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रधान हिन्दी विभाग, बनारस हि॰ यू॰।

६ डॉ पी॰ एल वैद्य M A D Litt,
मयूरभंज प्रोफेसर ऑफ संस्कृत एण्ड पाली, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

७ डॉ मूलचन्द M A Ph D, I A S,
Secretary, Education and Local Self Government, Madhya Bharata, [Gwalior]

८ प्रज्ञाचक्षु पण्डित सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद।

९ डॉ॰ नथमल टाटिया M A D Litt, नालन्दा पाली इन्स्टीट्यूट।

१० डॉ राजवली पाण्डे, M A D Litt,
College of Indology, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

११ श्री कुन्दनलाल सोमाचन्द फिरोदिया, B A LL B
Ex Speaker Bombay Legislative Assembly,
अहमदनगर।

———

विद्याश्रम-समाचार

समिति की मीटिंग

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की वार्षिक मीटिंग ता० २६ लाई सन् १९५९ ई० को अमृतसर में हो रही है। बनारस में समिति का कार्य त्र व भार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। अब समिति लायब्रेरी, वृत्तियाँ, रिसर्च, प्रमण' आदि प्रवृत्तियों का निर्वाह करते हुए भी जैन साहित्य के इतिहास निर्माण से बहुत बड़े काम की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले रही है। इसलिए समिति सभी सदस्यों से हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस अवसर पर स्वयं उपस्थित होकर या अपनी सूचनाएँ भेजकर कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाएँ।

परीक्षा परिणाम

श्री मोहनलाल मेहता एम० ए० ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से जैन दर्शन परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की है। श्री महेन्द्र 'राजा' ने अपभ्रंश लेकर एम० ए० के प्रथम वर्ष में प्रथम श्रेणी प्राप्त की है। निम्न विद्यार्थियों ने जैन दर्शनशास्त्री के विविध खंड पास किये हैं—

श्री सूयनारायण उपाध्याय, श्री दुलीचन्द जैन और श्री हुकमचन्द जैन ने—अन्तिम वर्ष। बौद्ध भिक्षु शीलाचार और श्रीनन्दन जैन ने—द्वितीय खंड और श्री बिहारी लाल जैन ने—प्रथम खंड।

समवेदना

१ गत मास अमृतसर में श्रीमान् लालू शाह जी का ८० वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया है। आप धर्मानुरागी, उदार एवं दानशील व्यक्ति थे। समिति के कार्यों से आपकी विशेष सहानुभूति थी और दान रूपी जल से सींचते रहते थे। हमारी आपके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना है।

२ जम्मू और काश्मीर स्टेट के प्रधान मंत्री दीवान बहादुर दीवान बिशनदास जी के सुपुत्र दीवान ईश्वरदास जी का ५२ वर्ष की आयु में २८ जून को स्वर्गवास हो गया है। दीवान बिशनदास जी की आयु इस समय ६० वर्ष की है। आप उनके अन्तिम जीवित पुत्र थे। हमें दीवान साहब से इस दुःखमय अवसर पर हार्दिक समवेदना है।

हरजस राय जैन
मंत्री

साक्षात्कार नहीं किया किन्तु यह साक्षात करने वालों की वाणी को जानता है। उससे सुनकर भी प्रतिबोध प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त तीन कारणों में से किसी के द्वारा परलोक के साथ संबन्ध जान लेने के बाद व्यक्ति चार बातों में विश्वास करने लगता है। यह मानने लगता है कि आत्मा है, संसार है, कर्म है तथा क्रिया है।

इन चार तत्त्वोंकी स्वीकृति तत्कालीन मतान्तरों का निराकरण करती है। चार्वाक तथा बौद्ध दर्शन आत्माको नहीं मानते अद्वैत वेदान्त संसार को मिथ्या कहता है, नियतिवादी गोशालक के कथनानुसार सभी वस्तुएं नियत हैं। क्रिया और फलभोग का कोई अर्थ नहीं है। इसके विपरीत जैन दर्शन इन चारों बातों को मानता है। यह आत्मवादी लोकवादी कर्मवादी और क्रियावादी है। इन चार मान्यताओं द्वारा जैन दृष्टि को प्रकट कर दिया गया है। पहले उद्देश में आत्मा तथा कर्मों का सिद्धान्ततः प्रतिपादन करने के बाद शेष छः उद्देशों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति तथा त्रस के भेद से जीवों के छः भेद बताए गए हैं और उनकी हिंसा का निषेध किया गया है।

एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है। उपनिषदों में आत्मतत्त्व का अन्वेषण 'तत्त्वमसि' के रूप में किया गया है। अर्थात स्व को आत्मा समझ कर अपने में ही उसे खोजने पर जोर दिया गया है। इसके विपरीत जैन आगमों में आत्मा की गवेषणा जीव द्वारा होती है। विविध शरीरों में जीवन है, इसलिए जीव है और यही आत्मा है।

जैन आगमों में भी तर्क की अपेक्षा आगम को अधिक आदरणीय माना गया है। यद्यपि बाद में जाकर आगम का यह प्राधान्य नहीं रहा और हरिभद्र ने यहाँ तक कह दिया "मेरा न महावीर के प्रति पक्षपात है और न कपिल आदि के प्रति द्वेष। जिसका वचन युक्तिसंगत हो, उसी को स्वीकार करना चाहिए।" फिर भी आगमों में स्पष्ट रूप से आज्ञा को ही धर्म बताया गया है। इसमें वेदाज्ञा को धर्म मानने वाले मीमांसक का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। बाद में दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति सरीखे बौद्धाचार्यों ने जब आगम की अपेक्षा तर्क को अधिक महत्त्व दिया तो जैन आचार्यों की ध्वनि भी बदल गई। आचारांग यह स्पष्ट रूप से कहता है—"वही सत्य तथा शङ्कारहित है जो जिनों ने कहा है।" (५—५)

लोकवाद के विषय में आचारांग का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण है। कालान्तर में जब अपने अपने धर्म-प्रवर्तकों के महत्त्व को बढ़ाने के

न दुखी होना चाहिए। तीसरा शीतोष्णीय अध्ययन है, जिसमें अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव रखने का उपदेश है। इसके तीसरे उद्देश में कहा है—हे पुरुषो! तुम्हीं तुम्हारे मित्र हो। बाह्य मित्रों को क्यों चाहते हो? पुरुषो! आत्मा का निग्रह करो, इस प्रकार दुःखों से छूट जाओगे। पुरुषो! सत्य को पहिचानो, सत्य की आज्ञा पर चलने वाला मेधावी मृत्यु को जीत लेता है। चौथे उद्देश में कषायों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश है।

चौथा सम्यक्त्व अध्ययन है। इसके प्रथम उद्देश में जैन परम्परा के सारभूत अहिंसा तत्त्व की घोषणा की गई है। भगवान कहते हैं—

मैं यह कहता हूं—"जो अरिहंत भगवान भूत काल में हो चुके, जो इस समय विद्यमान हैं जो भविष्य में होंगे सभी इसी प्रकार कहेंगे, यही भाषण देंगे, यही प्रज्ञापना तथा प्ररूपणा करेंगे कि किसी प्राण भूत, जीव या सत्त्व को नहीं मारना चाहिए, न सताना चाहिए, न कष्ट देना चाहिए, न त्रास देना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है नित्य है, शाश्वत है संसार का स्वरूप समझकर अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कहा गया है।" दूसरे उद्देश में हिंसा का समर्थन करने वालों का मत देकर उन्हें अनार्य कहा है। तीसरे में यह बताया है कि जिस प्रकार अग्नि पुरानी लकड़ियों को जला डालती है इसी प्रकार तुम अपनी आत्मा कस डालो और तपाओ।"

पाँचवां अध्ययन लोकसार है। इसमें यह बताया गया है कि जीवन कुशाग्र पर पड़े हुए जलबिन्दु के समान अस्थिर है। इसलिये मनुष्य को सांसारिक विषयों में गृद्ध नहीं होना चाहिए। मुनि को मौन का अवलम्बन करके कर्म शरीर का नाश करना चाहिए।

यहीं पर कहा गया है—'जो आत्मा है वही विज्ञाता है जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिसके द्वारा जानते हैं वह भी आत्मा है।" यह वाक्य महावीर के ज्ञान सिद्धान्त को प्रकट करता है। इसका अर्थ है ज्ञान और आत्मा अभिन्न है। ज्ञान का आधार आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

इसके छठे उद्देश में बताया गया है कि कुछ लोग शास्त्राज्ञा से बाहर होते हुए भी मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग शास्त्राज्ञा में रहते हुए भी प्रयत्न नहीं करते। ये दोनों बातें ठीक नहीं हैं। आज्ञानुसार प्रयत्न करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षार्थी को पूर्ण रूप से आचार्य की आज्ञा में रहना चाहिए।

मोक्ष का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वहाँ जरा और मृत्यु का संचार

प्राचीन मथुरा में जैनधर्म का वैभव

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

मथुरा में ईस्वी सन से लगभग चार-पाँच शताब्दी पूर्व, जैनधर्म के स्तूपों की स्थापना हुई। आज कंकाली टीले के नाम से जो भूमि वर्तमान मथुरा संग्रहालय से पश्चिम की ओर करीब आध मील दूर पर स्थित है, वह पवित्र स्थान ढाई सहस्र वर्ष पहले जैनधर्म के जीवन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। उत्तर भारत में यहाँ के तपस्वी आचार्य सूर्य की तरह तप रहे थे। यहाँ की स्थापत्य और भास्कर कला के उत्कृष्ट शिल्पों को देखकर दिग्दिगन्त के यात्री दाँतों तले उंगली दबाते थे। यहाँ के श्रावक और श्राविकाओं की धार्मिक श्रद्धा अनुपम थी। अपने पूज्य गुरुओं के चरणों में धर्मभीरु भक्त लोग सर्वस्व अर्पण करके नाना भाँति की शिल्पकला के द्वारा अपनी अध्यात्म साधना का परितोष करते थे। अन्त में यहाँ के स्वाध्यायशील भिक्षु और भिक्षुणियों द्वारा संगठित जो अनेक विद्यापीठ थे उनकी कीर्ति भी देश के कोने कोने में फैल रही थी। उन विद्या स्थानों को गण कहते थे जिनमें कई कुल और शाखाओं का विचार था। इन गण और शाखाओं का विस्तृत इतिहास जैनग्रंथ कल्पसूत्र तथा मथुरा के शिलालेखों से प्राप्त होता है। अब हम कुछ विशदता से जैनधर्म के इस अतीत गौरव का यहाँ उल्लेख करेंगे।

देवनिर्मित स्तूप

कंकाली टीले की भूमि पर एक प्राचीन जैनस्तूप और दो मंदिर या प्रासादों के चिह्न मिलते थे। अर्हत नंद्यावर्त्त अर्थात् अठारहवें तीर्थंकर अर की एक प्रतिमा की चौकी पर खुदे हुए लेख में लिखा है (L. I Vol II Ins.no.20) कि कोट्टिय गण की वज्री शाखा के वाचक आर्य वृद्धहस्ती की प्रेरणा से एक श्राविका ने देवनिर्मितस्तूप में अर्हत की प्रतिमा स्थापित की।

यह लेख सं० ७९ अर्थात् कुषाण सम्राट वासुदेव के राज्यकाल ई० १५७ का है, परन्तु इसका देवनिर्मित शब्द महत्वपूर्ण है जिस पर विचार करते हुए बूलर स्मिथ आदि विद्वानों ने (Jain Stupa, P 13) निश्चय किया है कि यह स्तूप ईस्वी दूसरी शताब्दि में इतना प्राचीन समझा जाता था कि

छूट जाता है। कर्मरज दूर हो जाता है। वास्तव में देखा जाय तो उस स्वरूप का प्रतिपादन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। सभी शब्द वहाँ से लौट आते हैं। तर्क वहाँ नहीं पहुँचता। मति उसको ग्रहण नहीं कर सकती।" उपनिषदों में भी ब्रह्म को वाणी और मन से परे बताया गया है।

फिर कहा गया है—न वह दीर्घ है, न लम्बा है, न वर्तुल है, न त्र्यस्र है, न चतुरस्र है, न परिमण्डल है, न कृष्ण है, न नील है, न लोहित है, न हारिद्र है, न शुक्ल है, न सुरभिगन्ध है, न दुरभिगन्ध है, न तिक्त है, न कटु है, न कषाय है, न अम्ल है, न मधुर है, न कठोर है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है, न रूक्ष है, न शरीर है, न जन्म है, न संग है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह ज्ञान दर्शन रूप है। उसकी कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी है, निरुपाधि है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि सबसे अतीत है। मोक्ष का यह स्वरूप उपनिषदों के शुद्ध ब्रह्म से मिलता है।

छठे अध्ययन का नाम धूत है। इसमें कर्मों के कटु फल तथा उन्हें नष्ट करने का उपाय बताया गया है। इसमें भी तपस्या पर अधिक जोर दिया गया है। कहा है—प्रज्ञावान् की बाहें कृश होती हैं तथा शरीर में मांस और रक्त स्वल्प रह जाता है।

सातवाँ अध्ययन लुप्त माना जाता है।

आठवें अध्ययन का नाम विमोह है। इसमें मुख्य रूप से साधु की चर्या का वर्णन है। साधु को निर्दोष आहार, पानी तथा वस्त्र पात्र आदि किस प्रकार लेने चाहिए और किस प्रकार न लेने चाहिए इसी का स्पष्टीकरण है।

नवें अध्ययन में भगवान महावीर की तपश्चर्या का वर्णन है। दार्शनिक दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि महावीर की साधना में मौन, आत्मचिन्तन, उपवास, कायक्लेश तथा उपसर्ग सहन का विशेष स्थान है। मैत्री, करुणा, परोपकार, स्वार्थत्याग आदि सामाजिक गुणों को अधिक महत्व नहीं दिया गया। इसी आधार पर महावीर का धर्म व्यक्ति प्रधान कहा जाता है।

आचारांग का दूसरा श्रुतस्कन्ध दार्शनिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखता। रचना की दृष्टि से भी वह प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा अर्वाचीन है। इसमें साधु की चर्या का ही विशेष वर्णन है।

प्राचीन मथुरा में जैनधर्म का वैभव

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

मथुरा में ईस्वी सन से लगभग चार-पाँच शताब्दी पूर्व, जैनधर्म के स्तूपों की स्थापना हुई। आज कंकाली टीले के नाम से जो भूमि वर्तमान मथुरा संग्रहालय से पश्चिम की ओर करीब आध मील दूर पर स्थित है, वह पवित्र स्थान ढाई सहस्र वर्ष पहले जैनधर्म के जीवन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। उत्तर भारत में यहाँ के तपस्वी आचार्य सूर्य की तरह तप रहे थे। यहाँ की स्थापत्य और भास्कर कला के उत्कृष्ट शिल्पों को देखकर दिग्दिगन्त के यात्री दाँतों तले उँगली दबाते थे। यहाँ के श्रावक और श्राविकाओं की धार्मिक श्रद्धा अनुपम थी। अपने पूज्य गुरुओं के चरणों में धर्मनिष्ठ भक्त लोग सर्वस्व अर्पण करके नाना भाँति की शिल्पकला के द्वारा अपनी अध्यात्म साधना का परितोष करते थे। अन्त में यहाँ के स्वाध्यायशील भिक्षु और भिक्षुणियों द्वारा संगठित जो अनेक विद्यापीठ थे उनकी कीर्ति भी देश के कोने कोने में फैल रही थी। उन विद्या स्थानों को गण कहते थे जिनमें कई कुल और शाखाओं का विस्तार था। इन गण और शाखाओं का विस्तृत इतिहास जैनग्रंथ कल्पसूत्र तथा मथुरा के शिलालेखों से प्राप्त होता है। अब हम कुछ विशदता से जैनधर्म के इस अतीत गौरव का यहाँ उल्लेख करेंगे।

देवनिर्मित स्तूप

कंकाली टीले की भूमि पर एक प्राचीन जैनस्तूप और दो मंदिर या प्रासादों के चिह्न मिलते थे। अर्हत नन्द्यावर्त अर्थात अठारहवें तीर्थंकर अर की एक प्रतिमा की चौकी पर खुदे हुए लेख में लिखा है (L. I Vol II Ins no.20) कि कोट्टिय गण की वज्री शाखा के वाचक आर्य वृद्धहस्ती की प्रेरणा से एक श्राविका ने देवनिर्मितस्तूप में अर्हत की प्रतिमा स्थापित की।

यह लेख सं० ७९ अर्थात कुषाण सम्राट वासुदेव के राज्यकाल ई० १५७ का है, परन्तु इसका देवनिर्मित शब्द महत्वपूर्ण है जिस पर विचार करते हुए स्मिथ आदि विद्वानों ने (Jain Stupa, P 18) निश्चय किया है कि यह स्तूप ईस्वी दूसरी शताब्दि में इतना प्राचीन समझा जाता था कि

लोग इसके वास्तविक निर्माणकर्ताओं के इतिहास को भूल चुके थे और परम्परा के द्वारा इसे देवों से बना हुआ मानते थे। इस स्तूप का नाम बोद्ध स्तूप लिखा हुआ है। हमारी सम्मति में देवनिर्मित शब्द साभिप्राय है और यह स्तूप की अतिशय प्राचीनता को सिद्ध करता है। तिब्बतीय विद्वान तारानाथ ने अशोककालीन तक्षकों और शिल्पियों को यक्षों के नाम से पुकारा है और और लिखा है कि मौर्यकालीन शिल्पकला यक्षकला है। उससे पूर्व युग की कला देवनिर्मित थी। अतएव शिलालेख का देवनिर्मित शब्द यह संकेत करता है कि मथुरा का स्तूप मौर्यकाल से पहले अर्थात् लगभग छठी या पाँचवीं शताब्दी ई० पू० में बना होगा। जैन विद्वान् जिनप्रभ द्वारा रचित तीर्थकल्प [illegible] राजप्रासाद ग्रंथ में मथुरा के इस स्तूप के निर्माण और जीर्णोद्धार का इतिहास दिया हुआ है। उसके आधार पर बूलर ने (A legend of the Jain Stupa at Mattura) निबंध लिखा था। उसमें कहा है कि इस का स्तूप, आदि में स्वर्णमय था, जिसे कुबेरा नाम की देवी ने सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व की स्मृति में बनवाया था। कालान्तर में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्व की स्मृति में बनवाया था। कालान्तर में तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी के समय में इसका निर्माण ईंटों से हुआ। भगवान महावीर की सम्बोधि के १३०० वर्ष बाद बप्पभट्टिसूरि ने इसका जीर्णोद्धार कराया। इस आधार पर डा० स्मिथ ने 'जैन स्तूप' नामक पुस्तक में यह लिखा है —

Its original erection in brick in the time of Parsvanath the Predecessor of Mahavira, would be at a date not later than B. C. 600. Considering the significance of the Phrase in the inscription 'built by the Gods' as indicating that the building at about the beginning of the christian era was believed to date from a period of mythical antiquity the date B. C. 600 for its first erection is not too early. Probably, therefore, this stupa, of which Dr Buhler says the foundation is the oldest known building in India.

इस उद्धरण का आशय यह है कि अनुश्रुति की महत्ता से मथुरा के प्राचीन जैन स्तूप का निर्माण काल लगभग छठी शताब्दि ई० पूर्व का प्रारम्भ काल था और इसी कारण यह भारतवर्ष में सबसे पुराना स्तूप था।

बौद्ध स्तूप के समीप ही दो विशाल देवप्रासाद थे। इनमें से एक मन्दिर का तोरण (प्रासाद-तोरण) प्राप्त हुआ था। इसे महारक्षित आचार्य के शिष्य उत्तरदासिक ने बनवाया था। इसके लेख के(E I Vol II, Ins no I) अक्षर भारहुत के तोरण पर खुदे हुए लगभग १५० ई० पू० के धनभूति के लेख के अक्षरों से भी अधिक पुराने हैं। अतएव विद्वानों की सम्मति में इन मन्दिरों का समय ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि समझा गया है।

अद्भुत शिल्प का तीर्थ

ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से लेकर ईसा के बाद ग्यारहवीं शताब्दि तक के शिलालेख और शिल्प के उदाहरण इन देवमन्दिरों से मिले हैं। लगभग १३०० वर्षों तक जनधर्म के अनुयायी यहाँ पर चित्र विचित्र शिल्प की सृष्टि करते रहे। इस स्थान से प्रायः सौ शिलालेख, और डेढ़ हजार के करीब पत्थर की मूर्तियाँ मिल चुकी हैं। प्राचीन भारत में मथुरा का स्तूप जनधर्म का सबसे बड़ा शिल्प तीर्थ था। यहाँ के भव्य देवप्रासाद, उनके सुन्दर तोरण वेदिका स्तम्भ, सूचीय या उष्णीष पत्थर, उत्फुल्ल कमलों से सज्जित सूची, उत्कीर्ण आयागपट्ट तथा अन्य शिलापट्ट, सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ, स्तूप पूजा का चित्रण करने वाले स्तम्भतोरण आदि अपनी उत्कृष्ट कारीगरी के कारण आज भी भारतीय कला के गौरव समझे जाते हैं। सिंहक नामक वणिक के पुत्र सिंहनादिक ने जिस आयागपट्ट की स्थापना की थी वह अविकल रूप में आज भी लखनऊ के संग्रहालय में सुशोभित है। चित्रण सौष्ठव और मान—सामञ्जस्य में इसकी तुलना करने वाला एक भी शिल्प का उदाहरण इस देश में नहीं है। बीच के चतुरस्र स्थान में चार नन्दिपदों से घिरे हुए मध्यवर्ती मण्डल में समाधिमुद्रा में पद्मासन से भगवान अर्हत विराजमान हैं। ऊपर नीचे अष्टमांगलिक चिह्न और पार्श्वभागों में दो स्तम्भ उत्कीर्ण हैं, दक्षिण स्तम्भ पर चक्र सुशोभित है, और वाम पर एक गजेन्द्र। आयागपट्ट के चारों कोनों में चार चतुर्दल कमल हैं। इस आयागपट्ट में जो भाव व्यक्त किए गए हैं उनकी अध्यात्म व्यंजना अत्यन्त गम्भीर है। इसी प्रकार माथुरक लवदास की भार्या का आयागपट्ट जिसमें षोडश आरवाले चक्र का सुघर्ष प्रवर्तन चित्रित है, मथुराशिल्प का मनोहर प्रतिनिधि है। फल्गुयश नर्तक की भार्या शिवयशा के सुन्दर आयागपट्ट को भी हम नहीं भूल पाते।

कंकाली टीले के अनन्त वेदिका स्तम्भों और सूचियों की सजावट का वर्णन करने के लिए तो कवि की प्रतिभा चाहिए। शालभञ्जिका स्तम्भों में

कुटुम्बिनी ने प्रतिमा प्रतिष्ठा की (E I Vol I Mattura ins no 5) एवं इन्हीं आय बलत्रात की शिष्या सधि की भगित जया थी जो नवहस्ती की दुहिता, गुहसेन की स्नुषा देवसेन और शिवदेव की माता थी और जिसने एक विशाल वर्धमान प्रतिमा की ११३ ई० के लगभग प्रतिष्ठा कराई (E I Vol II no 34)। पूज्य आचाय बलदत्त को अपनी शिष्या आर्या कुमारमित्रा पर गव था। शिलालेख में उस तपस्विनी को सनित, मखित बोधित' (Whetted, Polished and awakened) कहा गया है। यद्यपि यह भिक्षुणी थी। तथापि उसके पूर्वाश्रम के पुत्र गधिक कुमारभट्टि ने १२३ ई० में जिन प्रतिमा का दान किया। यह मूर्ति ककाली टीले के पश्चिम में स्थित दूसरे देव प्रासाद के भग्नावशेष में मिली थी। पहले देवमंदिर की स्थिति इसके कुछ पूवभाग में थी। महाराज राजातिराज देवपुत्र हुविष्क के ४० वें सवत्सर (१२८ ई०) में दत्ता ने भगवान ऋषभदेव की स्थापना की जिससे उसके महाभाग्य की वृद्धि हो। शिलालेख नं० ९ से ज्ञात होता है कि चारणगण के आय चेटिक कुल की हरितमालगढी शाखा के आय नागनंदी के शिष्य वाचक आय नागसेन प्रसिद्ध आचाय थे।

ग्रामिक (ग्रामणी) जयनाग की कुटुम्बिनी और ग्रामिक जयदेव की पुत्रवधू ने सं० ४० में शिलास्तम्भ का दान किया। आर्याश्यामा की प्रेरणा से गयवारा की धर्मपत्नी गुहा ने ऋषभ प्रतिमा दान में दी। श्रमण श्राविका बलहस्तिनी न माता पिता और सास ससुर की पुण्य-वृद्धि के हेतु एक बडे तोरण (९ × ३" × १) की स्थापना की।

कंकाली टीले के दक्षिण पूव के भाग में डा० बर्जस की खुदाई में एक प्रसिद्ध सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई थी जिसे एक लोहे का काम करने वाले (लोहिकारक) गोप ने स्थापित किया था। इसी स्थान पर धनहस्ति की धमपत्नी और गुहदत्त की पुत्री ने धर्मार्था नामक श्रमणा के उपदेश से एक शिलापट दान किया जिस पर स्तूप की पूजा का सुन्दर दृश्य अकित है (E I Vol I, no,22) जयपाल, देवदास नागदत्त, नागदत्ता की नानी श्राविका दत्ता ने आर्य सर्घसिंह की निवतना मानकर वधमान प्रतिमा का ई० ९८ में दान दिया। अन्य प्रधान दानदात्री महिलाओं में कुछ ये थीं— सार्थवाहिनी धमसोमा (ई० १००) कौशिकी शिवमित्रा जो ईरानी पूर्वकाल में शकों का विध्वंस करने वाले किसी राजा की धर्मपत्नी थी (E I Vol I, no 32), स्वामी महाक्षत्रप सुदास के राज्य सम्वत्सर ४२ में आर्यवती की

जैन/मूर्तिकला

डा० मिनयतोष भट्टाचार्य

अब यह सब सम्मति से स्वीकार कर लिया गया है कि प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र विद्या के क्षेत्र में मूर्ति विद्या का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। मूर्ति और कुछ नहीं, किसी देवता विशेष की आकृति का भाव प्रदर्शन मात्र है और मूर्ति विद्या के क्षेत्र में इस बात का पता लगाने की चेष्टा की जाती है कि कब और कैसी स्थिति में वह भाव विशेष प्रदर्शित किया गया। इस प्रकार मूर्ति विद्या का सबध देवी और देवताओं की आकृतियों और चित्रों की पहिचान मात्र से ही न होकर सामाजिक धार्मिक दनिक और कलात्मक पृष्ठ भूमि से भी है। मूर्ति विद्या का क्षेत्र काफी बड़ा है जो उपदेशप्रद होने के साथ ही साथ मनोरंजक भी है।

हिंदू, बौद्ध और जैन भारत के तीन प्रधान और प्राचीन धार्मिक मतों के कारण मूर्ति विद्या का अध्ययन क्षेत्र भी तीन विभागों में विभाजित हो जाता है। हिन्दू और बौद्ध मूर्ति विद्या के क्षेत्र में बहुत कुछ कार्य किया जा चुका है पर जैन मूर्ति विद्या के क्षेत्र में आज तक कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई कि जिससे थोड़ा बहुत परिचय मात्र भी प्राप्त किया जा सके। ज्यों ज्यों जैन धर्म के अध्ययन में प्रगति होती जा रही है जैन मन्दिरों, स्मारकों मूर्तियों आदि का खोज काय बढ़ता जा रहा है। इस बात की भी आवश्यकता है कि विद्वानों का ध्यान मूर्ति विद्या के इस विभाग की ओर भी जाए और वे इस विषय के एक प्रामाणिक परिचयात्मक ग्रंथ का निर्माण करें जिससे इस विषय के जिज्ञासुओं को कुछ लाभ हो। इससे केवल जैनों को ही प्रोत्साहन नहीं मिलेगा पर उन लोगों को भी प्रेरणा मिलेगी जो मूर्ति विद्या की हिंदू बौद्ध और जैन शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन के इच्छुक हैं और इस काय में रुचि लेते हैं। जो कुछ भी हो, तीनों ही धर्मों का जन्म भारत में होने के कारण, आपस में बहुत सी बातों में समानता है। अत हमारे लिए यह जानना एक बहुत ही मनोरंजक विषय होगा कि इन तीनों सिद्धान्तों में कहाँ तक समानता और कहाँ तक असमानता है। जब तक तान्त्रिक दृष्टि से मूर्ति विद्या का अध्ययन किया जाएगा तो उससे प्राचीन काल में स्थापित सांस्कृतिक एकता के पुनर्स्थापन में सहायता मिलेगी। और इधर कुछ वर्षों में इस विषय में लोगों की जो कुछ भ्रान्त धारणाएं हो गई हैं, वे दूर होंगी।

संख्या	तीर्थकर	यक्ष	यक्षिणी
१२	वासुपूज्यनाथ	कुमार	प्रकाण्डा
१३	विमलनाथ	समुख	विदिता
१४	अनंतनाथ	पाताल	अंकुसा
१५	धर्मनाथ	किन्नर	पंदप
१६	शांतिनाथ	गरुण	निर्वाण
१७	कुंथनाथ	गन्धर्व	बाला
१८	अरनाथ	यक्षेन्द्र	धरणी
१९	मल्लिनाथ	कुबेर	धरोत्य
२०	मुनिसुव्रतनाथ	वरुण	वरदत्त
२१	नेमिनाथ	भृकुटि	गांधारी
२२	नेमिनाथ	गोमेध	कुमुर्मादी
२३	पार्श्वनाथ	पार्श्व	*पद्मावती
२४	वर्धमानस्वामी	मातंग	सिद्धयीका

तीर्थकारों के चित्र विभिन्न रूपों में बनाए गए हैं। कभी बठे हुए, कभी खड़े हुए, कभी अकेले, कभी साथ में उसी आकृति के दो या तीन प्रतिरूपों के साथ, कभी वस्त्र से ढके हुए, कभी वस्त्र रहित। प्रत्येक तीर्थङ्कर का एक निश्चत संकेत चिह्न ह जिसे लक्षण कहते ह और जो उनक प्रतिरूप के साथ हमेशा अंकित रहता ह। ये लक्षण २४ हैं जो क्रमानुसार प्रत्येक तीर्थकर के साथ रहते ह—१ बल, १ हाथी, ३ घोड़ा, ४ बन्दर, ५ क्रौंच पक्षी, ६ लाल कमल, ७ स्वस्तिक, ८ चन्द्र, ९ घड़ियाल १० श्रीवत्स, ११ गड़ा, १२ भैंस, १३ सुअर, १४ बाज १५ वज्र १६ हिरण, १७ बकरा, १८ नन्द्यावत, १९ पानी का घड़ा, २० कछुआ, २१ नील कमल २२ शंख, २३ सप २४ सिंह।

उपरोक्त तालिका श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार ह। दिगम्बर मान्यता में इससे कुछ भेद ह। और उत्सर्पिणी युग में तो चौबीसों तीर्थंकरों के नाम ही दूसरे ह। और यदि प्रयत्न किया जाए तो उनके ध्यान लक्षण और शायद यक्ष व यक्षिणियों का पता भी चल सकता ह।

तीर्थकारों के बाद जिन्हें महत्व दिया जाता ह, वे ह—विद्यादेवियाँ। ये संख्या में १६ हैं। इन सब देवताओं का संबंध किसी एक विद्या या मन्त्र स ह अतः उन्हें विद्यादेवी कहा जाता ह। इनकी तुलना निपुर्णों की महाविद्याओं से की जा सकती है। जिनकी संख्या १० ह। इन्हें सिद्ध

नाम छूट गया हो। क्योंकि मेरा अनुमान है कि जनों का २४ की संख्या से बड़ा प्रेम है। इन देवताओं का पूरा वर्णन जन धर्म शास्त्रों में दिया हुआ है। वाहन और हाथों में लिए हुए हथियारों का भी उनमें वर्णन है। जैसे आदित्यों का वाहन घोड़ा और उनका संकेत चिन्ह कमल है। वह्निसुरों का वाहन बकरा, अव्यवाधाओं का वाहन मनुष्य तथा संकेत चिन्ह वीणा अरिष्टों का वाहन खरगोश और संकेत-चिन्ह कुल्हाड़ी, कामकारा का वाहन गरुड़ और उनका हथियार चक्र है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण आसानी से बढ़ाए जा सकते हैं। जो जैन मूर्तिविद्या के अध्ययनशील लेखक हैं उनका तो यह कर्तव्य ही होना चाहिए।

ऊपर नर देवताओं का वर्णन किया जा चुका है पर नारी देवताओं का भी एक अलग वर्ग है। जिनके संबंध में जनधर्मशास्त्रों से बहुत कुछ पता चलता है। यद्यपि प्रत्येक का सविस्तार वर्णन देना संभव नहीं है फिर भी मैं केवल उन देवताओं के नाम दे रहा हूँ जिनका मुझे पता चल सका है। वे ये हैं—

१ सुरेन्द्रदेवी, २ चामरेन्द्रदेवी, ३ वलिदेवी, ४ धरणेन्द्रदेवी, ५ भूतानंद देवी, ६ वेणुदेवी, ७ वेणुदारीदेवी, ८ हरिकान्तादेवी ९ हरिदेवी १० अग्नि शिखादेवी, ११ अग्निमान्यदेवी, १२ पुण्यदेवी, १३ वशिष्ठदेवी, १४ जल कान्तादेवी, १५ जलप्रभदेवी, १६ अमितगतीन्द्रदेवी, १७ मितवाहनदेवी १८ वेलम्बदेवी, १९ प्रभजनदेवी, २० घोषदेवी, २१ महाघोषदेवी २२ काल देवी, २३ महाकालदेवी २४ सुरूपादेवी २५ प्रतिरूपेन्द्रदेवी २६ पूर्णभद्रदेवी, २७ मणिभद्रदेवी, २८ भीमादेवी, २९ महाभीमादेवी ३० किन्नरदेवी ३१ सत्पुरुषदेवी ३२ महापुरुषदेवी, ३३ अतिकायदेवी, ३४ महाकायदेवी, ३५ गीतरतिदेवी ३६ गीतयशोदेवी, ३७ सन्निहितेन्द्रदेवी, ३८ सम्मानदेवी ३९ धातीन्द्रदेवी, ४० विधात्रीन्द्रदेवी, ४१ ऋषीन्द्रदेवी, ४२ ऋषिपालेन्द्रदेवी, ४३ ईश्वरेन्द्रदेवी, ४४ महेश्वरेन्द्रदेवी, ४५ सुवत्सादेवी ४६ विशालदेवी ४७ हसेन्द्रदेवी ४८ हास्यरतिदेवी, ४९ श्वेतेन्द्रदेवी, ५० महाश्वेतेन्द्रदेवी, ५१ पटगदेवी ५२ पटगरतिदेवी ५३ सूर्यदेवी, ५४ चन्द्रदेवी ५५ सौधर्मसाकेन्द्र देवी, ५६ ईसानेन्द्रदेवी।

नर देवालयों में इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी देवियां हैं तथा ये जन देवी देवताओं की विचित्रताओं, भेदों प्रकारों आदि की और संकेत करती हैं। नर देवताओं में सौधर्मेन्द्र और ईसानेन्द्र दोनों के बाहु वाले हैं। ईसानेन्द्र

देना चाहिए। विभिन्न स्थलों में कलाकार अलग अलग शलियों से काम लेते ह और ऐसा मालूम पड़ता ह मानों सभी मूर्तिया में अलग अलग विभिन्नताएँ हैं पर यदि गौर से अध्ययन किया जाए तो चलेगा कि सभी का मूल ध्यान एक ही ह।

ऊपर जो सक्षिप्त विवेचन किया गया ह उससे एक अन्य बात भी स्पष्ट हो जाती ह। इतने विशाल और सपन्न देवालयों में तांत्रिकों को अवश्य ही स्थान मिला होगा। यदि आज जनधम शास्त्रा में तांत्रिकों पर कोई अच्छा साहित्य प्राप्त नहीं ह तो उसका मूल कारण यही ह कि या तो वह खो गया है अथवा अभी खोजों की प्रतिक्षा में ह। और भविष्य में अवश्य ही प्राप्त होगा। तंत्र में प्रत्येक देवता एक मत्र और उसकी व्यवहार विधि (जिसे साधन कहते हैं) से युक्त ह। १६ विद्यादेवियों के अतिरिक्त अन्य देविया के मत्रों की खोज बिना किसी विशेष अध्ययन के सभव नहीं ह। पर उनके अस्तित्व में शंका नहीं की जानी चाहिए।

एक अन्य तथ्य जिसका उपरोक्त विवेचन से पता चलता ह, यह ह कि जन मूर्ति विद्या, हिन्दू और बौद्ध मूर्ति विद्या से बिल्कुल ही असबद्ध नहीं थी। उदाहरण के लिए ९ ग्रहों, १० दिग्पाला, १२ राशियों और मातृकाओं को लिया जा सकता है जो तीनों में ही मिलती ह। बौद्ध मूर्ति विद्या के विद्यार्थी के लिए मणिभद्र, पूर्णभद्र के नाम अपरिचित नहीं हैं। वज्रशृंखला, वज्रांकुशि जसे नामों से भी बौद्ध मूर्ति विद्या के अध्येता अच्छी तरह परिचित ह। जनों में जो 'वज्र' शब्द का प्रयोग किया गया ह, वह अपरहित नहीं ह। वह बौद्धों के 'वज्रमान' से निकलने की स्पष्ट घोषणा करता है। 'गांधारी' भी बौद्ध रूप ही है। 'भृकुटि' तो स्पष्ट ही बौद्ध ह।

इस बात में भी कोई संदेह नहीं किया जाना चाहिए कि जनों ने अपने देवालयों में बहुत से हिन्दू देवताओं को स्थान दिया। और शायद उन्हें निम्न कोटि में रखा। ब्रह्मा, हरि, महेश्वर, कुबेर, वरुण, काली, महाकाली, ब्राह्मणी माहेश्वरी, वष्णवी ये सभी हिन्दू ही ह। यदि बौद्ध और हिन्दू देवताओं के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह एक बहुत ही मनोरजक विषय होगा। अत यह स्वीकार करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए कि पुराण और बाद में तत्र बौद्ध और जन देवालयों के आधार नींव के रूप में हैं।

अनुवादक—महेन्द्र 'राजा'

अहमदाबाद के भामाशाह

—श्री जयभिक्खु

अहमदाबाद उस समय घोर विपत्ति में था। वह दो बलवानों के बीच में ऐसा फस गया था कि निकलना कठिन हो रहा था। सूबेदार इब्राहीम कुली खां और सिपहसालार हामीद खां का झगड़ा इस विपत्ति का कारण था। हामीद खां निजाम-उल-मुल्क का चाचा था। उसके पास सहायक सेना के रूप में बलवान मराठे थे। अहमदाबाद की रक्षा का भार अपने सिर पर लेकर बठे हुए इब्राहीम कुली खां ने वीरता पूर्वक हामीद खां का सामना किया किन्तु वह उसके सामने टिक न सका। हामीद खां की विशाल सेना ने अहमदाबाद के भद्र दुर्ग को आंधी की भांति घेर लिया। इब्राहीम कुली खां डर गया और किले में जा छिपा।

अहमदाबाद की रक्षा करने वाला कोई न था। हामीद खां की सेना लूट और अत्याचार की सीमा का बराबर उल्लंघन करती जा रही थी। ज्योंही दुर्ग का द्वार टूटा कि ये लोग शहर में घुस कर लूटपाट, सामूहिक वध, हत्या और मारपीट करने लगे। अहमदाबाद के अग्रगण्य पुरुष इस बात पर विचार विनिमय करने के लिए एकत्र हुए। वे यह सोचने लगे कि द्वार पर आए हुए इस विनाश से कैसे बचा जाए? प्रजा का शासन की जय-पराजय से कोई संबंध न था। वह तो सम्मान पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थी।

इतने ही में लोगों ने सुना कि सेना द्वार तोड़कर शहर में घुस गई है। लूटमार, अग्निकाण्ड और जनहत्या प्रारंभ हो गई है। सब लोग भय से व्याकुल हो उठे। इसी समय एक जन वणिक—जन जीवन का सच्चा उपासक कंधे पर दुशाला डालकर आगे आया। वह था नगरसेठ खुशालचंद। अनेक वर्षों और पीढ़ियों से उसके घर पर अहमदाबाद की अठारह जातियों की नगरसेठाई थी। सेठ शांतिदास के समय में इन्हें अहमदाबाद के नगरसेठ का पद मिला था।

दिल्ली के दरबार में इस व्यक्ति का बहुत प्रभाव था। प्रामाणिकता में

"हाँ", किन्तु हाँ बोलने वाला यह अहमदाबादी बनिया जानता था कि इस रकम का सारा उत्तरदायित्व उसके अपने कधों पर था। एक 'हाँ' से पीछे तिजोरी का पेंदा दिख जाएगा। इतना होते हुए भी अहमदाबाद का भामाशाह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अपनी सम्पत्ति बचा लेने का स्वार्थी विचार उसे छू भी न सका।

"आदेश दो, सेना वापिस लौट जाए। आपके कथनानुसार रकम लेकर अभी वापिस आता हूँ।"

सेना को वापिस लौटाने के लिए रणभेरी बजी। लूटमार करने वाली सना उसी समय अपने अपने शिविरो में पहुँचने लगी। आग से जलते हुए घर उसी समय बुझा दिए गए। जनता ने निश्चिन्तता की ठडी सास ली। थोड़ी ही देर में चार बला के सुदर रथ में रुपयों की थलियाँ आइ, सेनापति के सामने रुपयों का ढेर लग गया। सरदार, सेठ जी की इस वीरता स बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उनकी प्रशसा करते हुए कहा—"सेठ! तुम्हारा नगर अब सुरक्षित ह!"

नगरसेठ खुशालचन्द्र ने पीढ़ियों से एकत्र किए हुए द्रव्य को विदेशी के द्वार पर उडेल दिया। अहमदाबाद के इस धनकुबेर क मन में विचार उठने थे कि कल लाखों की हुडियाँ कैसे सिकरेंगी, इतनी थोड़ी पूँजी से इतना बड़ा व्यापार कसे चलेगा? इतना होते हुए भी इन सारी चिन्ताओं को बहा देने वाला एक आनद उनके मुख पर प्रकट होता—

"चलो, पसा गया किन्तु शहर तो बच गया? अन्यथा न जाने क्या होता!"

सेठ घर पहुँचे। बात चारों ओर फल गई। अरे, नगरसेठ खुशालचन्द्र न अपना सर्वस्व लुटाकर हमें—हमारे शहर को बचाया! आज शहर के सम्मान की रक्षा सिपाहियों ने नहीं—सरदारों ने नहीं—एक सेठ ने की? अब हमें भी अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए!

शहर के प्रमुख व्यापारी एकत्र हुए। उन्होंने सर्वानुमति स निश्चय किया कि नगरसेठ के सामने हम एक प्रतिज्ञापत्र लिख दें कि अहमदाबाद क बाजार में जितना माल काँटे पर तोला जाय, चार आना प्रतिशत सेठ को मिले।

प्रतिज्ञापत्र लिखा गया। उस पर तारीख डाली गयी—हिजरी संवत् ११६७ ता० १० माह शाबान।

सिद्धसेन दिवाकर

डॉ० इन्द्र

आगम युग—

जैन साहित्य में सिद्धसेन से पहले का समय आगम काल कहा जाता है। चौदह पूर्व, बारह अंग, बारह उपांग अन्य आगम तथा निर्युक्तियाँ इसी काल में आती है। इसमें अनुमान या तर्क की अपेक्षा शब्द प्रमाण अधिक बलवान् रहा है। भगवती तथा अन्य आगमों में तत्त्वचर्चा विषयक जो संवाद है उनमें शिष्य अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है और गुरु उसके उत्तर में आत्मा, लोक, परलोक आदि के विषय में अपनी मान्यताओं को बता देता है। शिष्य गुरु के वचन को सत्य समझ कर ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेता है। सूत्रकृतांग में बाईस जनेतर मतों का निर्देश है। किन्तु वहाँ भी उन्हें मिथ्यात्वी या परतीर्थिक कह कर छोड़ दिया गया। उनकी मान्यताओं के खण्डन का कोई प्रयत्न नहीं है। समस्त आगमिक साहित्य में राजप्रश्नीय ही एक ऐसा आगम है जहाँ राजा प्रसेनजित और भगवान पार्श्वनाथ के शासनवर्ती अनगार केशी श्रमण के बीच आत्मा के अस्तित्व को लेकर शास्त्रार्थ होता है और दोनों पक्षों की ओर से युक्तियाँ उपस्थित की जाती है। वहाँ पर भी कोई व्यवस्थित अनुमान प्रणाली नहीं है। प्रसेनजित ने शरीर से भिन्न आत्मा को देखने के लिए विविध प्रयत्न किए किन्तु वह कहीं दिखाई न दिया। उन्हीं बातों को वह केशीश्रमण के सामने रखता है और केशी श्रमण उनका समाधान करते है। दूसरे आगमों में इतना भी नहीं है।

तत्त्वचर्चा के समान ज्ञानचर्चा में भी आगमिक दृष्टिकोण भिन्न है। तर्कयुग में ज्ञान वस्तु को जानने का उपाय है और उसका मूल्याङ्कन इसी आधार पर होता है। आगमयुग में ज्ञान आत्मा का गुण है और मोक्षमार्ग का घटक है। आत्मा जैसे जैसे मोक्ष के लिए उपकारक अन्य गुणों का विकास करता है ज्ञान भी विकसित होता जाता है। ज्ञान का मूल्याङ्कन भी उसकी मोक्ष के प्रति उपयोगिता के आधार पर होता है।

आगमों में मतान्तरों का वर्णन, न्याय प्रतिपादित प्रमाण के प्रत्यक्ष अनुमान, आगम और औपम्य के रूप में चार भेद पाँच या दस अवयवों का

पर वस्तुनिरूपण का युग प्रारम्भ किया। इसी अधार पर हेमचन्द्राचाय ने लिखा ह—अनुसिद्धसेनं तार्किका अर्थात सभी तार्किक सिद्धसेन के पीछे ह।

जीवन सामग्री

सिद्धसेन ने अपने जीवन के विषय में स्वयं कुछ नहीं लिखा। उनके समकालीन किसी अन्य विद्वान ने भी इस विषय में कुछ नहीं लिखा। कम स कम अभी तक ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई ह। उनके विषय में अधूरी अथवा पूरी, सदिग्ध या निश्चित जानकारी देने वाली सामग्री तीन प्रकार की ह—(१) प्रबन्ध, (२) उल्लेख तथा (३) उनकी अपनी कृतियाँ।

(क) प्रकरण

प० सुखलाल जी ने अपनी सन्मतितक की प्रस्तावना में पाँच प्रकरणों का उल्लेख किया ह। उन म दो हस्तलिखित हे और तीन मुद्रित। हस्तलिखितों में एक गद्य हैं, दूसरा पद्य। गद्य प्रबन्ध भद्रश्वर की कथावली से संबन्ध रखता ह, इसलिए उसे दसवीं या ग्यारहवीं सदी का माना जा सकता ह।

पद्य प्रबन्ध के लेखक तथा समय के विषय में अभी तक पता नहीं चला। वि० सं० १२९१ की ताडपत्र पर लिखी हुई उस की प्रतिलिपि मिलती है इससे इतना अवश्य कहा जा सकता ह कि इस प्रबन्ध का रचना काल उस स पहले ह। गद्य प्रबन्ध परिमाण में छोटा हैं। पद्य प्रबन्ध उसी का विस्तार सा प्रतीत होता ह। गद्य प्रबन्ध प्राचीन प्रतीत होता ह। ऐसा लगता ह जसे पद्य की रचना उसी के आधार पर की गई हो।

मुद्रित प्रबन्धों में प्रभावक चरित्र (वि० स० १३३४), प्रबन्ध चिन्तामणि (वि० सं० १३६१) और चतुर्विंशति प्रबन्ध (वि० स० १४०५) सिद्धसेन क विषय में जानकारी देते हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह' के नाम से मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित जो संग्रह सिंघी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ ह उस में भी सिद्धसेन के संघ बाहर होने की घटना का उल्लेख ह। (दे०—विक्रम प्रबन्ध सं० १५, प० १०)

दिगम्बर साहित्य में भी सिद्धसेन का समुचित आदर पाया जाता ह। बड़ बड़ आचार्यों ने उन का नाम श्रद्धा के साथ लिया ह। श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार ने 'अपनी पुरातन-जन वाक्य-सूची' की प्रस्तावना में इसकी विस्तत

ग्वालों को मध्यस्थ बना कर शास्त्रार्थ प्रारम्भ कर दिया। सिद्धसेन ने 'सर्वज्ञ नहीं हैं, यह पूर्वपक्ष करके उसका युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया।

वृद्धवादी ने ग्वालों से पूछा—"इस विद्वान् ने जो कुछ कहा है क्या आप समझ गए?"

उन्होंने उत्तर दिया—"इस फारसी को हम क्या समझें।"

यह सुनकर वृद्धवादी ने ग्वालों से बताया कि मैं इनका कहना समझ गया हूँ। ये कहते हैं, जिन नहीं है। क्या यह कहना सत्य है? तुम्हीं इसका निर्णय करो।

ग्वाल बोले—"मन्दिर में जिन मूर्ति को हम प्रति दिन देखते हैं। इस लिए इस ब्राह्मण का यह कहना कि जिन नहीं है मृषा है।'

इस प्रकार विनोद करने के बाद वृद्धवादी ने सर्वज्ञ का अस्तित्व युक्ति पूर्वक सिद्ध किया।

सिद्धसेन ने हर्षगद्गद होकर वृद्धवादी की विजय तथा अपनी पराजय स्वीकृत की। साथ ही निवेदन किया—"प्रभो। आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जिससे हारूँगा उसी का शिष्य बन जाऊँगा।'

वृद्धवादी ने उन्हें जैन दीक्षा दी और कुमुदचन्द्र नाम रखा। वे शीघ्र ही जैनदर्शन के पारगत विद्वान् हो गए। गुरु ने उनको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया और फिर सिद्धसेन नाम दे दिया। उसके बाद सिद्धसेन को गच्छ सौंप कर गुरु अन्यत्र विहार कर गए।

एक बार सिद्धसेन बाहर जा रहे थे। राजा विक्रम ने उन्हें देखा और मन ही मन प्रणाम किया। सिद्धसेन इस बात को समझ गए और उन्होंने ऊँचे स्वर से 'धर्म लाभ' कहा।

राजा सिद्धसेन की इस चतुराई से प्रसन्न हुआ और उन्हें एक करोड़ सुवर्णटंक दान देने की आज्ञा दी। साथ ही कोषाध्यक्ष को नीचे लिखे अनुसार दान पत्र लिखने के लिए कहा —

"दूर से हाथ उठा कर धर्म लाभ कहने वाले सिद्धसेन को नरपति ने एक करोड़ का दान दिया।"

जब राजा ने सिद्धसेन को बुलाकर दान ले जाने के लिए कहा तो उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग धन को नहीं स्वीकार करते। आप की जैसी इच्छा हो कीजिए। विक्रम समझ गया। उसने उस धन से साधर्मी सहायता तथा चैत्योद्धार आदि के लिए एक खाता खोल दिया।

सिद्धसेन ने उत्तर दिया—"आप अच्छी तरह पूछिए।"

गुरु ने विद्वानो को भी आश्चर्य में डालने वाले स्वर में नीचे लिखी गाथा सुनाई —

अणफुल्लो फुल्ल म तोडहु मन-आरामा म मोडहु ।
मण कुसुमेंहि अच्चि निरजणु हिंडइ काहं वणेण वणु ।।

सिद्धसेन ने विचार किया किन्तु अपभ्रंश की इस गाथा का वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आया। उसने आडा टेढ़ा उत्तर देकर कहा—और कुछ पूछिए।

वृद्धवादी ने कहा—"इसी पर फिर विचार कीजिए और उत्तर दीजिए।"

सिद्धसेन ने अनादर पूर्वक फिर ऊटपटांग अर्थ किया किन्तु वृद्धवादी ने स्वीकार नहीं किया। तब सिद्धसेन ने उन्हें ही खुलासा करने के लिए कहा।

वृद्धवादी ने उत्तर दिया—"सावधान होकर सुनिए—यह मानवदेह जीवन रूपी कोमल फूलों वाली लता है। इसके जीवनांशरूपी फूलों को तुम राज्य सत्कार तथा तज्जन्य मिथ्याभिमान के प्रहारों से मत तोड़ो। मन के यम, नियम आदि आरामों (उद्यानों) को योग विलास के द्वारा नष्ट भ्रष्ट मत करो। मन के सद्‌गुण रूप पुष्पों के द्वारा निरंजन भगवान की पूजा करो। सांसारिक लाभ सत्कार के मोह में क्यों भटक रहे हो।"

सिद्धसेन की भूलों को अभिव्यक्त करने वाले और भी कई अर्थ वृद्धवादी ने किए। उन्हें सुन कर सिद्धसेन का मन पलट गया। मन में विचार आया—"धर्मगुरु के अतिरिक्त इस प्रकार की भर्त्सना और कौन कर सकता है।" वह परों में गिर पड़ा और अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगने लगा।

वृद्धवादी ने कहा—मैंने तुम्हें जैन सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान कराया है। जिस प्रकार मन्द अग्नि वाला गरिष्ठ भोजन को नहीं पचा सकता उसी प्रकार तुम भी इसे नहीं पचा सके। जब तुम्हारे सरीखे प्रतिभा एवं विद्यासम्पन्न तेजस्वी का यह हाल है तो दूसरों की क्या दशा होगी? तुम सन्तोष पूर्वक अपने चित्त को स्थिर करो और मैंने जो ज्ञान दिया है, उसे पचाओ। स्तम्भ में से जो पुस्तक निकाली थी उसे छीन कर देवों ने अच्छा ही किया। उसको पचाने वाले त्यागी अब कहाँ हैं?"

सिद्धसेन ने अपनी भूल स्वीकार की और उचित प्रायश्चित्त लिया। गुरु उन्हें अपने आसन पर बैठा कर स्वर्ग सिधार गए। सिद्धसेन दिवाकर आचार्य बन कर धर्म की प्रभावना करने लगे। —क्रमशः

एक बार सिद्धसेन ने चित्रकूट की ओर विहार किया। पहाड़ के एक ओर उन्हें एक स्तम्भ दिखाई दिया। वह स्तम्भ पत्थर, लकड़ी या मिट्टी में से किसी का न था। विचार करने पर सिद्धसेन को लगा कि वह औषधियों का बना हुआ है। सिद्धसेन ने गन्ध, गन्ध तथा रस आदि की परीक्षा करके उस स्तम्भ की औषधियों का पता लगा लिया और विरोधी औषधियों को लाकर स्तम्भ में एक छेद कर लिया। उसमें उसे हजारों पुस्तकें दिखाई दीं। उनमें से एक पुस्तक लेकर पहली पंक्ति पढ़ी तो सुवर्ण सिद्ध योग और सरसव मन्त्र (सरसों के दानों से सेना बना लेना) नाम की दो विद्याएँ प्राप्त हुई। सूरि आनंदित होकर उस पुस्तक को आगे पढ़ रहे थे कि शासनदेवी ने उन्हें अयोग्य समझ कर छीन ली।

उसके पश्चात सिद्धसेन पूर्व की ओर गए और कर्मार नाम के नगर में पहुँचे। वहाँ के राजा देवपाल ने उनका स्वागत किया। सूरि ने धर्मोपदेश द्वारा राजा को अपना भक्त और सखा बना लिया। उन्हीं दिनों कामरूप देश के राजा विजयवर्मा ने कर्मार नगर को घेर लिया। बलवती सेना के बाणों से देवपाल घबड़ा गया और सिद्धसेन के पास पहुँचा और निवेदन करने लगा—'शत्रु की सेना अत्यन्त बलशाली तथा विशाल है। मेरी छोटी सी सेना और थोड़ा सा कोष कहाँ तक टिक सकेंगे? मैं आपकी शरण में आया हूँ, किसी प्रकार रक्षा कीजिए।'

सिद्धसेन ने उसे सान्त्वना दी और उपाय करने का वचन दिया। उन्होंने सुवर्ण सिद्धियोग से विपुल धन राशि और सरसव मन्त्र से विशाल सेना की सृष्टि की। उसकी सहायता से देवपाल ने विजय वर्मा को हरा दिया। देवपाल ने उस सहायता से प्रसन्न होकर सूरि को दिवाकर की पदवी प्रदान की। उसके बाद सिद्धसेन के साथ दिवाकर लगने लगा।

राजदरबार में सिद्धसेन की मान प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उन्हें हाथी घोड़े, पालकी आदि वाहन राज्य की ओर से भेजे जाने लगे और सिद्धसेन उनका उपयोग भी करने लगे। वृद्धवादी को जब यह मालूम हुआ कि सिद्ध सेन राजसम्मान के आकर्षण में पड़कर अपनी मर्यादा को भूल गए हैं तो उन्हें प्रतिबोध देने के लिए वे वेश बदल कर कर्मार पहुँचे। उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि सिद्धसेन पालकी में बैठकर राजमार्ग से जा रहे हैं। अनेक लोग इधर उधर से घेर कर उनका जयनाद कर रहे हैं। सिद्धसेन के सामने पहुँच कर वृद्धवादी ने कहा—'मैं आपकी ख्याति सुन कर यहाँ आया हूँ। मेरा संशय दूर कीजिए।"

सिद्धसेन ने उत्तर दिया— 'आप अच्छी तरह पूछिए।"

गुरु ने विद्वानों को भी आश्चर्य में डालने वाले स्वर में नीचे लिखी गाथा सुनाई —

> अणफुल्लो फुल्ल म तोडहु मन-आरामा म मोडहु ।
> मण कुसुमेहि अच्चि निरजणु हिंडइ काई वणेण वणु ॥

सिद्धसेन ने विचार किया किन्तु अपभ्रंश की इस गाथा का वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आया। उसने आड़ा टेढ़ा उत्तर देकर कहा—और कुछ पूछिए।

वृद्धवादी ने कहा—"इसी पर फिर विचार कीजिए और उत्तर दीजिए।"

सिद्धसेन ने अनादर पूर्वक फिर ऊटपटांग अर्थ किया किन्तु वृद्धवादी ने स्वीकार नहीं किया। तब सिद्धसेन ने उन्हें ही खुलासा करने के लिए कहा।

वृद्धवादी ने उत्तर दिया—"सावधान होकर सुनिए—यह मानवदेह जीवन रूपी कोमल फूलों वाली लता है। इसके जीवनांशरूपी फूलों को तुम राज्य सत्कार तथा तज्जन्य मिथ्याभिमान के प्रहारों से मत तोड़ो। मन के यम, नियम आदि आरामों (उद्यानों) को योग विलास के द्वारा नष्ट भ्रष्ट मत करो। मन के सद्गुण रूप पुष्पों के द्वारा निरंजन भगवान की पूजा करो। सांसारिक लाभ सत्कार के मोह में क्यों भटक रहे हो।'

सिद्धसेन की भूलों को अभिव्यक्त करने वाले और भी कई अर्थ वृद्धवादी ने किए। उन्हें सुन कर सिद्धसेन का मन पलट गया। मन में विचार आया—"धर्मगुरु के अतिरिक्त इस प्रकार की भर्त्सना और कौन कर सकता है।" वह परों में गिर पड़ा और अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगने लगा।

वृद्धवादी ने कहा—मने तुम्हें जैन सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान कराया है। जिस प्रकार मन्द अग्नि वाला गरिष्ठ भोजन को नहीं पचा सकता उसी प्रकार तुम भी इसे नहीं पचा सके। जब तुम्हारे सरीखे प्रतिभा एवं विद्यासम्पन्न तेजस्वी का यह हाल है तो दूसरों की क्या दशा होगी? तुम सन्ताप पूर्वक अपने चित्त को स्थित करो और मने जो ज्ञान दिया है, उसे पचाओ। स्तम्भ में से जो पुस्तक निकाली थी उसे छीन कर देवी ने अच्छा ही किया। उसको पचाने वाले स्वामी अब कहाँ है?'

सिद्धसेन ने अपनी भूल स्वीकार की और उचित प्रायश्चित्त लिया। गुरु उन्हें अपने आसन पर बैठा कर स्वयं विहार कर गए। सिद्धसेन दिवाकर आचार्य बन कर धर्म की प्रभावना करने लगे।　　　　—क्रमशः

अमरता की परिभाषा

(अमेरिका में महाकवि रवीन्द्र से पूछे गए प्रश्न और उनका

प्र०—महात्मा गांधी की सफलता का क्या रहस्य है ?

उ०—महात्मा गांधी की सफलता का रहस्य उनकी प्रेरणा देने वाली आध्यात्मिक शक्ति और अनवरत आत्म त्याग में है। बहुत से जनसेवक अपने स्वार्थों के लिए त्याग करते हैं। वे एक प्रकार से पूंजी लगाते हैं और बदले में अच्छा मुनाफा प्राप्त करते हैं। गांधी उन से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी महानता किसी दूसरे में नहीं पाई जाती। उनका जीवन त्याग का ही दूसरा नाम है। वे स्वयं त्यागरूप हैं। उन्हें न प्रभुता चाहिए, न पद, न सम्पत्ति, न नाम और न यश। उन्हें समस्त भारत का राज्यसिंहासन दीजिए, वे उस पर बैठने से इन्कार कर देंगे। वे उस के जवाहारात निकाल कर बेच देंगे और रुपए को दरिद्रों में बांट देंगे।

सम्राट और राजाधिराज तोपें और संगीनें, कारावास और यन्त्रणाएं, अपमान और चोटें, यहां तक कि मृत्यु भी गांधी की शक्ति को नहीं रोक सकती।

यह एक मुक्त आत्मा है। यदि कोई मुझे तंग करता है, तो मैं सहायता के लिए चिल्ला पड़ूंगा। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि गान्धी को तंग किया जाय तो वे कभी नहीं चिल्लाएंगे। वे कष्ट देने वाले पर हंसेंगे और यदि मरना ही पड़ा तो मुस्कुराते हुए मर जाएंगे।

उनमें बच्चे के समान सरलता है। उन की सत्यनिष्ठा अडिग है। उनका जीवन मानव जाति के लिए प्रेरक है, उसे विकसित कर रहा है। उनमें पैगम्बरों की आत्मा है। मेरा उन से परिचय जितना लम्बा होता है उतना ही मैं उन्हें अधिकाधिक चाहने लगा हूं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह महापुरुष संसार के भावी निर्माण का सूत्रधार बन कर आया है।

प्रश्न—क्या यह उचित नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को दुनिया अधिक जाने ? आप उन्हें प्रकाश में क्यों नहीं लाते ? आप भी तो विश्व के महापुरुष हैं ?

मैं उन्हें प्रकाश में कैसे लाऊं ? उनकी आलोकित आत्मा की तुलना में मैं कुछ नहीं हूं। जो व्यक्ति वास्तव में महान् हैं उन्हें महान् बनाया नहीं जाता। वे तो अपने ही तेज से महान् होते हैं। और जब संसार में योग्यता आ जाती है वे अपनी ही महानता से प्रसिद्ध हो जाते हैं। जब समय आएगा,

[शेष पृष्ठ ३७ पर पढ़िए]

जीवन-धारा

शत शत मधु-स्रोतों से झर कर
जीवन धारा फूट पड़ी लो।

नई उमगें, नई रवानी
नए जगत की नई कहानी
लक्ष्य-वेध की अमिट निशानी
ले निज कर में—
शुष्क तृणों पर
जन के मन पर
प्यासी भू पर
चट्टानों पर
निर्जन वन के वीरानों पर
नए वेग से
नए तेग से
क्रोधित शत-फण-युत नागिन सी
जलद-जाल में
सौदामिनि सी,
आज यकायक
संसृति में जीवन भर देने
जीवन को नवजीवन देने—

शत शत मधु स्रोतों से झर कर
जीवन धारा फूट पड़ी लो।

अमित तिमिर पर किरण जाल सी
सागर के क्रोधित उबाल सी

जीवन धारा—
रुक न सकेगी
झुक न सकेगी
लक्ष्य वेध के अन्तिम पल तक
किसी शक्ति से
किसी युक्ति से
थक न सकेगी
महलों की सुदृढ़ दीवारें
मन्दिर मस्जिद की मीनारें
सिसक सिसक कर आज मिटेंगी।
चट्टानों से सिर टकरा कर
तन का संचित रक्त बहाकर
यौवन का उन्माद जगा कर—
जन के मनमें आग लगा कर—
जीवन धारा—
मचल पड़ेगी

जीवन धारा—
थिरक उठेगी
किसी शक्ति से
किसी युक्ति से
जीवन धारा रुक न सकेगी।

ओ पथ की जड़, मृत चट्टानो !
राह छोड़ दो,
प्रबल वेग युत सरिताओ !
तुम पथ मोड़ दो,
यौवन का उद्दाम वेग
तुम सह न सकोगे
ओ यौवन ! तुम उठो
जगत घट आज फोड़ दो
घट में चिर संचित हालाहल

[शेष पृष्ठ ४१ पर देखिये।]

जैन आगमों का मंथन

डॉ० इन्द्र

मानव स्वभाव

संसार में चार प्रकार के वृक्ष होते हैं—

(१) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और गुणों में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और गुणों में नीचे।

(३) कुछ आकार में नीचे होते हैं और गुणों में ऊँचे।

(४) कुछ आकार में नीचे होते हैं और गुणों में भी नीचे।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष होते हैं—

(१) कुछ जाति, कुल, शरीर, धन, रूप आदि बाह्य सम्पत्ति में ऊँचे होते हैं और ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उदारता आदि आत्म सम्पत्ति में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ बाह्य सम्पत्ति में ऊँचे होते हैं किन्तु आत्म सम्पत्ति में नीचे।

(३) कुछ बाह्य सम्पत्ति में नीचे होते हैं किन्तु आत्म सम्पत्ति में ऊँचे।

(४) कुछ बाह्य सम्पत्ति में नीचे होते हैं और आत्म सम्पत्ति में भी नीचे।

× × × ×

अथवा, दूसरे प्रकार से वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—

(१) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और फल देने में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ आकार में ऊँचे और फल देने में नीचे।

(३) कुछ आकार में नीचे और फल देने में ऊँचे।

(४) कुछ आकार में नीचे और फल देने में भी नीचे।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं।

× × × ×

अथवा वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—

(१) आकार ऊँचा और रूप भी ऊँचा।

(२) आकार ऊँचा और रूप नीचा।

(३) आकार नीचा और रूप ऊँचा।

(४) आकार नीचा और रूप भी नीचा।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष होते हैं—

(१) शरीर ऊँचा और रूप भी सुन्दर।

(२) शरीर ऊँचा किन्तु कुरूप।

(३) शरीर नीचा किन्तु सुन्दर ।
(४) शरीर नीचा और साथ ही कुरूप ।

अथवा

(१) शरीर ऊँचा और मन भी ऊँचा ।
(२) शरीर ऊँचा और मन नीचा ।
(३) शरीर नीचा और मन ऊँचा ।
(४) शरीर नीचा और मन भी नीचा ।

इसी प्रकार सकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलचार, व्यवहार और पराक्रम की अपेक्षा भी पुरुष चार चार प्रकार के होते हैं ।

× × × ×

दूसरी अपेक्षा से भी वृक्ष चार प्रकार के हैं—

(१) देखने में सीधा और फल देने में भी सीधा ।
(२) देखने में सीधा और फल देने में टेढ़ा ।
(३) देखने में टेढ़ा और फल देने में सीधा ।
(४) देखने में टेढ़ा और फल देने में भी टेढ़ा ।

इसी तरह पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

(१) देखने में सीधे और व्यवहार में भी सीधे ।
(२) देखने में सीधे और व्यवहार में टेढ़े ।
(३) देखने में टेढ़े किन्तु व्यवहार में सीधे ।
(४) देखने में टेढ़े और व्यवहार में भी टेढ़े ।

+ × × ×

वस्त्र चार प्रकार के होते हैं ।—

(१) धुला हुआ और पवित्र काम में लगा हुआ ।
(२) धुला हुआ किन्तु अपवित्र काम में लगा हुआ ।
(३) मैला किन्तु पवित्र काम में लगा हुआ ।
(४) मैला और साथ ही अपवित्र काम में लगा हुआ ।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं ।

(१) कोई पुरुष शरीर से शुद्ध होता है और स्वभाव से भी शुद्ध ।
(२) कोई शरीर से शुद्ध किन्तु स्वभाव से गन्दा ।
(३) कोई शरीर से गन्दा किन्तु स्वभाव से शुद्ध ।
(४) कोई शरीर से गन्दा और स्वभाव से भी गन्दा ।

× × × ×

पुत्र चार प्रकार के होते हैं—

(१) अतिजात—जो गुणों में पिता से भी आगे बढ़ जाय।

(२) अनुजात—जो पिता का अनुसरण करता हुआ कुल की मर्यादा को ज्यों की त्यों बनाये रखे।

(३) अवजात—जो पिता की अपेक्षा हीन गुणों वाला हो।

(४) कुलाङ्गार—जो पिता की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दे।

इसी तरह शिष्य चार प्रकार के होते हैं—

(१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों में गुरु से भी आगे बढ़ जाने वाला।

(२) गुरु के चरण चिह्नों पर चलकर उनकी प्रतिष्ठा को स्थिर रखने वाला।

(३) गुरु से हीन गुणों वाला।

(४) गुरु की आज्ञा के विपरीत चलकर उनकी प्रतिष्ठा को समाप्त कर देने वाला।

× × + ×

कलियाँ चार प्रकार की होती हैं—

(१) आम की कली के समान समय आने पर अपने आप मीठा फल देने वाली।

(२) ताड़ की कली के समान समय आने पर भी कष्ट से फल देने वाली।

(३) बेल की कली के समान जल्दी जल्दी बिना कष्ट के फल देने वाली।

(४) मेंढासिंघी की कली के समान कभी फल न देने वाली।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष हैं—

(१) समय आने पर अपने आप सेवा या किए का फल देने वाले।

(२) समय आने पर भी बड़े कष्ट से फल देने वाले।

(३) जब चाहे तब फल देने वाले।

(४) कभी फल न देकर कोरी बातों में टरकाने वाले।

[पृष्ठ ९२ का शेष]

दुनिया अपने आप गांधी जी को पहचानेगी। क्योंकि उन्होंने स्वतन्त्रता और विश्वबन्धुत्व का जो सन्देश दिया है संसार को उसकी आवश्यकता है।

गान्धी जी प्राची की आत्मा के योग्य अधिष्ठान हैं। वे अपने जीवन से सिद्ध कर गए हैं कि मनुष्य एक आध्यात्मिक तत्व है। वह नीति और अध्यात्म के वातावरण में पनपता है और घृणा तथा बारूद के धुएँ में निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। न उसकी आत्मा बचती है और न शरीर।

सनिक ने उत्तर दिया—"वे थ्योरी जानते हैं। प्रेक्टिस नहीं।" मैं तब यह समझे हुए था कि सिद्धान्त और उसके क्रियात्मक प्रयोग में यह दूरी केवल धर्म के क्षेत्र में ही है। कलाकौशल के क्षेत्र में भी उसे सुन कर आश्चर्य हुआ। जो इंजीनियर अपने हाथ से मोटर के कल पुर्जों को ठीक नहीं कर सकता, उसका सचालन नहीं कर सकता, उसका सद्धान्तिक ज्ञान क्या महत्त्व रखता है? कामर्स पढ़े हुए विद्यार्थी जब दुकान पर काम करना प्रारम्भ करते हैं तो दुकानदार भी यही शिकायत करते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो सिद्धान्त और व्यवहार की दूरी भारतीय जीवन का अंग बन गई है। हमारे यहाँ उपदेश देने वाले यह आवश्यक नहीं समझते कि उनके उपदेश का सम्बन्ध किसी अंश तक उनके निजी जीवन से भी होना चाहिए।

हिन्दू विश्वविद्यालय में एक अध्यापक थे। विद्या की दृष्टि से तो उन्हें कोई न पूछता, फिर भी किसी दूसरे गुण के कारण मालवीय जी के संपर्क में आ गए। जब कालेज से आते तो घसकर भांग छानते और हाथ पाँव फलाकर चारपाई पर लेट जाते। होस्टल का चपरासी उनके घर बना रहता। उसी समय विद्यार्थी पहुँच जाते तो शिक्षा देते— देखो भई गुरु कहे सो करना, गुरु करे सो नहीं करना।"

हम दूसरे को पूरा ईमानदार, निःस्वार्थ सेवी संत महात्मा के रूप में देखना चाहते हैं किन्तु स्वयं कुछ नहीं करना चाहते। चाहते हैं, सारा काम दूसरा करे, कष्ट दूसरा उठाए और फल हमें मिल जाय। हमारी भावना है, बलिदान बकरे का हो और स्वर्ग हमें मिल जाय। यह भावना हमें अपने आप ऊँचा उठने की प्रेरणा नहीं देती। हमारे यहाँ नेता अधिक हैं और अनुयायी कम। उपदेशक अधिक हैं और श्रोता थोड़े। रास्ता दिखाने वाले ज्यादा हैं और उस पर चलने वाले थोड़े। इस समय देश को अनुयायियों की आवश्यकता है श्रोताओं की आवश्यकता है और मार्ग पर चलने वालों की आवश्यकता है। जब तक यह आवश्यकता पूरी न हो नेता, उपदेशक तथा मार्ग बताने वालों को कोई दूसरा काम ढूंढ लेना चाहिए। स्वर्ग का ठेका लेने वालों का प्रतिबिम्ब न करना चाहिए। यदि वे इस कर्म से सन्यास ले लेवें तो देश की बहुत बड़ी सेवा होगी।

बम्बई जैन समाज का शुभ प्रयास—

पिछले कई महीनों से बम्बई में जैन समाज के लिए साम्प्रदायिक भेदभाव से हीन एक अखण्ड संघ तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है। इसके लिए

असाम्प्रदायिक साहित्य का निर्माण आदि कुछ रचनात्मक योजनाएँ भी तैयार की गई हैं। आचार्य श्री विजय वल्लभसूरि, सेठ सोहनलाल जी दूगड़, सेठ कान्तिलाल ईश्वरलाल साह सेठ श्रेयांस प्रसाद जी आदि विभिन्न सम्प्रदायों के अग्रणी इसमें प्रमुख भाग ले रहे हैं हैं। जैन समाज का हित चाहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस शुभ प्रयास का अभिनन्दन करेगा। बम्बई प्रारम्भ से ही समस्त जैन समाज का नेतृत्व करती रही है। उसके इस भव्य उदाहरण का प्रभाव समस्त भारत पर पड़े बिना न रहेगा।

हम इस अवसर पर सुझाव के रूप में एक बात लिखना चाहते हैं। इस प्रकार का सभी सम्प्रदायों के अग्रणी व्यक्तियों का जो संगठन बना है उसे कुछ ऐसे प्रश्नों को हाथ में लेना चाहिए जिनमें किसी सम्प्रदाय वाले को कोई आपत्ति न हो और जैनधर्म एवं संस्कृति का हित होता हो। इस प्रकार के कार्यों से समाज का कल्याण होगा, साथ ही संगठन को बल प्राप्त होगा।

उदाहरण के रूप में भारतीय विश्वविद्यालयों में जैन पाठ्यक्रम रखाने का प्रयत्न एक ऐसा कार्य है जो समाज के भविष्य की दृष्टि से बहुत महत्त्व रखता है। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में जैनदर्शन को स्थान मिलते ही जैन विद्वानों के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा। प्रामाणिक जैन साहित्य की मांग भी बढ़ जाएगी। साम्प्रदायिक भेदभाव का तो इसमें कोई प्रश्न ही नहीं है। इस विषय में हम गत अंक में भी लिख चुके हैं।

आशा है संगठन के संचालक इस ओर ध्यान देंगे।

[पृष्ठ ३४ से आगे।]

पी जाओ तुम
आज मृत्यु को गले लगा कर
जी जाओ तुम
दुविधा कैसी ?
कैसा कंपन ?

देख रहे हो
दूर क्षितिज में—

शत शत मधुस्रोतों से झरकर
जीवन धारा फूट पड़ी है !

—नानचन्द्र भारिल्ल, एम० ए०

इस अंक में

श्रमण के विषय मे—

१ श्रमण प्रत्येक अंगरेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२ ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।

३ श्रमण में साम्प्रदायिक वाग्ग्रह का स्थान नहीं दिया जाता।

४ विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।

५ पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

६ वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।

७ समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस का मुखपत्र

वर्ष ४ सितम्बर १९५३ अंक ११

अपभ्रंश के जैन साहित्य का महत्त्व

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य के अध्ययन में जैन अपभ्रंश साहित्य की सहायता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। यदि दसवीं शताब्दी तक मिली हुई अपभ्रंश रचनाओं पर विचार किया जाय तो स्पष्ट रूप से मालूम होगा कि जिस विशाल भूभाग को हमने शुरू में ही मध्यदेश कहा है, उसमें लिखा हुआ साहित्य बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध हुआ है। उसके आधार पर हम उस विशाल और महत्त्वपूर्ण साहित्य के विकास का कुछ भी अन्दाजा नहीं लगा सकते जो आगे चलकर मूल मध्यदेश में सूरदास, तुलसीदास, जायसी और बिहारी जैसे कवियों की रचनाओं के रूप में प्रकट हुआ है। दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निःसंदिग्ध रूप से हिंदी रचनाएँ मानी जाती हैं उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है और यदि किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाय तो भी वे मूल मध्यदेश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निःसंदेह मूलरूप में और प्रामाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है, वह वास्तविक और विश्वसनीय है। इस दृष्टि से जैन रचनाओं का महत्त्व बहुत अधिक है। ये हमें उस भाषा के काव्य रूपों को समझने में सहायता पहुँचाती हैं और साथ ही उस काल की भाषागत अवस्थाओं और प्रवृत्तियों को समझने की कुंजी भी देती हैं।

अपभ्रंश में अनेक चरित काव्य लिखे गए थे जिनकी परम्परा आगे चलकर हिन्दी के चरित काव्यों में प्राप्त होती है। परन्तु ये काव्य अब बहुत कम उपलब्ध होते हैं। बाणभट्ट के एक मित्र ईशान कवि थे जो 'भाषा

कवि' अर्थात अपभ्रंश के कवि थे। पुष्पदंत ने विनय प्रकट करते हुए महापुराण में कहा है कि मैंने न तो चतुर्मुख, स्वयंभू, श्री हर्ष और द्रोण को ही देखा और न बाण और ईशान जैसे सुकवियों का ही अवलोकन किया है। [illegible] चतुर्मुख और स्वयंभू तो अपभ्रंश के परिचित कवि हैं ही, ईशान भी अपभ्रंश के रहे होंगे, ऐसा स्पष्ट मालूम होता है। आजकल केवल जैन चरित काव्यों की रचनाएँ ही उपलब्ध हो सकी हैं। ईशान की कोई रचना प्राप्त नहीं है। स्वयंभू अपभ्रंश के उन सबसे पुराने कवियों में हैं जिनकी रचना उपलब्ध है। इनकी चार महत्त्वपूर्ण रचनाओं का पता चला है—पउम चरिउ (रामायण), रिट्ठणेमि चरिउ, पचमी चरिउ और स्वयंभूछंद। केवल अंतिम पुस्तक पूरी छपी है (तीन अध्याय एशियाटिक सोसायटी के जर्नल १९३५ में और बाकी पाँच अध्याय बाम्बे यूनिवर्सिटी जर्नल १९३६ में)। बाकी पुस्तकों के केवल थोड़े अंश प्रकाशित हुए हैं। रामायण के कुछ [illegible] राहुल जी ने 'काव्यधारा' में प्रकाशित किए हैं। वस्तुत यही पुस्तक स्वयंभू की सर्वोत्तम रचना है। इसमें स्वयंभू की कवित्व शक्ति का बहुत सुंदर परिचय मिलता है। परन्तु साहित्य के इतिहास के जिज्ञासु के लिए 'स्वयंभू छंद' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें उदाहरण के लिए अपभ्रंश के निम्न लिखित कवियों की रचनाएँ उद्धृत हैं—'चउमुह (चतुर्मुख), धुत्त, धनदेव, छाइल्ल, अज्जदेव (आर्यदेव), गोइंद (गोविन्द), सुद्धसील, जिणआस, विअड्ढ'। इससे पता चलता है कि स्वयंभू के पहले अपभ्रंश काव्य की बहुत महत्त्वपूर्ण परम्परा थी। जिस प्रकार नवीं शताब्दी के पहले के अपभ्रंश साहित्य के लिए 'प्राकृत पैंगल' का महत्त्व है, उसी प्रकार नवीं शताब्दी के पहले की रचनाओं के लिए इस ग्रंथ का महत्त्व है। स्वयंभू का समय आठवीं शताब्दी के आसपास ही होगा, क्योंकि इन्होंने स्वयं रविषेण (६७७ ई०) की चर्चा की है और पुष्पदंत ने (१० वीं शताब्दी) इनका नाम लिया है। इन्हीं दोनों के बीच का कोई समय स्वयंभू का समय होगा। स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवन भी बहुत अच्छे कवि थे उन्होंने अपने पिता के काव्यों में अधिक अध्याय जोड़कर उन्हें बढ़ाया था।

स्वयंभू अपभ्रंश के सर्वोत्तम कवियों में हैं। हरिषेण ने अपनी 'धम्म परीक्खा' में अपभ्रंश के तीन कवि माने हैं—चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदंत। इनमें चतुर्मुख पुराने हैं परन्तु इनका कोई ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। स्वयंभू ने इन्हें पद्धड़िया बंध का दाता (प्रवर्तक) कहा है—'चउमुहेण समप्पिय पद्धड़िय'। पर दुर्भाग्यवश इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है। पुष्पदंत के कई ग्रंथों का पता लगा है। अधिकांश प्रकाशित भी हो गए हैं। [illegible]

र्वीं शताब्दी के मान्यखेट के प्रतापी राजा कर्ण के महामात्य भरत के सभा वि थे। बहुत ही मनस्वी व्यक्ति थे। अपने को 'अभिमानमेरु' कहा रते थे। इनको ही हिंदी की भूली हुई अनुश्रुतियों में राजा मान का पुष्प वि कहा गया है। उनकी तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं और तीनों ही प्रकाशित ई हैं। ये हैं (१) तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार (त्रिसष्ठि महापुरुष गालंकार), (२) णायकुमार चरिउ (नागकुमार चरित) (३) जसहर रिउ (यशोधर चरित)। पुष्पदंत बहुत ही शक्ति संपन्न व्यक्ति थे। ाव्य के सभी रूपों और अवयवों पर इनका पूर्ण अधिकार है। अपने तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार में इन्होंने बड़े गर्व के साथ घोषणा की है जो ग्रंथ में है, वह और कहीं मिल ही नहीं सकता—यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् नान्यत्र तद् विद्यते।

दसवीं शताब्दी में धनपाल नामक जैन कवि ने 'भविसयत्त कहा' नामक प्रसिद्ध चरित काव्य की रचना की थी। ये संभवतः पुष्पदंत से थोड़े पहिले के हैं। इनकी रचना काफी सुप्रसिद्धि पा चुकी है और भी कई जैन कवियों के लिखे चरित काव्य उपलब्ध हुए हैं जैसे करकण्डुचरिउ (१२वीं शती) सुदर्शन चरिउ (११वीं शती) पजुण्ण चरिउ और सुकुमाल चरिउ (१३वीं शती), नेमिनाह चरिउ और पुरंदर चरिउ (१५वीं शती) इत्यादि। इनमें केवल करकण्डु चरिउ ही प्रकाशित हुआ है, बाकी अभी अप्रकाशित हैं।

इन चरित काव्यों के अध्ययन से परवर्ती काल के हिंदी साहित्य के कथानकों, कथानक रूढ़ियों काव्यरूपों, कवि प्रसिद्धियों, छंदोयोजना, वर्णन शैली वस्तुविन्यास, कविकौशल आदि की कहानी बहुत स्पष्ट हो जाती है। इसलिये इन काव्यों से हिंदी साहित्य के विकास के अध्ययन में बहुत महत्व पूर्ण सहायता मिलती है।

८वीं ९वीं शती के जैन मरमी कवि जोइंदु (योगीन्दु या योगींद्र) के दो ग्रंथ परमात्म प्रकाश और योगसार दोहों में उपलब्ध हुए हैं। इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से सांप्रदायिक पद से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय तो यह समझना कठिन हो जायगा कि ये निर्गुन मार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुनिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के कवि रामसिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' प्राप्त हुई है जो भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उसी श्रेणी में आता है। इन दोहों में कबीर, दादू आदि की परवर्ती दोहाबद्ध रचनाओं की परम्परा स्पष्ट होती है।

कहानी

कुभार्या

श्री जयभिक्षु

वसन्त की शोभा को देखकर अपने बैलों से सुशोभित रथ पर बाहर वापिस लौटते हुए राजगृही के व्यापारी महाशतक के हृदय में शान्ति न थी। केशपाश में आम्रमञ्जरी गूंथ कर, पैरों में झांझर पहिनकर, हाथ में कदम्ब की डाल लेकर वसन्त नृत्य करती हुई रूपगर्विता रेवती उसके हृदय में बस चुकी थी। उसकी रक्तहरितवर्ण की साड़ी में अनेक चमकते हुए तारे जड़े हुए थे। कंचुकी बांधने की छटा भी अद्भुत थी।

महाशतक की आंखें रेवती के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु पर नहीं ठहरती थीं। उसके छोटे छोटे ओष्ठ मधुरस की प्याली से भी अधिक रक्त थे। आंखों का खोलना और बन्द करना घनघोर मेघ में चमकती हुई विद्युत से भी चञ्चल था। उसकी चाल ही उसका नृत्य था। उसकी हास्यप्रभा को देखते ही कलेजा अशान्त हो जाता था।

घर पर एक दो नहीं किन्तु बारह पत्नियां थीं। रेवती ने सब की सुन्दरता पर पानी फेर दिया। महाशतक सोचता रहा—अरे! ये बारहों तो रेवती के पैर का पानी छूने योग्य भी नहीं।

'रेवती मेरी होगी।' उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय किया। न कौन! राजगृही के महाव्यापारी महाशतक को अपनी पुत्री कौन न दे? महाशतक की मांग को कौन ठुकरा सकता है?

गले में रौप्यमाला डालकर महाशतक रेवती के पिता के द्वार पर जा पहुंचे। महाशतक सरीखे व्यापारी को अपने द्वार पर आया हुआ देखकर रेवती का पिता प्रसन्नता से फूल उठा।

"पधारिये महाशय!"

'विशेष समय नहीं, यहां आओ! किसी विशेष कार्य से आया हूं।'

वह समीप आया।

तुम्हारी पुत्री रेवती यौवनावस्था में प्रवेश कर चुकी है। उसे आज मैंने वसन्त-नृत्य में देखा था। अब कोई जामाता ढूंढना पड़ेगा न ?"

"अवश्य, किन्तु कोई दिखाई नहीं देता। वर है तो घर नहीं, घर मिलता है तो वर से सन्तोष नहीं। वर और घर मिलता है तो कुल ठीक नहीं। तीनों हैं तो कुटुम्ब नहीं।"

"कोई नहीं मिलता तो क्या मैं नजर में नहीं आता ? चलो, तुम्हारी रेवती मेरी पत्नी होगी।"

"आपकी ?"

"क्यों, क्या मेरा यौवन समाप्त हो गया है ?" महाशतक ने ढाल सी अपनी छाती आगे की। अपने हाथ को बैल की पीठ पर पटका। बैल चारों पैरों से दौड़ने की तयारी करने लगा। महाशतक ने रस्सी खींची। बाहु में पहिने हुए मणिजटित कटक मसल के ऊपर चढ़ गये।

"फिर पर रेखूंगा बारह रानियों में प्रधान होगी किन्तु ध्यान रखना, एक व्रज और एक हिरण्यकोटी "

महाशतक ने रज्जू से पुन बैलों को सावधान किया और फिर ढीला छोड़ दिया। महाशतक का रथ कुछ ही समय में दिशाओं को झनझनाता हुआ आंखों से अदृश्य हो गया।

द्वार पर खड़ी हुई रेवती ने तथाकथित युवक को जाते हुए देखा। उसके घुंघराले बाल, लाल कलगी और मांसल बाहु रेवती की दृष्टि में घुम गये।

"कौन था यह ?" अपने बाल सुखाती हुई रेवती वहाँ आई।

"तेरी मांग करने आया था। उसका नाम है महाशतक। राजगृही का विख्यात व्यापारी।"

"मस्त युवक है। हिरण्य, व्रज क्या ?"

"सब कुछ ठीक है। किन्तु बेटी उसके यहाँ पहले से ही बारह पत्नियाँ हैं।"

"पिताजी! बारह हों या बारह सौ इसकी कोई चिन्ता नहीं। अपने में शक्ति होना चाहिए।"

पिता कुछ न बोला।

समवयस्क सखियों ने जब यह बात सुना तो हँस पड़ीं—"पगली! यह क्या सूझा ?"

"अरे, जिसने बारह पत्नियाँ की है और इतनी मस्त बनाती है, वह कैसा अद्भुत होगा ? अरे, नये युवक की अपेक्षा रसिक अनुभवी बुरा ? उसने मेरी मांग की है, मैं क्यों न जाऊं ! वह तो रंगा हुआ मयूर है । मूढ़ नर क्या जानता है ?"

रेवती और महाशतक के लग्न हुए । पिता को पुत्री के ठीक स्थान पर पहुंच जाने से संतोष हुआ । हिरण्य और धन मांगने से भी अधिक मिले।

रेवती तो संसार की सर्वविलास कलाओं में कुशल थी । जितने रसों उतने रस और जितने दिवस उतने विलास उसके पास थे । महाशतक दिशा का भान भूल गया । रेवती के सौन्दर्य और चातुर्य ने उसे वश कर लिया ।

सारा कार्य भार रेवती के हाथ में आया । दास-दासियां चमचमाती हुई सेठानी को ही देखने लगीं । उसे प्रसन्न रखने के लिए दूसरी पत्नियों से लड़ने लगे ।

रेवती कहती—'सबल और निर्बल की लड़ाई में निर्बल हारेगा । मुझे तो यही देखना है कि मेरी सबलता कैसे बढ़े ?' और हुआ भी ऐसा ही। इस झगड़े में बारहों सौतें निर्बल सिद्ध हुई । किसी ने विष से तो किसी ने शस्त्र से आत्महत्या कर ली ।

रेवती को अब एक छत्र साम्राज्य मिला और किसी प्रकार की परवाह न रही । पहले प्रतिदिन छ बार वेणी गूंथती थी अब दो बार गूंथने लगी । पहले हमेशा नये नये फूल डालती थी, अब कई बार खुले बाल ही फिरने लगी । स्नान भी कम कर दिया और विलेपन भी दो दिन में एक दिन करने लगी । मधुरस पहले कभी कभी एकान्त में और अल्प प्रमाण में पीती थी किन्तु अब इच्छानुसार पीने लगी । प्रातः कालिक उद्यानगमन मध्याह्न में होने वाला वसन्त-नृत्य और रात्रि सम्बन्धी दीपकनृत्य अब बांदियों का काम हो गया ।

ऐसे घोर सागर को पाकर पिपासा क्या बाकी रह सकती है ? महाशतक तृप्त हो गया । उसने कंठपर्यन्त गाढ़ रस का पान किया । अब यदि और पिये तो वमन हो जाय !

किन्तु रेवती अभी तक तृप्त नहीं हुई । उसकी पिपासा बाकी ही रही।

"रेवती ! मेरी बारह पत्नियां मेरे वियोग में मर रही होंगी। इनका कुछ विचार करना चाहिए न ?"

"विचार हो गया। वे सब शोक से गल गल कर मर गई। उनकी कुछ भी चिन्ता न करो। ये बारह प्रासाद बारह मास के लिए विहार बना लिये गये है।'

"सब मर गई ?"

"हां, किन्तु इसमें दुःख किस बात का ? उन सबको मात करने वाली तो अभी जीवित हूं।" निलज्जा ने उत्तर दिया।

महाशतक की काया कृश हो गई और कमर झुक गई।

(२)

एक समय प्रभु महावीर राजगृही में आये। लोग उन्हें अदभुत जादूगर मानते थे। जादूगर तो धागे और धाग्य कण से दुःख दूर करता है किन्तु महावीर दृष्टि से ही कष्ट मिटा देते थे।

दुःखी महाशतक प्रभु के पास गया और रो पड़ा। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए मार्ग पूछा। भगवान से बारह व्रत ग्रहण किए। प्रभु ने प्रेम से कहा—महाशतक ! जितने प्रेम से प्रिय को स्वीकृत किया उतने ही प्रेम से अप्रिय का स्वागत कर। तेरा सन्ताप दूर होगा।

"नागिनी को समझाना सरल है किन्तु उसे समझाना महादुष्कर है।"

"वह नागिनी नहीं उसमें भी सौन्दर्य है जिसके पीछे तू पागल बना था। उस सौन्दर्य को फिर से ढूंढ। मानव पापी नहीं, वृत्ति पापी है। मानव मात्र से प्रेम कर। प्रेम तेरा कल्याण करेगा।"

महाशतक वापिस लौटा। उसमें गंभीरता आ गई। उसने प्रेम से पत्नी को समझाया। महावीर के उपदेश का पूरा पता विवरण दिया किन्तु पत्नी ने सब कुछ उलटा समझा।

"ये वैराग्य की बातें मेरे घर में नहीं चलेंगी।"

"वाह रे, रेवती ! कैसा भली है तू ! दूसरा कोई होती तो मुझ प्राणप्रिय के लिए कुछ और ही करती।"

"वाह रे भक्त !" रेवती ने कटाक्ष किया। महाशतक अप्रिय का प्रिय मानकर सन्तोष कर रहा है। रेवती दिन प्रति दिन उच्छृंखल बनती जा

रही है। जैसे जैसे वह उच्छृंखल बनती जाती है वैसे वैसे महाशतक अत्यन्त नम्र और उदार बनता जाता है।

क्रोध तो मानो उसमें है ही नहीं। सहनशीलता तो मानो उसके जैसी दुनियां में है ही नहीं। बड़े से बड़े पापी पर उसकी उदार दृष्टि है।

"रेवती! तेरा पूरा अधिकार है कि तू मुझे जो चाहे कह। मैंने अपनी क्षणिक वासना की शांति के लिए तेरा यौवन नष्ट किया।"

"कौन कहता है कि मेरा यौवन नष्ट हुआ? अहा!" और रेवती सुरा की प्यालियां चढ़ाने लगी। उसने अपना रेशमी उत्तरीय चार दिया। सुप्त-सौन्दर्य-सर्प फुफकार मारने लगा। महाशतक शान्त है और कहता है—रेवती! तेरे में सौन्दर्य के साथ साथ शील होता तो?

"धत् तेरा शील!"

रेवती का उत्तर सुनकर महाशतक केवल हंसता रहता।

"रेवती! तू सच कहती है। फूल एकत्र करने काम मय कांटे अब तो कांटे ही बाकी रहे हैं।"

रेवती के सामने नगण्य सा महाशतक नगर में अति प्रतिष्ठित हो गया। उसका न्याय, व्यापार और लेनदेन अपूर्व था। कोपाग्नि तो मानो छिन्न हो चुकी थी। हृदय इतना विशाल हो गया था कि सभी प्रकार के आसंदिग्ध उसमें सरलता से समा जाते थे। प्रेम का तो वह अवतार ही था। जिसने पहले संसार के सुख दुःख समझे न थे वह अब उनका अनुभव करता था।

महाशतक सौख्यसिन्धु बन गया था। हजारों व्यक्ति उसका ज्ञान पीकर तृप्त होते थे।

अब तो मानापमान और सुख-दुःख भी उससे अलग हो गए। रेवती भरी सभा के बीच आकर इच्छानुसार कुछ भी कह जाती तो भी उसको बुरा न लगता। धीरे से सब को सम्बोधित करके कहता—

"भाई! मानव हृदय की वेदना किसी न किसी रूप में प्रकट होती ही है। प्रिय और अप्रिय तो हमारा भ्रम है। वास्तव में कोई प्रिय और अप्रिय नहीं। हमारी बुद्धि ही उस इस रूप में देखती है।"

वाह री रेवती! तुम महाशतक ... पकड़ा? अब उसमें के बातें

नहीं। अब वह नम्र हो चला है। कभी खुले पर तो कभी खुले सिर! बड़प्पन का मोह तो मानों मर चुका है।

अब वह अधिकतर पौषधशाला में रहता है, चिन्तन करता है जीवनसाधना के मार्ग में लीन रहता है।

(२)

राजगृही में वध निषेध की घोषणा हो चुकी थी। राज्य की आज्ञा के अनुसार आज से पशुवध अपराध था। शांत महाशतक ने रेवती को इस बात की खबर दी और साथ ही साथ कहा—

'छोटे से पेट के लिए इतने बड़े अपराध वास्तव में गर्हित हैं।

"अर्थात साधारण गरीब की भांति रोटी और भात खाकर जीवित रहना? तुम्हारे वर्धमान ने यही सिखाया है?"

"हां रेवती! वे तो कहते हैं कि प्रकृति के राज्य में 'चींटी को कन और हाथी को मन' मिलने की व्यवस्था है। लक्ष्मी धनियों ने यह व्यवस्था तोड़ दी है। उन्होंने ज्यादा खाकर संसार में भुखमरी पैदा की है।"

"यह बात ठीक है। अब एक वर्ग ऐसा भी चाहिए जो स्वेच्छा से भूखा रहे। तुला बराबर हो जायगी। इससे गरीब का कम मिल जायगा और हाथी का भी मन मिल जायगा।'

'कैसा सुन्दर तर्क! रेवती, तूने कहा वह सच है। भगवान वर्धमान का यही मार्ग है। संसार को भोगने का रोग लगा है जब कि उन्होंने त्याग को धर्म कहा है। हमारे पाप का वे प्रायश्चित करते हैं किन्तु यह सब तू क्या समझे? परभव के भय से नहीं तो भी राजभय से तो तुझे समझना ही पड़ेगा।"

"राजाज्ञा का यह अर्थ नहीं कि तुम बाहर से भी कुछ न मंगा सको। मैं अपने मायके से हमेशा दास द्वारा मंगवा लूंगी। जब तक साधु न हो जाऊं तब तक मुझ से इस विलास और खानपान का त्याग नहीं हो सकता। मांस बिना मेरा स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है?'

महाशतक ने सोचा कि इस विलासिनी को मन में करने जितना बल मेरे पास नहीं है। बल प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता है। उस दिन उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र को सारा कामभार सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला

में रहने लगा। कुक्षिसंबल व्रत धारण किया। मनन और चिन्तन में लग गया। तन कृशता की ओर बढ़ने लगा।

बहुत समय तक रेवती के दर्शन न हुए। वह एकान्त भोग-विलास में समय बिताने लगी। आज वह अचानक अंदर घुस आई। उसके सुगन्धित केश खुले हुए थे। कपाल पर बाल अव्यवस्थित रूप से बिखरे हुए थे। उत्तरीय वस्त्र खिसक रहा था और कंचुकी भी शिथिल हो गई थी।

"यह ढोंग और कपट क्यों? क्या भूखा रहने से स्वर्ग मिलता है? तो फिर ये सब भिखारी मर कर देव होंगे? और भला, स्वर्ग किसने देखा है? स्वर्ग में जो कुछ है वह सब क्या यहाँ पर नहीं है?"

महाशतक निरुत्तर हो देखता रहा।

रेवती आगे बढ़ी—"तू स्वर्ग के लोभ में फँसा हुआ है, देव और देवियों के रूप पर लट्टू हो रहा है। तुझे देवांगनाओं के पयोधर अच्छे लगते हैं और घर की स्त्री के नहीं। मेरे से द्रोह कर स्वर्ग की स्त्रियों को जीतना चाहता है! धूर्त!"

रेवती के पीछे आये हुए मुण्ड ने रेवती की बात का समर्थन किया।

महाशतक शान्त जल के घट के समान शान्त रहा। यह अपमान उसके मानस-सागर की एक भी ऊर्मि को चंचल न कर सका।

"रसभरी में रस था तब तक तो रस चूसा। अब रस समाप्त हो गया इसलिए नई रसभरी की प्राप्ति के लिए तप करने लगा। स्वर्गसुन्दरी अथवा मोक्षसुन्दरी की प्राप्ति के लिए ही यह तेरा ढोंग हो तो यह सुन्दरी भी कम नहीं! महाशतक! मेरे यौवन में अब भी उतनी ही मोहिनी है, मेरे स्तनों में आज भी उतना ही आकर्षण है, मेरे ओष्ठ में इस समय भी उतनी ही लालिमा है, मेरे अंग की कोमलता की बराबरी करने वाली स्त्री स्वर्ग में भी नहीं मिल सकती।" रेवती की आँखों में गर्व और दृढ़ता थी।

"रेवती! तेरी यह पाशविक काम-वासना तेरी आत्मा का नाश करेगी।"

"आत्मा?" रेवती ने व्यंग्य से आत्मा शब्द को दाँतों में चबा डाला—"अरे मतवाले! जो दिखाई देता है उसे तो नहीं मानता और जो नहीं दीखता उसके पीछे दौड़ता है। वाह रे तेरा धर्म! वाह रे तेरा गुरु!"

रेवती हस पड़ी। सारा झुण्ड भी हंसने लगा।

'रेवती! जिसे म धिक्कारता हूँ, यह तू नहीं, तेरी, वृत्तियां ह।"

'वृत्तियां हैं? कैसी है यह वृत्ति! वाहरे तेरा गुरु! वाहर तेरा धम!" और रेवती फिर हँसने लगी। झुण्ड भी जोर जोर से हसने लगा।

"मेरे व्रत की हँसी! मेरे धम की हँसी!"

"भाइयो! इस भक्त के गुरु वर्धमान ह।" रेवती जोर जोर से बोलने लगी। पार्श्वस्थित समुदाय भी खिल्ली उड़ाने लगा।

शान्त और स्वस्थ महाशतक एक क्षण के लिए व्यग्र हो उठा। उसे अपने अपमान की किञ्चित् भी चिन्ता न थी किन्तु अपने प्रभु का अपमान! अपने प्रिय धर्म की अवहेलना! उसका मन उसके हाथ से निकल गया। उसने गंभीर स्वर से कहा—

"रेवती, सुनती जा! मेरा ज्ञान कहता ह कि सात दिन में तेरी मत्यु होगी।"

"मृत्यु!" रेवती ने अट्टहास से उसके वाक्य का निरस्कार किया। वह घर चली आई। घर आकर विरामासन में बठी। दासी को मधुरस लाने की आज्ञा दी। वहां उसने ये शब्द सुने—'रेवती सात दिनमें तरी मृत्यु ह।"

'मत्यु!" रेवती ने हसने का प्रयत्न किया किन्तु न हस सकी। मधु लेकर आनेवाली दासी से उसने पूछा—क्या कोई किसी की मृत्यु बतला सकता ह?

'हां महाशतक जसे ज्ञानी और धर्मी व्यक्ति के लिए किसी के जीवन अथवा मृत्यु की बात बतलाना सहज ह।"

रेवती को आज मधु में स्वाद न आया। भोजन का भी स्वाद करके छोड़ दिया। स्थान स्थान पर रेंस हो प्रलाप करती हुई फिरने लगी।

विलास की भावना नष्ट होने लगी। आसवसेवन मादकरस और मांसरस अनाथ हो गये। रेवती की निद्रा का पयान हुआ। मृत्यु के स्वप्न देखने लगी। भयङ्कर व्याधि ने पकड़ लिया। चिन्ता ही उसका सहारा था। सातवें दिन स्पर्शिता रेवती इस लोक से विदा हो गई।

(४)

बसन्त का समय है। राजगृही के गुणशील चैत्य में ज्ञातपुत्र महावीर पधारे हैं। वर्शन वन्दन के बाद प्रभु महावीर ने अपने पट्टशिष्य गौतम से कहा—

"श्रमणोपासक को ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए जो अप्रिय अथवा अनिष्ट करने वाला हो।'

'जी!" गौतम ने सिर हिलाया।

'मनुष्य इष्ट अथवा अनिष्ट नहीं कर सकता। उसे किसी भी कर्म में प्रेरित करने वाली उसकी वृत्तियाँ है—कर्म के संस्कार हैं, इसलिए पाप पर द्वेष हो सकता है, पापी पर नहीं।"

"तहत्तवचन।" गौतम को अनुभव था कि अब ज्ञातपुत्र इस ढंग से बातें तब केवल श्रवणेन्द्रिय से ही काम चल जाता है।

"राजगृही में रहने वाला मेरा परम श्रावक महाशतक ज्ञानी होकर भी त्रुटि कर बैठा। उसने अपना मानापमान तो सह लिया किन्तु धर्म और गुरु के मानापमान के लिए धैर्य खो बैठा। जिस रेवती ने उसे बलौटा पर काम कर रवण सिद्ध किया उसी की उसने हत्या की।"'

हत्या ?"

'हाँ, सत्य वचन की तलवार से। वस्तु पवित्र अथवा अपवित्र नहीं होता। भावना ही उसे पवित्र अथवा अपवित्र बनाती है। उसने हृदय दौर्बल्य दिखाया। सत्य कैसा भी हो किन्तु अनिष्टकारी नहीं होना चाहिए। तुम वहाँ जाओ और प्रायश्चित्त से उसे शुद्ध करो।'

ज्ञातपुत्र के महान् गौरवशाली गौतम महाशतक के पास गये। महाशतक ने विधि से वन्दना की तथा भगवान् की कुशलता पूछी। गौतम ने प्रायश्चित्त की आज्ञा सुनाई।

महाशतक ने अपनी कुभार्या के वध का प्रायश्चित्त किया और मन शुद्धि की।

जैन लोक कथा साहित्य : एक अध्ययन

श्री महेन्द्र 'राजा'

जैन कथाएँ भारतीय लोक साहित्य की विशुद्ध प्रतीक हैं। यद्यपि उनमें धर्म भावना प्रधान है, उनमें एक न एक भाव ऐसा अवश्य छिपा हुआ है जो अप्रत्यक्ष रूप में धार्मिक परम्पराओं पर आधारित है फिर भी लोक भावना से ये शून्य नहीं हैं।

जिन या अर्हतों के अनुयायी जैनों का धर्म भी उसी काल में तथा भारतवर्ष के उसी भाग में जन्मा, पनपा और विकास को प्राप्त हुआ जहाँ बौद्ध धर्म, पर उसका प्रचार एवं प्रसार उतने विस्तृत दायरे में न हो सका जितने में बौद्ध धर्म का। वैसे देखा जाय तो आज भी जैन धर्म के अनुयायी लाखों की संख्या में हैं। पिछली जनगणना (१९५१) के अनुसार भारत में जैनियों की संख्या करीब २४ लाख है और ये भारत के सबसे अधिक धनी व प्रभावशाली व्यक्तियों में से हैं। पर यूरोप में भी अब जैन धर्म का काफी प्रचार हो चुका है तथा वहाँ के लोग इस ओर आकृष्ट हुए हैं। और आजकल तो जैन धर्म भी बौद्ध धर्म के समान विश्व धर्म होने का दावा करने लगा है। जैन धर्म की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका द्वार सभी लोगों के लिए समान रूप से खुला हुआ है जैसा कि श्री हार्मन यूकर ने ठीक ही कहा है कि बिल्कुल अपरिचित विदेशियों के साथ ही साथ म्लेच्छों का भी यह अपनी भुजाएँ फैलाकर सहर्ष आवाहन करता है। इतना उदार नीति पर आधारित होने पर भी यह बौद्ध धर्म के समान विकास को नहीं प्राप्त हो सका। शायद इसीलिए कि इसके सिद्धांत और आदर्श जन सामान्य के लिए अति कठोर हैं।

वैसे तो जैन लोग २४ तीर्थङ्करों को मानते हैं पर प्रमुख रूप से अंतिम दो तीर्थङ्कर २३ वें पार्श्वनाथ व २४ वें वर्द्धमान महावीर ही जन सामान्य के लिए अधिक परिचित हैं। यद्यपि यह निर्विवाद है कि वर्द्धमान संस्थापक न होकर सुधारक थे और उन्होंने पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों को ही परिष्कृत एवं

परिमार्जित किया। महावीर की निर्वाण तिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कोई ईसा पूर्व ५४५, कोई ५२७ और कोई ४६७ मानते हैं। वर्द्धमान महावीर की मृत्यु के बाद ई० पू० दूसरी शताब्दी में जैन सम्प्रदाय में धर्म भेद की दृष्टि से शाखाएँ बनना शुरू हुआ। और ई० पू० पहली शताब्दी के प्रारम्भ में यह श्वेताम्बर व दिगम्बर इन दो शाखाओं में विभक्त हो गया। श्वेताम्बर लोग अपने देवताओं या प्रतिमूर्तियों को श्वेत वस्त्र पहिनाने लगे और दिगम्बर लोग नग्न रखने लगे। ये दोनों ही मत व मान्यताएं आज भी अक्षुण्ण रूप में जीवित हैं।

जैन धर्म का प्रमुख उद्देश्य भी अधिकांश भारतीय धर्मों के समान ही कर्मबंध मुक्तियों अर्थात जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा दिलाना है। जहाँ तक हमें स्मरण है ऋग्वेद में पुनर्जन्म की कोई चर्चा नहीं है, पर जब वैदिक धर्म का प्रभाव लोकदृष्टि से उठ गया, पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने विद्वानों को विचार करने के लिए बाध्य किया और शायद तभी से पुनर्जन्म के प्रति लोगों की दृढ़ आस्था हुई। जैन कथाकोष में संगृहीत कथाओं की मूल प्रेरणा भी यही पुनर्जन्म के प्रति आस्था है। इस जन्म में किए हुए कर्मों का फल, अगले जन्म में मिलता है, मनुष्य योनि ही वह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है जब प्राणी अपने उत्तमोत्तम कार्यों द्वारा मुक्तिपद की राह पा सकता है, आदि ये सब भावनाएँ ही जैन लोक कथा साहित्य का मूल आधार हैं। कर्मों के बन्धन से छूट जाना अर्थात् मुक्ति पाना ही जैनधर्म की प्रेरणा है और यही प्रेरणा जैन कथाओं का प्राण कही जा सकती है। जैन कथा साहित्य का मर्म अच्छी तरह समझने के लिए पहले हमें जैन धर्म के सिद्धान्तों का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। मुक्ति पद की प्राप्ति के लिए बौद्ध धर्म के समान ही जैन धर्म में भी तीन रत्न बतलाए गए हैं। ये हैं—१ सम्यग्दर्शन, २ सम्यग्ज्ञान, ३ सम्यक्चारित्र। इन्हें मुक्तिमार्ग की तीन सीढ़ियाँ कहा जाता है। यहाँ इन तीनों का सूक्ष्म विश्लेषण विषयविरोध होगा। अतः इस विषय को आगे बढ़ाने की अपेक्षा हम इसे यहीं छोड़ेंगे। जैन लोग पुष्प आदि अष्ट द्रव्यों से अपने देवताओं का पूजन-अर्चन करते हैं। उनकी प्रशंसा व सम्मान सूचक प्रार्थनाएँ तथा भक्तिभाव से पूरित गीत गाते हैं और उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रति वर्ष हजारों मील की तीर्थयात्राएँ करते हैं। इन्हीं सब बातों के वर्णन से जैन साहित्य भरपूर है। साधु-साध्वियों के आचार विचार आदि का परिचय जैन साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता

है। सबसे पहले जन साहित्य प्राकृत में लिखा गया था पर शीघ्र ही इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि वह संस्कृत में लिखा जाना चाहिए। तत्कालीन परिस्थितियों का यदि अध्ययन किया जाए तो यह एक स्वाभाविक आवश्यकता ही कहनी चाहिए। पर जन लोग केवल अपने सिद्धान्त का लेखकर ही सन्तुष्ट न हो सके। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में ब्राह्मणों से प्रतिद्वन्द्विता की। व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने प्रगति की और कदम बढाए। इन सब प्रवृत्तियों के मूल में उनका केवल एक ही ध्येय था। जन सामान्य को जन धर्म की ओर आकृष्ट करना व उनकी आस्था दृढ़ करना। और अपने उद्देश्य में व सफल भी हुए। उनकी उस समय की कृतियाँ यूरोपीय विद्वान के लिए आज भी बड़े महत्व की है।[1]

जन कथा साहित्य में तपस्विनों भक्तिनों तथा साध्वियों को बहुत ही कम स्थान मिला है और ऐसे प्रसंग भी शायद ही मिलें जहाँ उन्हें आदर या सम्मान का स्थान दिया गया हो। साध्वियों का केवल श्वेताम्बर साहित्य में ही स्थान प्राप्त है, दिगम्बर साहित्य से उनका कोई वास्ता नहीं। दिगम्बर शास्त्र के अनुसार तो स्त्रियाँ मुक्ति की अधिकारिणी ही नहीं। वे 'मोक्ष महल' में कदम भी नहीं रख सकतीं पर इस विषय में उनमें व श्वेताम्बरों में गहरा मतभेद है।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान श्री सी० एच० टानें ने अपने ग्रंथ 'ट्रेजरी आफ स्टोरीज' की भूमिका में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जनों के 'कथाकोष' में संगृहीत कथाओं व यूरोपीय कथाओं में अत्यन्त निकट का साम्य है। उनके विचार से यह अधिक सम्भव है कि जिन यूरोपीय कथाओं में यह साम्य मिलता है उनमें से अधिकांश भारतीय कथा साहित्य। (विशेषतः जन कथा साहित्य) के आश्रित हों। प्रोफेसर मक्समूलर, बन्फे, व रहीस डेविड्स ने अपने ग्रंथों में इस बात के भारी प्रमाण दिए है कि भारतीय बौद्ध कहानियाँ अरब कर्तों के माध्यम से पश्चिया से यूरोप गई। निःसन्देह इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बहुत सी कहानियाँ मध्ययुगीन भारत से यूरोप में गई। यद्यपि इस बात में सन्देह है कि वे भारत में जन्मी, पनपी या और कहीं। श्री एग्लिन्ग, जिन्होंने इस विषय पर गहरा अध्ययन किया

[1] Buhler's Votrag, PP 17 and 18

है, का मत है कि यदि आवश्यकतानुरूप सीमित कर लिया जाय तो यह उधार लेने की प्रवृत्ति बुरी नहीं कही जा सकती। ये कहानियाँ निश्चित रूप से मध्ययुगीन भारत से बाहर गई और मध्यकालीन यूरोप व एशिया में अधिकता से पहुँची। लोककथाओं के माध्यम से कथाओं के आवागमन के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। अधिकांशतः एक दूसरे के तत्वों में, घटनाओं में आपस में अदला बदली हुई। यह निश्चित है कि पाश्चात्य साहित्य पर लोककथाओं का अधिक प्रभाव पड़ा है जिनने कि भारतीय साहित्य में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था।[1] यह भी सम्भव प्रतीत होता है कि भारतीयों ने कुछ लोककथाएँ यूनानियों से उधार लीं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भारतीयों ने काफी समय तक मुद्राशास्त्र, ज्योतिष और शायद कुछ सीमा तक वास्तु और शिल्पकला तथा नाट्यकला की शिक्षा यूनानियों से ग्रहण की। 'कथा सरित्सागर' के अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणियों में भी सी० एच० टाने ने भारतीय व यूनानी उपन्यासों (कथा वृत्तान्तों) के सादृश्य पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

यहाँ एक प्रश्न यह उठना स्वाभाविक ही है कि जब कहानियाँ इतने दूर २ के प्रदेशों में कैसे पहुँची जब कि जैन धर्म के विस्तार के विषय में हम देखते हैं कि वह भारत तक ही सीमित रहा। इसके उत्तर में हम तो अपनी ओर से यही कहेंगे (और यह सच है) कि ये कहानियाँ जैनों द्वारा नहीं बल्कि बौद्धों द्वारा सुदूर प्रदेशों में ले जाई गई। क्योंकि जैन धार बौद्ध दोनों ने ही धार्मिक ज्ञानोन्नति एवं प्रचार के उद्देश्य से पूर्वीय भारत की सारी कथाओं का समुचित उपयोग किया। एक उदाहरण से हमारा यह कथन स्पष्ट हो जाएगा व इसे बल मिलेगा।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान प्रोफेसर याकोबी ने अपनी 'परिशिष्ट पर्व'[2] की भूमिका में एक जैन कथा की रानी से संबंधित निम्न अंश उद्धृत किया है जो दो प्रेमियों की प्राप्ति के लोभ में एक को भी न पा सकी—

रानी और उसका प्रेमी, जो कि एक डाकू था, राजा की कुछ निधि और गहने लेकर एक नदी के किनारे पहुँचे जिसमें बाढ़ आई हुई थी। डाकू ने रानी से कहा कि पहले तुम्हारे वस्त्राभूषणों को उस पार पहुँचा देता

[1] Myth, Ritual and Religion', Vol II, P 313

[2] एक सुप्रसिद्ध जैन ग्रंथ

ठीक होगा, पश्चात् तुम्हें ले चलूंगा। लेकिन जब वह रानी के वस्त्राभूषणों को लेकर उस पार पहुँच गया तो उसने ऐसी धोखेबाज व दुःशील स्त्री से छुटकारा पाना उचित समझा और उसे उसी किनारे पर एक नवजात शिशु के समान नंगी ही छोड़कर चल दिया। ऐसी स्थिति में उसे एक व्यन्तर देव ने देखा, जो पूर्वजन्म में एक महावत था तथा उसके पूर्व प्रेमियों में से एक था, और उसे बचाने का निश्चय किया। अतः वह अपने मुँह में मांस का टुकड़ा दबाए हुए एक सियार के रूप में आया। पर एक मछली को देखकर जो कि पानी से बाहर उछलकर आ गई थी, उसने मांस का टुकड़ा छोड़ दिया और मछली पर झपटा। मछली जैसे तैसे प्रयत्न करके सियार की पहुँच में आने से पहिले ही पानी में पहुँच गई और इसी समय आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी ने नीचे आकर वह मांस का टुकड़ा अपनी चोंच में दबा लिया और उड़ गया। रानी ऐसा देखकर सियार की मूर्खता पर हंसी जिसने मछली को पाने की आशा में मछली के साथ ही साथ हाथ में आए हुए मांस के टुकड़े को भी खो दिया। उसी समय सियार ने अपने असली रूप में आकर कहा कि उसने (रानी ने) अपने पहले और दूसरे दोनों ही प्रेमियों के साथ ही साथ वस्त्राभूषण भी खो दिए। उसने उसे अपने पापों का प्रायश्चित करने और 'जिन' की शरण में जाने का उपदेश दिया। रानी ने उसकी बात मान ली और एक तपस्विनी बन गई।'

अब आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यही कहानी चीन में एक लोक कथा के रूप में प्रचलित है। श्री स्टेनिसलास जूलियन ने 'अवदान' के चीनी से अंग्रेजी अनुवाद में यह कहानी दी है। इस कहानी का शीर्षक है—"दी वीमन एण्ड दी फाक्स"। यही लोक कथा फ्रांस में भी कुछ परिवर्तित रूप में प्रचलित है, जो निम्न प्रकार है—

"एक समय एक बड़ी ही धनवान औरत थी। उसके पास खूब सोना और चाँदी था। वह एक पुरुष से प्रेम करती थी। वह अपने प्रेमी के साथ भाग निकलने के लिए अपने पति को छोड़कर सोने व चाँदी के बहुमूल्य आभूषणादि लेकर चली। वे दोनों चलते चलते एक नदी के किनारे पहुँचे। प्रेमी ने स्त्री से कहा—तुम पहले मुझे सभी बहुमूल्य जेवरात आदि दे दो ताकि मैं पहले उन्हें उस पार रख आऊं। उन्हें उस पार रखकर मैं लौट आऊंगा और तब तुम्हें भी उस पार ले चलूंगा। वह औरत इसी किनारे पर रही और उसने अपने सभी वस्त्राभूषण अपने प्रेमी को दे दिए पर फिर उसका प्रेमी कभा

काव्य, चम्पू आदि बड़ी कुशलता से लिखने में और अपने ग्रंथों में अनुशासक नियमों का भी पूर्णता से पालन करते थे। उनके लिखित ग्रंथ आज भी काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। आलोचना शास्त्र पर भी उनकी कई महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

हिन्दू शासकों के साथ ही साथ मुस्लिम शासकों के समय में भी जैन साधुओं का दरबारों में काफी मान रहा और उनकी कला की प्रशंसा होती रही। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि जहाँ जैनेतर कवि विद्वान आदि राजपद के फेर में सामान्य जनता को भूल गए जैन साधु कवि नहीं भूले। विशेषतः जनपद के साथ उनका संबंध अटूट रहा। जहाँ ब्राह्मण वर्ग ने अपने ग्रंथ विशेषतः राजदरबारों व राजकुमारों, दरबारियों आदि के लिए लिखे, जैन लेखकों ने सामान्य वर्ग की साहित्यक आवश्यकताओं को पूरा किया। उनकी साहित्यक रुचि जागृत थी। उन्होंने केवल सरल संस्कृत में ही ग्रंथों का भंडार नहीं भरा वरन प्राकृत अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, गुजराती, कन्नड़ और राजस्थानी आदि में भी ग्रंथ लिखे। वे साहित्य के एक बड़े ही विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र के सृष्टा थे।

जैन कथा साहित्य मात्रा में बहुत ही विशाल है। उसमें रोमांस वृतान्त, जीव जन्तु लोक परम्परा प्रचलित, मनोरंजक, धर्मोपदेशक आदि सभी प्रकार की कथाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती है। जन साधारण में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए जैन साधु कथाओं को सबसे सुलभ व प्रभावशाली साधन मानते थे। और उन्होंने इसी दृष्टि से उपरोक्त सभी भाषाओं में गद्य पद्य दोनों में ही कहानी-कला को चरम विकास की सीमा तक पहुँचाया। उनकी कथाएँ दैनिक जीवन की सरल भाषा में होती थी। कोई कोई कथाएँ तो केवल एक ही साधारण कथा हुआ करती थी पर अधिकांश कथाओं में बहुत सी कथाएँ इस ढंग से मिली रहती थी कि कथा का क्रम नहीं टूटने पाता था और काफी लम्बे समय तक कथा चलती रहती थी (जैसे पंचतंत्र)।

जैन कथा कहने का ढंग अन्यों की अपेक्षा कुछ विशेषता युक्त है। कथा के प्रारम्भ में जैन साधु कोई प्रसिद्ध धर्म वाक्य का उद्घोष करते हैं और फिर बाद में कथा कहना शुरू करते हैं। कथा की नायिकाएँ या श्रोताओं पर वे जरा भी ध्यान नहीं देते। उनकी कथाएँ बहुत सी रोमांटिक घटनाओं (अधिकांश घटनाएँ एक दूसरे से गुंथी रहती हैं) से युक्त रहती हैं।

कहानी के अन्त में वे पाठकों का परिचय एक केवली त्रिकालदर्शी जैन साधु से कराते है जो कथा से सबद्ध नगर में आता है और कथा के पात्रों को सन्मार्ग पर आने का उपदेश देता है। केवली का उपदेश सुनकर कथा के पात्र पूछते हैं कि ससार में प्राणियों को दुःख क्यो सहना पडते है, दुखों से छुटकारा पाने का उपाय क्या है। इस प्रश्न के उत्तर में केवली जैनधर्म के प्रमुख तत्व कर्म का वर्णन करने लग जाता है कि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों के फल रूप में ही उसे सुख या दुख की प्राप्ति होती है। अपने इस कथन का संबंध वह कहानी के पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं से स्पष्ट करता है।

इन धर्मोपदेशों का साहित्यिक रूप बौद्ध जातकों से सादृश्य रखता है पर जातकों की अपेक्षा वह कई दृष्टियों से श्रेष्ठ है। जातक का प्रारम्भ एक कथा से होता है जो बिलकुल ही स्वत्वहीन होती है। किसी भिक्षु के साथ कोई घटना घटती है। उसी समय बुद्ध आते है। अन्य भिक्षु उस पहले भिक्षु के साथ घटी घटनाओं के संबंध में उनसे प्रश्न करते है। और बुद्ध उत्तर में उस साधु के पूर्व जन्म की कथा कहते है। पून जन्म की कथा ही जातकों की प्रधान कथा होती है जब कि जैन धर्मोपदेशों—जैन कथाओं में उपसंहार के रूप में उसका अस्तित्व रहता है। बोधिसत्त्व अथवा भविष्य में होने वाले बुद्ध स्वय उस कथा के एक पात्र होते है और उस उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाते भी है और इस प्रकार पूरी कहानी एक शिक्षाप्रद, उपदेशक कथा का रूप ले लेती है। जहाँ तक जातकों के मनोरंजक तत्वों का प्रश्न है, वे बौद्धों के अपने मौलिक नहीं है वे तो उन्होंने भारत जैसे विस्तृत प्रदेश में फैले लोक कथाओं के विशाल भण्डार से लिए है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान श्री ओल्डास हर्टल का यह कथन ठीक ही है कि इन प्रसिद्ध कथाओं में से अधिकांश प्रवीणता, मनोरंजन और क्रीडा कौतुक से भरपूर है पर वे धर्मोपदेशक नहीं हैं। जो जातक उपदेशपरक एव धर्मोपदेशक है भी तथा जिनके पात्र बोधिसत्त्व के पद के अधिकारी है, वे लोक प्रचलित कथानकों के तोड़-मोड़ कर अपने उद्देश्यानुकूल बनाए गए, उनके बदले हुए रूपान्तर मात्र है। और ऐसी जातक कथाएं मौलिकता से हीन नीरस हो गई हैं, उनकी सारी आकर्षण शक्ति उनका प्रभाव, उनकी कला कुशलता विलुप्त हो गई है। बौद्धों ने अपने सिद्धान्तों का समावेश, बोधिसत्त्व का उदाहरण देकर कि किस प्रकार प्रत्येक प्राणी को बुद्ध के सिद्धान्तों में विश्वास कर उन्हीं के अनुसार कर्ममार्ग

के रूप में बौद्ध कथा ग्रन्थों में आई हुई कथाओं की अपेक्षा जैन कथाएं अधिक विश्वस्त एवं यथार्थ हैं।[1]

पर इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं लेना चाहिए कि जैन साधुओं ने पुरानी लोक प्रचलित, परम्परा से चली आती हुई कथाओं को ही नया रूप दिया। उन्होंने मौलिक कथाओं की भी काफी विशाल मात्रा में सृष्टि की। उन्होंने नई मौलिक कथाएँ और औपन्यासिक वृत्तान्त धर्मोपदेश एवं सिद्धान्त प्रचार की दृष्टि से लिखे। उनकी पाठशालाओं में साहित्यिक कथाएँ कहने की शिक्षा दी जाती थी। चारुचन्द्र के 'उत्तमकुमारचरित' के ५७२ वें श्लोक से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है—

श्री मतिसागरशिष्येण चारुचन्द्रेण गुम्फिता ।
चारित्रसारगणिना शोधितेयं कथा मुदा ॥
बाल्यत्वेऽपि कथा चेयमभ्यासाय कृता मया ।
बालावस्थाकृतं सर्वं महतां प्रीतये भवेत् ॥

बौद्ध और जैन कथा साहित्य से भी पुराना साहित्य ब्राह्मणों का है।

प्राचीन भारत का प्रायः सारा वृत्तान्त साहित्य उपदेशपरक है। ब्राह्मणों ने अपनी धर्म एवं उपदेशपरक कथाओं का उपयोग तीन शास्त्रों (धर्म-अर्थ कामशास्त्र) में किया। वैदिक युग के बाद की समस्त कथाओं में धार्मिक या दार्शनिक उपदेश का निर्देश मिलता है। वे ब्राह्मणों व उपनिषदों की गुम्फित पौराणिक कथाएं हैं। सभी प्रकार की धार्मिक, पौराणिक ऐतिहासिक, दार्शनिक और राजनीतिक कथाओं का समावेश महाकाव्यों और पुराणों में हो गया है। आजकल भी इस विशाल साहित्य के 'अंश' घरों में या धर्मसभाओं में लोगों (विशेषतः धर्मपरायण) द्वारा पढ़े जाते हैं। चूंकि ब्राह्मण धर्मोपदेशक नहीं थे, इस ब्राह्मणों को धर्मकथाओं को विकसित होने का कोई अवसर नहीं मिला। जब भारत की अपनी राजनीतिक सत्ता समाप्त हो गई तो 'अर्थ कथाओं' का विकास भी रुक गया। यद्यपि महाभारत व अन्य ग्रंथों में उनके सुंदर उदाहरण सुरक्षित हैं। पर राजनीतिक कथा वृत्तान्त साहित्य को समझने के लिए हम 'तंत्राख्यायिक' और 'दशकुमारचरित' को सबसे अधिक प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में ले सकते हैं। 'तंत्राख्यायिक' जिसका

[1] 'On the Literature of the Shvetambaras of Gujrat' by Johannes Hertell P-9

अनुवाद पहलवी भाषा में ५७० ई० में किया गया था, बाद में कई अनेक भाषाओं में अनुवादित हुआ और केवल पश्चिमी एशिया में ही उसका प्रसार नहीं हुआ वरन उत्तरी आफ्रीका व यूरोप में भी यह पहुँचा जहाँ यह सबसे अधिक प्रसिद्ध कथाग्रंथों में से एक माना गया। पर यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि भारत में अभी तक इस प्रसिद्ध ग्रंथ की कोई भी प्रति नहीं पाई जा सकी है। काश्मीर में कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ अवश्य पाई गई हैं पर उनमें से एक भी पूर्ण नहीं है। कुछ विद्वानों की तो इसी कारण यह भी धारणा हो गई है कि 'तंत्राख्यायिक' का भारत में कोई प्रसार नहीं था। प्रोफेसर कोनाव ने अपनी पुस्तक 'इण्डीएन' में यह सिद्ध किया है कि 'तंत्राख्यायिक' कश्मीर में लिखा गया था। इसके प्रमाण में उन्होंने कथामुख का भी उल्लेख किया है।[1] दण्डी का दशकुमारचरित तो कभी पूरा हो नहीं हुआ था।[2] बृहत्कथा ने, जो कभी एक प्रसिद्ध ग्रंथ था, भारत से अपना मूलरूप ही खो दिया। उसकी संस्कृत प्रतियाँ काश्मीर में सोमदेव और क्षेमेन्द्र व्यास दास तथा नेपाल में बुधस्वामिन को मिली हैं।

ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट ही है कि महाभारत व रामायण काल में कथा कहने के ढंग का विकास ब्राह्मणों द्वारा ही हुआ। सुबन्धु की वासवदत्ता व बाण की कादम्बरी कल्पित रोमांस है। उनका उपसंहार यद्यपि अधिक मनोरंजक नहीं है पर सबसे बड़ी विशेषता उनकी अत्यन्त ही उच्च कल्पना व कलात्मक शैली है।

बौद्धों ने केवल धर्मकथाओं को ही अधिक प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अपने सारे कथा साहित्य, जिसका अधिकांश भाग सामान्य भारतीय एवं ब्राह्मण कथाओं पर आधारित है, का प्रसार उन सब प्रदेशों में किया जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और जहाँ उसकी जड़ जम गई थी, जैसे—सीलोन, इण्डोचीन इण्डोनेशिया, तिब्बत तुर्किस्तान, चीन, कोरिया, जापान आदि। कुछ बौद्ध कथाएँ यूरोप भी गई। लेकिन भारत के मूल प्रदेश में जहाँ ८ वीं शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म करीब करीब बिल्कुल ही लुप्त हो गया, बौद्ध कथा साहित्य का प्रचार एवं प्रसार बहुत ही कम मात्रा में हो पाया।

---

[1] 'Indien'-Professor Konow (Leipzig u.) Berlin 1917, p 92

[2] Indische Erzahler Vol 1-3, Johanesse Hertel, Leipzig, Haessel 1922

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट हो ही है कि मध्यकाल से आज तक जैन और विशेषतः गुजरात के श्वेताम्बर जैन साधु ही प्रमुख कथाकार थे। उनके साहित्य में ऐसी२ विशेषताएँ अगाध मात्रा में मिलती हैं जो लोककथा साहित्य के अनुसंधान कार्य में तत्पर विद्यार्थी के सामने एक नया क्षेत्र उपस्थित करती है। जो विद्वान भारतीय लोककथा साहित्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कार्य कर रहे हैं उनके लिए जैन लोककथा साहित्य एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विषय है।

जैन कथा साहित्य से संबंधित कुछ समस्याएँ भी इस प्रसंग में उपस्थित होती हैं। जिनमें से एक दो पर संक्षेप में हम यहाँ विचार करेंगे।

पहली समस्या जो कहानियों के देशान्तर गमन से संबंध रखती है, साहित्यिक इतिहास व सभ्यता तथा साहित्य के इतिहास की सीमा में आ जाती है। उस पर विचार करना भारतीय दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही पर अन्य देशों की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है। दूसरी समस्या भाषागत है। इस पर विचार करना केवल संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं होगा वरन भारतीय साहित्य के इतिहास पर भी उससे समुचित प्रकाश पड़ेगा।

यहाँ हम कथाओं के देशान्तर गमन की समस्या को लेते हैं। जिन कथा ग्रंथों के विषय में यह सिद्ध किया जा सकता है कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत से यूरोप गई उनमें से कुछ ये हैं—बरलाम और जोसफ की कथा, कलीला और दिमना में समाविष्ट ग्रंथ (जैसे तंत्राख्यायिक, महाभारत के ३ पर्व तथा कुछ अन्य कथाएं जिनमें से एक मूल बौद्ध है), शुकसप्तति का जैन पाठान्तर, सिन्दिबाद का वृत्तान्त तथा जाफर के पुत्रों की [illegible] आदि। अन्तिम तीन ग्रन्थों के मूल भारतीय रूपों का अभी तक पता नहीं लग सका है पर हमारा विश्वास है कि कभी न कभी अवश्य ही गुजरात के श्वेताम्बरों के साहित्य में उनके मूल रूप की प्राप्ति होगी।[1]

अन्य भारतीय व यूरोपीय लोक कथाओं (जिनमें आपस में साम्य है) के विषय में अभी किसी प्रकार का अंतिम निर्णय नहीं दिया जा सकता पर कुछ कथाओं (जैसे 'सुलेमान का न्याय') के विषय में विद्वानों द्वारा यह

[1] एक प्रसिद्ध जैन ग्रंथ 'उपदेशकल्प' में सिन्दिबाद का वृत्तान्त मिल गया है।

सिद्ध किया जा चुका है कि सारी कथा जिन तत्वों, आधारों तथा वातावरण को लेकर लिखी गई है, वे पूर्णत भारतीय है। वे केवल भारत में ही मिल सकते है। पर ऐसी कथाएँ बहुत ही कम है। अन्य सब कथाओं में तारतम्य एव साम्य स्थापित करने तथा किसी एक निश्चित मत पर पहुँचने का केवल एक ही उपाय है। वह यह कि किसी यूरोपीय कथा के परस्पर विरोधी सभी तत्वों का किसी भारतीय कथा के सभी परस्पर विरोधी तत्वों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन के फल स्वरूप इस बात को सिद्ध किया जाय कि प्रत्यक परस्पर विरुद्ध तत्व (जो कि अपने मूल रूप में नहीं होगा) भारत से यूरोप गया अथवा यूरोप से भारत आया। पर इन अनुसधाना के किय जाने के पहिले यह आवश्यक है कि जन भण्डारों में अभी तक जो कथाओं और कथा ग्रंथों का विशाल अम्बार अप्रकाशित रूप में छिपा पड़ा है, प्रामाणिक एवं मूल शुद्ध रूप में सटिप्पण प्रकाशित किया जाय तथा उनके ऐसे प्रमाणिक अनुवाद कराए जाएँ जो लोक कथा साहित्य के उन विद्यार्थियो के लिए सविस्तर विश्लेषण कर सकें जो कि सभी भारतीय भाषाओं भारतीय आचार विचार, व्यवहार तथा रीति रिवाजो से परिचित नहीं है।

चूँकि कथाओं के देशान्तर गमन की समस्या अत्यन्त ही दुर्बोध एव गहन है, यह अत्यन्तावश्यक है कि जन कथा साहित्य का प्रकाशन यथासमय शीघ्र ही किया जाए। भारत केवल 'देने वाला' ही नहीं लेने वाला' भी रहा है। उदाहरणार्थ 'यूसुफ और जुलेखा' (कश्मीरी कवि श्रीवर द्वारा १५ वीं शती में संस्कृत में अनुवादित), 'अनवरी सुहेली' (कलीना और दिमना' की कथा पर आधारित एक परसियन ग्रन्थ, पश्चात तुरकी उर्दू, हिन्दी, बगला, तथा बाद में फ्रेंच अनुवाद से मलय और इसके बाद मलय से जापानी में अनुवादित), 'अरेबियन नाइटस', ईसप फेबिल्स' (अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवादित) तथा अन्य विदेशी ग्रंथों के नाम लिए जा सकते है जिनके भारतीय भाषाओं में १९ वीं तथा २० वीं शताब्दी में अनुवाद किए गए।

बहुत सी भारतीय कथाओं तथा कथा ग्रथो का पुनर्देशान्तर गमन भी हुआ और बाद में 'पूर्व देशान्तर गमन रूपों" के समान ही इन "पुनर्देशान्तर गमन रूपों" ने भी साहित्यिक रूप ग्रहण किया। मौखिक रूपान्तरों से भी हम इन्कार नहीं कर सकते। समय समय पर भारत पर विदेशियों के आक्रमण हुए; विजय प्राप्त होने पर अपने साथ आये अपने देश के लोगों के साथ वे

यहाँ जम गए और परिणामस्वरूप लोक कंठों का माध्यम से बहुत सी लोक कथाओं में देशानुकूल परिवर्तन हुआ मौलिक आदान प्रदान हुआ।

जैन कथाकार साधु व्याकरण के पण्डित थे। बूलर ने अपने 'हेमचन्द्र' में लिखा है कि शासकों के दरबारों में जैन कवि ब्राह्मण कवियों से सफलतापूर्वक होड़ लेते थे। ऐसा बिल्कुल ही असम्भव होता यदि जैन कवि व कथाकार ब्राह्मण कवियों के बराबर अथवा उनसे उच्च योग्यता वाले न होते। जैन साधु कवियों को राजदरबारों में स्थान मिल सका तथा वे शासकों पर जैनधर्म का प्रभाव स्थापित कर सके इसका प्रमुख कारण उनकी साहित्यिक शिक्षा दीक्षा योग्यता तथा काव्य की विविध शाखाओं का उनका गहन अध्ययन था। स्वयं बूलर ने 'हेमचन्द्र' में इसे काफी स्पष्ट किया है।

जहाँ तक हमें स्मरण है किसी भी देशी विदेशी विद्वान ने जैनों पर भाषा अथवा व्याकरणगत भूलों का दोष नहीं लगाया। जब कि बूलर ने किरात, कालिदास और दण्डी तक के ग्रंथों में उनकी व्याकरणगत त्रुटियों की ओर निर्देश किया है।[1] बूलर और वेबर ने जैनों के संस्कृत ज्ञान की परिपूर्णता की ओर जो निर्देश किया है उसका प्रमुख कारण यही है कि गुजरात में उस समय संस्कृत लोकभाषा थी। लिखने व बोलने दोनों में ही यह भाषा व्यवहृत होती थी। संस्कृत में लिखे गए जैनों के ग्रंथों के विशाल भण्डार उनके संस्कृत पर पूर्ण अधिकार की पुष्टि करते हैं। १००० वर्षों तक गुजरात में जैनों का बोलबाला रहा वे ही वहाँ के साहित्यिक व सांस्कृतिक प्रतिनिधि (उस समय के) थे और यही कारण है कि गुजराती संस्कृत का जितना ज्ञान हमें जैन साहित्य से उपलब्ध होता है, उतना अन्य से नहीं।

---

[1] Notes on Page 6 18 of the [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—बूलर

सिद्धसेन दिवाकर

(गतांक से आगे)

डॉ० इन्द्र

आचार्य के आसन पर बैठने के बाद सिद्धसेन ने प्राकृत आगमों को संस्कृत में बदलना चाहा। उन्होंने अपने विचार संघ के सामने रखे। इस पर संघ के मुखिया बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने कहा—आप सरीखे युग प्रधान आचार्य भी यदि प्राकृत से अरुचि करेंगे तो दूसरों का क्या हाल होगा? हमने परम्परा से सुना है कि चौदह पूर्व संस्कृत में थे और इस लिए साधारण बुद्धि वालों की समझ से बाहर थे। परिणाम स्वरूप वह धीरे धीरे लुप्त हो गए। अभी जो ग्यारह अंग उपलब्ध हैं उन्हें सुधर्मा स्वामी ने बालक, मूढ़ तथा अज्ञानी लोगों पर कृपा करके प्राकृत में रचा। इस भाषा का अनादर करना आप के लिए उचित नहीं है।" आगे वालों ने यहां तक कहा—"प्राकृत आगमों को संस्कृत में रूपान्तरित करने के विचार से आप दूषित हुए हैं। स्थविर मुनि आपको इस दोष का प्रायश्चित्त बताएंगे।" स्थविरों ने इसे भगवान की वाणी का अपमान बता कर पारांचिक प्रायश्चित्त का विधान किया। सिद्धसेन को कहा गया—"आप जैन साधु का वेश छिपाते हुए बारह वर्ष के लिए संघ से बाहर रह कर घोर तप कीजिए। इस प्रायश्चित्त के बिना इतने बड़े दोष की शुद्धि नहीं हो सकती। इस काल के बीच यदि आप कोई ऐसा कार्य करेंगे जिससे शासन की असाधारण प्रभावना हो तो अवधि पूर्ण होने से पहले भी आपकी शुद्धि हो जाएगी और आप अपने इसी पद पर पुनः प्रतिष्ठित हो जाएंगे।" सरल चित्त सिद्धसेन ने प्रायश्चित्त को नतमस्तक होकर स्वीकार किया और साधुवेश छिपाकर गच्छ छोड़ दिया। इसी स्थिति में फिरते फिरते सात वर्ष बीत गए।

घूमते घूमते वे एक बार उज्जयिनी पहुंचे। राजमन्दिर में जाकर उन्होंने द्वारपाल को निम्नलिखित श्लोक देकर राजा के पास भेजा —

दिदृक्षुर्भिक्षुरायातो वारितो द्वारि तिष्ठति।
हस्तन्यस्तचतु श्लोक किमागच्छतु गच्छतु ?

दिवाकर ने उत्तर दिया—राजन ! ये भगवान मेरे नमस्कार को सहन नहीं कर सकेंगे। इसीलिए म इन्हें नमस्कार नहीं करता। जो मेरे नमस्कार को सह सकता ह, उसे अवश्य नमस्कार करूँगा। यह सुनकर राजा ने कुतूहलवश कहा—

"आप इन्हें नमस्कार कीजिए। म देखता हूँ, क्या होता ह।"

"यदि कोई उत्पात हुआ तो आप जिम्मेवार ह।" इस प्रकार जोखम का उत्तरदायित्व राजा पर डालकर दिवाकर मन्दिर में पहुँचे और शिवलिंग के सामने बठकर नीचे लिखे श्लोकों द्वारा स्तुति करने लगे—

प्रकाशितं त्वयकेन यथा सम्यग जगत्त्रयम् ।
समस्तरपि नो नाथ ! परतीर्थाधिपस्तया ॥
विद्योतयति वा लोक यथकोऽपि निशाकर ।
समुद्गत समग्रोऽपि तथा किं तारकागण ॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषांचिदबोध इति मेऽद्भुतम् ।
भानोमरीचय कस्य नाम नाऽऽलोकहेतव ॥
नो वाऽद्भुतमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतस ।
स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वत करा ॥

हे प्रभो ! आपने अकेले जिस प्रकार ससार का यथार्थरूप समझाया ह परतीर्थिक सभी मिलकर भी उस प्रकार नहीं समझा सके। अकेला चन्द्रमा जिस प्रकार संसार को प्रकाशित करता है क्या समस्त तारक समूह मिलकर भी वसा कर सकता ह ? आप की वाणी से भी किसी किसी को ज्ञान नहीं होता, यह बात मुझे आश्चय सी प्रतीत होती ह। सूय की किरणों से किसको प्रकाश नहीं मिलता ? अथवा इसमें आश्चर्य की क्या बात ह ! स्वभाव से क्लिष्ट मन वाले उल्लू को सूय की स्वच्छ किरणें भी अन्धकार के समान प्रतीत होती ह।

इसके पश्चात न्यायावतार, वीरस्तुति तीस बत्तीसियाँ तथा कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना की। कल्याण मन्दिर का ग्यारहवाँ श्लोक बोलते ही धरणेन्द्र नाम के देव प्रकट हुए और शिवलिंग में से धुआँ निकलना प्रारम्भ हुआ। उससे दोपहर में भी रात सरीखा अंधेरा छा गया। लोग घबरा गए और इधर उधर भागने लगे। तदनन्तर शिवलिंग में से अग्नि ज्वाला निकली और अन्त में भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई। इस घटना से राजा

इसके बाद उस नगर से कोई वैतालिक—चारण भाट त्रिशाला गया। वहाँ सिद्धश्री नाम की दिवाकर की साध्वी बहिन के पास जाकर उसने नीचे लिखा आधा श्लोक कहा—

१. स्फुरन्ति वादिखद्योता साम्प्रतं दक्षिणापथे।

अर्थात—इन दिनों दक्षिण में वादिरूपी खद्योत चमक रहे हैं।

सिद्धश्री इसका अर्थ समझ गई और उसने श्लोक को पूरा कर दिया—

"नूनमस्तगतो वादी सिद्धसेनो दिवाकरः।"

यह निश्चित है कि वादी सिद्धसेन दिवाकर अस्त हो गया है।

इसके पश्चात साध्वी ने भी आराधना पूर्वक देहत्याग कर दिया।

चरित्र के अन्त में उसकी प्रामाणिकता बताते हुए कहा है—

पादलिप्तसूरि और वृद्धवादी के विद्याधर वंश का नियामक प्रमाण यहाँ बताया जा रहा है। विक्रमादित्य के १५० वर्ष पश्चात् आकुटि श्रावक ने रैवत पर्वत के शिखर पर भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर का उद्धार किया। उस समय बरसात से जीर्णशीर्ण मठ की प्रशस्ति में से उपरोक्त वृत्तान्त उद्धृत किया गया है। इस प्रकार प्राचीन कवियों द्वारा रचे गए शास्त्रों में से सुनकर वृद्धवादी और सिद्धसेन दोनों का चरित्र कहा गया है। उससे हृदय तथा बुद्धि की वृद्धि हो।

श्री चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य प्रभाचन्द्र हैं। राम पिता तथा लक्ष्मी माता के पुत्र प्रभाचन्द्र द्वारा रचे गए पूर्वार्यियों के चरित्र में वृद्धवादी और दिवाकर विषय पर आठवाँ आख्यान पूर्ण हुआ। इसका संशोधन प्रद्युम्नसूरि ने किया है।

प्रबन्धों में वर्णित घटनाओं की परस्पर तुलना

कथावली में सिद्धसेन विषयक जो गद्य प्रबन्ध है, उसमें केवल नीचे लिखी चार घटनाएँ दी गई हैं—

(१) प्रणाम के बदले में राजा को धर्मलाभ तथा राजा द्वारा कोटि द्रव्य का अर्पण।

(२) प्राकृत आगमों को संस्कृत में करने का दिवाकर का विचार और बदले में संघ द्वारा पाराञ्चिक प्रायश्चित्त का विधान।

इसके बाद उस नगर से कोई वैतालिक—चारण भाट विशाला गया। वहाँ सिद्धश्री नाम की दिवाकर की साध्वी बहिन के पास जाकर उसने नीचे लिखा आधा श्लोक कहा—

स्फुरन्ति वादिखद्योता साम्प्रतं दक्षिणापथे।

अर्थात—इन दिनों दक्षिण में वादिरूपी खद्योत चमक रहे हैं।

सिद्धश्री इसका अर्थ समझ गई और उसने श्लोक को पूरा कर दिया—

"नूनमस्तंगतो वादी सिद्धसेनो दिवाकरः।"

यह निश्चित है कि वादी सिद्धसेन दिवाकर अस्त हो गया है।

इसके पश्चात साध्वी ने भी आराधना पूर्वक देहत्याग कर दिया।

चरित्र के अन्त में उसकी प्रामाणिकता बताते हुए कहा है—

पादलिप्तसूरि और वृद्धवादी के विद्याधर वंश का नियामक प्रमाण यहाँ बताया जा रहा है। विक्रमादित्य के १५० वर्ष पश्चात् जाकुटि श्रावक ने रैवत पर्वत के शिखर पर भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर का उद्धार किया। उस समय बरसात से जीर्णशीर्ण मठ की प्रशस्ति में से उपरोक्त वृत्तान्त उद्धृत किया गया है। इस प्रकार प्राचीन कवियों द्वारा रचे गए शास्त्रों में से सुनकर वृद्धवादी और सिद्धसेन दोनों का चरित्र कहा गया है। उससे हर्ष तथा बुद्धि की वृद्धि हो।

श्री चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य प्रभाचन्द्र हैं। राम पिता तथा लक्ष्मी माता के पुत्र प्रभाचन्द्र द्वारा रचे गए पूर्वर्षियों के चरित्र में वृद्धवादी और दिवाकर विषय पर आठवाँ आख्यान पूर्ण हुआ। इसका संशोधन प्रद्युम्नसूरि ने किया है।

प्रबन्धों में वर्णित घटनाओं की परस्पर तुलना

कथावली में सिद्धसेन विषयक जो गद्य प्रबन्ध है उसमें केवल नीचे लिखी चार घटनाएँ दी गई हैं—

(१) प्रणाम के बदले में राजा को धर्मलाभ तथा राजा द्वारा कोटि द्रव्य का अर्पण।

(२) प्राकृत आगमों को संस्कृत में करने का दिवाकर का विचार और बदले में संघ द्वारा पारांचिक प्रायश्चित्त का विधान।

इसके पश्चात् ही समिति की जनरल मीटिंग का अधिवेशन हुआ। सभापति पूर्ववत प्रो० मस्तरामजी जैनी थे। नियमावली (Constitution) के उद्देश्यों में निम्न उद्देश्य भी शामिल किया गया—

(६) "समिति की नियमावली में निर्धारित सीमाओं के अधीन मनजिंग कमेटी की स्वीकृति के अनुसार उन शर्तों पर निश्चित रकम समिति के काम के लिए उधार लेना।"

इसकी सूचना रजिस्ट्रार आफ सोसायटीज, पंजाब को दे दी गई है, सभापति के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव करके सभा समाप्त हुई।

इसी प्रकार इस जनरल अधिवेशन ने समिति का जैन साहित्य निर्माण योजना के पहले आयोजन—जैन साहित्य के इतिहास—के लिए धन देकर इसको आगे बढ़ाना स्वीकार कर लिया है। जमीन के लिए रकम जमा कराई जा चुकी है।

शोक समाचार

मास के आरम्भ में होशियारपुर निवासी ला० रोशनलाल जी का हृदय की गति बन्द हो जाने से अचानक स्वर्गवास हो गया। आप श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति के सदस्य थे और समिति के आजीवन सदस्य ला० बसीलाल जी के विश्वासपात्र एवं प्रिय भतीजे थे। आप विद्यार्थियों को प्राय प्रोत्साहन देते रहते थे तथा स्थानीय जनता में प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। इस समय आप की आयु केवल ३९ वर्ष की थी। दो वर्ष पहले आपके भाई श्री बनारसी दास जी भी इसी प्रकार इसी आयु में चल बसे थे। उनकी इस असामयिक मृत्यु पर हमें हार्दिक शोक एवं दुःख है। समिति उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करती है।

—मन्त्री

साहित्य स्वीकार

१ वर्णी वाणी।
२ हमारा आहार और गांव।
३ तत्त्व समुच्चय।
४ धर्मशिक्षावली पहला भाग।
५ गार्यामि परीक्षा।

नोट—समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना चाहिए। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति स्वीकार की जायगी।

मलधारी हेमचन्द्र का गृहस्थाश्रम का नाम प्रद्युम्न था और वे राजमंत्री थे। उन्होंने अपनी चार स्त्रियों को छोड़कर आ० अभयदेव मलधारी के पास दीक्षा ली थी[1]। इससे ज्ञात होता है कि इसके कारण उनका अनेक राजाओं पर प्रभाव पड़ा हो। मुनिसुव्रतचरित्र की प्रशस्ति में[2] भी चन्द्रसूरि ने उक्त दोनों आचार्यों का जो प्रभावशाली जीवन लिखा है, वह इतना रोचक और वास्तविक है कि उसके विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं रहती। अतः यहाँ से उसे उद्धृत करता हूँ—

७१—७३ भगवान पार्श्वनाथ के २५० वर्ष बाद तीर्थङ्कर महावीर हुए जिनका तीर्थ आज भी प्रवर्तमान है। इन अंतिम तीर्थङ्कर के तीर्थ में श्री प्रश्नवाहन कुल में हर्षपुर गच्छ में शाकंभरी मंडल में श्री जयसिंह सूरि एक प्रसिद्ध आचार्य हुए। वे गुणों के भंडार थे और आचारपरायण थे।

७४—७६ उनके शिष्य गुणरत्न की खान के समान अभयदेवसूरि हुए। उन्होंने अपने उपशम गुण द्वारा सुरों का मन आकर्षित कर लिया। उनके गुणगान की शक्ति सुरगुरु में भी नहीं है। फिर मुझमें यह सामर्थ्य कहाँ? फिर भी उनके असाधारण गुणों की भक्ति के अधीन होकर उनके गुण महात्म्य का गान करूँगा।

७७—ऐसा प्रतीत होता है कि उनके उच्च गुणों का अनुसरण करने के निमित्त उनका शरीर परिमाण भी ऊँचा था।

७८—उनका रूप देखकर कामदेव भी पराजित हो गया इसीलिए वह कभी उनके समीप नहीं आया। अर्थात् आचार्य सुंदर भी थे और कामविजेता भी।

७९—८१ तीर्थङ्कर रूपी सूर्य के अस्त होने पर भारतवर्ष में लोग संयम मार्ग के विषय में प्रमादी हो गए। किन्तु उन्होंने तप नियमादि द्वारा धर्म दीप को प्रदीप्त किया। अर्थात् उन्होंने क्रियोद्धार किया।

८२—किसी भी अनुष्ठान में उनमें कषाय का अवकाश भी नहीं रहता था। स्वपक्ष तथा परपक्ष के विषय में उनका व्यवहार माध्यस्थ पूर्ण था अर्थात वे सर्वधर्मसहिष्णु थे।

---

[1] जैन सा० सं० इ० पृष्ठ २४५

[2] पाटन जैन भंडार ग्रन्थसूची दूसरी—पृ० ३१४ (गायकवाड़ सिरीज़)

गच्छ के अतिरिक्त अन्य साधुओं को नमस्कार नहीं करते थे, अथवा जो राजा के मंत्री थे उन्हें भी उन्होंने सामान्य मुनियों के प्रति आदरशील बनाया।

१००—१०१ गोपगिरि (ग्वालियर) के शिखर पर भगवान महावीर के मंदिर के द्वार को वहाँ के अधिकारियों ने बन्द करवा दिया था। इस काय के लिए ये आचाय स्वय राजा भुवनपाल के पास गए और उसे समझाकर मंदिर के द्वार खुलवा दिए।

१०२—उन्होंने गरणग के पुत्र शांतुमंत्री को कह कर भरुच में स्थित श्री समलिका विहार के ऊपर सुवर्ण कलश चढ़वाया।

१०३—जयसिंहदेव राजा को कहकर समस्त देश में पर्यूषणादि पर्व दिना में अमारी की घोषणा करवाई।

१०४—शाकम्भरी (अजमेर के निकट सांभर) के राजा पृथ्वीराज को पत्र लिखकर रणथंभोर के जिनमंदिर पर सुवर्ण कलश चढ़वाया।

१०५—६ उपवास या बेला करने पर भी दोनों समय की धर्मदेशना का काम उन्होंने कभी बन्द नहीं किया। वे श्रावकों को अष्टाह्निका जैसे पर्वों में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा करते थे।

१०७—११ जब उन्हें अपने ज्ञान के बल पर यह मालूम हुआ कि उनका अन्त अब निकट है तब शरीर के नीरोग रहने पर भी उन्होंने एक एक ग्रास का आहार क्रमशः कम करते हुए अन्त में भोजन का सर्वथा त्याग कर दिया। उनके इस उत्तम व्रत की बात ज्ञात कर परतीर्थिक लोग भी अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनका दर्शन करने आने लगे। गर्जर नरेन्द्र के नगर में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था, जो उस समय उनका दर्शन करने न आया हो। श्रीभद्रादि अनेक सूरि भी शोकसहित उनके पास गए थे।

११२—१६ भादों के महीने में १३ वाँ उपवास होने पर भी किसी की सहायता लिए बिना स्वयं पैदल चलकर राजमान्य तथा निकटस्थ सभी प्रदेशों में सम्मानित सौयम (धोयक) सेठ की अनिमकालीन दर्शन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए सोहिम (शोभित) श्रावक के घर से निकलकर वे उस सेठ के पास गए और दर्शन देकर उसकी मृत्यु का सुधार किया। इससे ज्ञात

८३—वे निरीह आचार्य मात्र एक चोलपट्टा तथा एक चादर का ही उपयोग करते थे अर्थात् वे अपरिग्रही जैसे ही थे।

८४—यशस्वी आचार्य वस्त्र एवं देह में मल धारण करते थे। ऐसा ज्ञात होता था कि आभ्यंतर मल भयभीत होकर बाहर आ गया था।

८५—आचार्य रसगृद्धि से भी रहित थे। घी के अतिरिक्त उन्होंने अन्य सभी विगयों का जीवन पर्यन्त त्याग किया था।

८६—वे अपने कर्मों की निर्जरा के लिए ग्रीष्म ऋतु में ठीक मध्याह्न के समय मिथ्यादृष्टि के घर भिक्षार्थ जाया करते थे।

८७—९० जब वे भिक्षा लेने के लिए निकलते, तब श्रावक अपने अपने घर में भिक्षा देने का लाभ लेने की अभिलाषा से तैयार रहते और [illegible] जैसे भी उन्हें अपने हाथ से भिक्षा देते। वे जिस गांव में विराजमान होते वहाँ के प्रायः भक्त जन उनका दर्शन किए बिना भोजन नहीं करते थे। श्री धीरदेव के पुत्र ठाकुर श्री अजय जैसे व्यक्ति तो आचार्य श्री के पांच कोस दूर तक रहने पर भी उनका दर्शन करके ही भोजन करते थे।

९१—९३ वे ऐसे वन्दनीय थे कि अणहिलपुर पाटन में यदि किसी एक व्यक्ति को जिनायतन में बुलाया जाता तो प्रायः सभी श्रावक बिना बुलाए ही एकत्रित हो जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने उनकी मूर्ति अमृत रस से निर्मित की थी। उसके दर्शन से जीवों का कषाय विष उतर जाता था।

९४—अन्य मतावलम्बी भी उनका दर्शन कर आनंदित होते और उन्हें अपने देवता के अवतार स्वरूप मानते।

९५—९९ उनके मुख से सदैव ऐसे वचन निकलते जिनको श्रवण कर श्रोताओं का मन शान्त होता। जिन मंदिर में [illegible] जाने का नियम लेकर रोग के कारण श्रावकों में जो झगड़ा[1] हुआ उसे उन्होंने शान्त किया। जहाँ जो लोग आगम में नहीं मानते थे, उन्हें उपदेश देकर आगमों के प्रति [illegible] करवाया। जो लोग राजकृपा के कारण अभिमानी हो गए थे वे लोग [illegible]

[1] [illegible] इस विषय में श्रावकों में झगड़ा हुआ होगा ऐसा प्रतीत होता है।

गच्छ के अतिरिक्त अन्य साधुओं को नमस्कार नहीं करते थे, अथवा जो राजा के मंत्री थे उन्हें भी उन्होंने सामान्य मुनियों के प्रति आदरशील बनाया।

१००—१०१ गोपगिरि (ग्वालियर) के शिखर पर भगवान महावीर के मंदिर के द्वार को वहाँ के अधिकारियों ने बन्द करवा दिया था। इस कार्य के लिए ये आचार्य स्वयं राजा भुवनपाल के पास गए और उसे समझाकर मंदिर के द्वार खुलवा दिए।

१०२—उन्होंने गरणग के पुत्र शांतुमंत्री को कह कर भरुच में स्थित श्री समलिका विहार के ऊपर सुवर्ण कलश चढ़वाया।

१०३—जयसिंहदेव राजा को कहकर समस्त देश में पर्युषणादि पर्व दिनों में अमारी की घोषणा करवाई।

१०४—शाकंभरी (अजमेर के निकट सांभर) के राजा पृथ्वीराज को पत्र लिखकर रणथंभोर के जिनमंदिर पर सुवर्ण कलश चढ़वाया।

१०५—६ उपवास या मेला करने पर भी दोनों समय की धर्मदेशना का काम उन्होंने कभी बन्द नहीं किया। वे श्रावकों को अष्टाह्निका जैसे पर्वों में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा करते थे।

१०७—११ जब उन्हें अपने ज्ञान के बल पर यह मालूम हुआ कि उनका अंत अब निकट है, तब शरीर के नीरोग रहने पर भी उन्होंने एक एक ग्रास का आहार क्रमशः कम करते हुए अन्त में भोजन का सर्वथा त्याग कर दिया। उनके इस उत्तम व्रत की बात जान कर परलौकिक लोग भी अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनका दर्शन करने आने लगे। गुर्जर नरेन्द्र के नगर में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था, जो उस समय उनका दर्शन करने न आया हो। शीलभद्रादि अनेक सूरि भी लोकसहित उनके पास गए थे।

११२—१६ भादों के महीने में १३ वाँ उपवास होने पर भी किसी की सहायता लिए बिना स्वयं पैदल चलकर राजमान्य तथा निकटस्थ सभी प्रदेशों में सम्मानित सीयम (श्रीयक) सेठ की अनिवार्यतीन दर्शन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए सोहिय (शोभित) श्रावक के घर से निकलकर वे उस सेठ के पास गए और दर्शन देकर उसकी मृत्यु का सुधार किया। इससे सात

होता है कि आचार्य वस्तुतः दाक्षिण्य के समुद्र और परोपकार रसिक थे। इस सेठ ने आचार्य श्री के उपदेश से धर्मव्रत में बीस हजार द्रम का व्यय किया।

११७—आचार्य की सल्लेखना का समाचार सुनकर प्रायः समस्त गुजरात के नगरों और गांवों के लोग उनके दर्शनार्थ आए थे।

११८—आचार्य ने ४७ दिन के समाधिपूर्वक अनशन के पश्चात् धर्मध्यान परायण रहते हुए शरीर का त्याग किया। चन्दन की पालकी में प्रतिष्ठित कर उनका शरीर बाहर लाया गया। उस समय घर की रक्षा के लिए एक एक आदमी को रखकर सभी लोग उनकी शवयात्रा में भक्ति तथा कौतुक से सम्मिलित हुए। अनेक प्रकार के बाजों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा था।

११९—स्वयं राजा जयसिंह भी अपने परिवार सहित पश्चिम अट्टालिका में आकर इस शवयात्रा का दृश्य देख रहे थे। इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर राजा के नौकर परस्पर बात करते थे कि यद्यपि मृत्यु अनिष्ट है तथापि ऐसी विभूति मिले तो वह भी इष्ट ही है।

१२०—३० शवयात्रा का विमान प्रातः सूर्योदय के समय निकला था और वह मध्याह्न में यथास्थान पहुंचा। वहां लोगों ने उसका सत्कार करने के लिए उस पर अनेक प्रकार के वस्त्रों का ढेर लगा दिया। चन्दन की पालकी और इन वस्त्रों सहित ही उनकी देह का दाहसंस्कार किया गया। लोगों ने चन्दन और कपूर की वर्षा भी की। आग बुझने पर लोगों ने राख ले ली और राख समाप्त होने पर उस स्थान की मिट्टी भी उठा ली। अतः उस जगह पर शरीर परिमाण गड्ढा पड़ गया। इस राख और मिट्टी से मस्तक शूल जैसे अनेक प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

१२१—मैंने भक्तिवश होकर भी इसमें लेशमात्र भी मिथ्याकथन नहीं किया। जो कुछ मैंने उनके जीवन में प्रत्यक्ष देखा, उसी के मात्र एक अंश का कथन किया है।

आचार्य मलधारी हेमचन्द्र ऐसे प्रभावशाली गुरु के शिष्य थे। उनके ही शिष्य श्री चन्द्रसूरि ने उनका जो परिचय दिया है वह उनके जीवन पर प्रकाश डालता है। अतः यहां उसे उद्धृत किया जाता है। यह परिचय उक्त प्रशस्ति में ही आचार्य अभयदेव के परिचय के अनन्तर वर्णित है।

१३२—अपने तेजस्वी स्वभाव से उत्तम पुरुषों को आनंद देने वाले कौस्तुभ मणि के समान श्री हेमचन्द्र सूरि आचार्य अभयदेव के बाद हुए।

१३३—वे अपने युग में प्रवचन के पारगामी और वचनशक्ति संपन्न थे भगवती जैसा शास्त्र तो अपने नाम के समान उनके जिह्वाग्र पर स्थित था।

१३४—उन्होंने मूलग्रंथ, विशेषावश्यक व्याकरण और प्रमाणशास्त्र आदि अन्य विषयों के ५०००० ग्रंथ पढ़े थे।

१३५—वे राजा और मंत्री जैसे लोगों में जिनशासन की प्रभावना करने में तत्पर तथा परम कारुणिक थे।

१३६—३७ जब वे मेघ के समान गंभीर ध्वनि से उपदेश देते, तब लोग जिन भवन के बाहर खड़े रह कर भी उनके उपदेश का रसपान करते। वे व्याख्यानलब्धि संपन्न थे अतः शास्त्र व्याख्यान के समय जड़बुद्धि मनुष्य भी सरलतया बोध प्राप्त कर लेते।

१३८—४१ सिद्ध व्याख्यानिक ने वैराग्य उत्पन्न करनेवाली उपमिति भवप्रपंचक कथा बनाई तो थी, किंतु उसका समझना अत्यंत कठिन था। अतः कितने ही समय से कोई व्यक्ति सभा में उसका व्याख्यान नहीं करता था। किंतु जब आचार्य ने उस कथा का व्याख्यान किया तो मुग्ध जन भी उस कथा को समझने लगे और लोग आचार्य से यह विनती करने लगे कि बारबार उस कथा को ही सुनाया जाए। इस प्रकार लगातार तीन वर्ष तक आचार्य ने उस कथा का खूब प्रचार किया। आचार्य ने इन ग्रंथों की रचना की।

१४३—४५ आचार्य ने सर्वप्रथम उपदेशमाला मूल तथा भवभावना मूल की रचना की। तत्पश्चात दोनों की क्रमशः १४ हजार और १३ हजार श्लोक प्रमाण वृत्ति लिखी। तदनन्तर अनुयोगद्वार, जीवसमास और शतक (बंधशतक) की क्रमशः छः, सात और चार हजार श्लोक प्रमाण वृत्ति लिखी। मूल आवश्यक वृत्ति (हरिभद्रकृत) का टिप्पण पाँच हजार श्लोक प्रमाण लिखा। इस टिप्पण की रचना उक्त वृत्ति के विषम स्थानों का बोध करवाने के लिए की गई थी। विशेषावश्यक सूत्र की विस्तृत वृत्ति २८००० श्लोक प्रमाण लिखी।

१४६—५४ उनके व्याख्यान की प्रसिद्धि सुनकर गुर्जरेन्द्र जयसिंह देव स्वयं अपने परिवार सहित जिन मंदिर में आकर धर्मकथा सुनते थे।

कई बार दर्शन की उत्कंठा से वे स्वयं उपाश्रय में आकर दर्शन करते और काफी समय तक बातचीत करते रहते। एक बार वे आचार्य आदि पूज्य आचार्य को अपने घर ले गए और सुगन्ध फल, फूल जल आदि द्रव्यों से उनकी आरती उतारकर तथा उनके चरणकमलों के निकट में सब द्रव्य रख कर उन्होंने पंचांग प्रणाम किया। और अपने लिए परोसी हुई थाली में से अपने ही हाथों से चार प्रकार के आहार का दान दिया। तदनन्तर हाथ जोड़ कर कहने लगे 'आज मैं कृतार्थ हुआ हूँ। आज मेरा घर आपके चरणस्पर्श से कल्याण स्थान बन गया है। मुझे ऐसे आनन्द का अनुभव हो रहा है कि मानों स्वयं भगवान महावीर मेरे घर पधारे हैं।'

१५५—६२ आचार्य ने जयसिंह राजा को कहकर जैन मंदिरों पर सुवर्ण कलश चढ़वाए तथा धंधुका और सच्चउर (सत्यपुर साचोर) में परतीर्थिक कृत पीड़ा का निवारण करवाकर जयसिंह की आज्ञा से उन स्थानों में तथा अन्यत्र रथयात्रा चालू करवाई। पुनश्च जैन मंदिर के मार्ग की जो बात बंद हो गई थी उसे चालू करवाया और जो आय राजमंदिर में जमा हो चुकी थी उसे भी राजा को समझाकर वापिस दिलाया। अधिक क्या कहा जाए? जहाँ जहाँ जैनधर्म का पराभव हुआ था, वहाँ सकडों उपाय कर पुनः जैनधर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की। जैन शासन की प्रभावना के लिए ऐसे ऐसे काम किए कि दूसरे जिनकी कल्पना भी न कर सकें। उन्होंने ऐसा प्रबंध करवाया कि कहीं भी कभी किसी साधु का अनादर न हो सके।

१६३—७७ अणहिलपुर नगर से तीर्थयात्रा के लिए निकले हुए संघ ने प्रार्थना कर आचार्य श्री को अपने साथ लिया। इस संघ में विविध प्रकार के ११०० तो वाहन थे और घोड़े आदि जानवरों की संख्या का पार ही न था। इस संघ ने वामणथली (वंथली) में पड़ाव किया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो राजा की सहली सेना ने पड़ाव किया हो। श्रावकों ने सोने के बहुमूल्य आभूषण पहन रखे थे। यह सब समृद्धि देखकर सोरठ के राजा खेंगार के मन में दुर्भावना उत्पन्न हुई। दूसरों ने भी उसे भड़काया कि सम्पूर्ण अणहिलवाड नगर की समृद्धि पुण्यप्रताप से तुम्हारे आँगन में आई है इसलिए इसपर अधिकार कर अपना भंडार भर लेना चाहिए। तुम्हें एक कराड़ का द्रव्य मिलेगा। लोभवश हो उस राजा ने संघ से सारा धन छीन लेने का निश्चय किया। किन्तु दूसरी ओर यह कार्य लोकमर्यादा के विरुद्ध था, अतः लज्जावश उसने अपना उक्त निर्णय को गुप्त रखा और दो

या न लूं, इस दुविधा में पड़कर किसी न किसी बहाने वह संघ को आगे नहीं बढ़ने देता था। कहने पर भी वह संघ के किसी व्यक्ति को मिलता ही नहीं था। इस अवधि में उसके किसी स्वजन की मृत्यु हो गई। इस निमित्त आचार्य हेमचंद्र शोकनिवारण के बहाने से राजा के पास गए और उसे समझा कर संघ को मुक्त करवाया। बाद में संघ ने क्रमशः गिरनार और शत्रुंजय में नेमिनाथ और ऋषभदेव के दर्शन किए। उस अवसर पर गिरनार तीर्थ में आधे लाख और शत्रुंजय में तीस हजार पारुत्थय (एक सिक्का) की आय हुई। आचार्य के उपदेश को ग्रहण कर भव्य जन भाविक श्रावक बन जाते और यथाशक्ति देशविरति अथवा सर्वविरति आचार को ग्रहण करते।

१७८—७९ अंत में उन्होंने अपने गुरुदेव अभयदेव के समान ही मृत्युसमय आराधना की। अंतर यह था कि इन्होंने सातदिन का अनशन किया था तथा राजा सिद्धराज स्वयं इनकी शवयात्रा में सम्मिलित हुए थे।

१८० उनके तीन गणधर थे—विजयसिंह, श्रीचंद्र और विबुधचन्द्र। उनमें श्रीचंद्र उनके पदपर सूरि हुए।

इन श्रीचंद्र आचार्य ने गुरु के स्वर्गवास के उपरांत थोड़े ही समय में 'मुनिसुव्रतचरित' लिखा था। यह संवत ११९३ में पूर्ण हुआ था।[1]

मलधारी राजशेखर ने उपर्युक्त तथ्यों में यह बात और कही है कि आचार्य ने वर्ष में ८० दिन की अमारी घोषणा राजा सिद्धराज से करवाई थी।[2]

विविधतीर्थकल्प में आ० जिनप्रभ ने लिखा है कि कोरंटवसति के निर्माण में आचार्य मलधारी हेमचंद्र का मुख्य भाग था।[3]

आचार्य विजयसिंह ने धर्मोपदेशमाला की बृहद्वृत्ति लिखी है। उसकी समाप्ति सं० ११९१ में हुई थी। उसकी प्रशस्ति में भी आचार्य विजयसिंह ने गुरु आचार्य हेमचंद्र मलधारी तथा उनके गुरु आचार्य अभयदेव का परिचय

[1] समय सूचक प्रशस्ति गाथा अशुद्ध है किन्तु मुद्रितिनिरा में सं० ११९३ का निर्देश है। पाटन भंडार की सूची की प्रस्तावना दग। पृ० ??

[2] प्राकृत दीपिका और प्राकृत द्वयाश्रय की वृत्ति की प्रशस्ति। जैन सा० सं० इ० पृष्ठ २४८ ??।

[3] विविधतीर्थकल्प पृ० ७७

दिया है। उससे ज्ञात होता है कि सं० ११९१ में आचार्य हेमचन्द्र मलधारी का स्वर्गवास हुए बहुत वर्ष हो चुके थे।[१] अतः इस बात को स्वीकार करने में कोई असंगति दृग्गोचर नहीं होती कि अपने गुरु अभयदेव की ११६८ में मृत्यु के उपरान्त ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और लगभग ११८० तक उस पद को सुशोभित करते रहे। इसका समर्थन इस बात से भी होता है कि उनके ग्रंथ के अंत में कथित प्रशस्ति में सं० ११७७ के बाद के वर्ष का उल्लेख नहीं।

आचार्य हेमचन्द्र के अपने हाथ से लिखी हुई जीवसमास की वृत्ति के अंत में उन्होंने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार ये यम, नियम, स्वाध्याय, ध्यान के अनुष्ठान में रत तथा परम नैष्ठिक अद्वितीय पंडित श्वेताम्बराचार्य भट्टारक थे। यह प्रशस्ति उन्होंने संवत् ११६४ में लिखी थी। प्रशस्ति इस प्रकार है—

"ग्रंथाग्र ६६२७। संवत् ११६४ चैत्र सुदी ४ सोमेऽद्येह श्रीमदणहिलपाटके समस्त राजावलि विराजित महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमज्जयसिंहदेव कल्याण विजय राज्ये एवं काल प्रवर्तमाने यम नियम स्वाध्यायानुष्ठान रत परमनैष्ठिक पंडित श्वेताम्बराचार्य भट्टारक श्री हेमचन्द्राचार्येण पुस्तिका लि० श्री"—श्री शान्तिनाथ जी ज्ञानमंदिर की प्रति—श्री प्रशस्ति संग्रह अहमदाबाद—पृ० ४९।

—※—

[१] श्री हेमचंद्र इति सूरिरमून्मुख्य शिष्यः शिरोमणिरशेषमनीषिणां यः। सम्यग्विधाय विविधानि तपांसि...स्वर्गं विशति...सुधी... ॥११॥ प्रशस्तिसंग्रह पद सूत्र टीका—पृ० ११।

मेरी बम्बई यात्रा

डॉ० इन्द्र

बम्बई भारत का ही नहीं एशिया का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। दूर दूर के लोग यहाँ लखपति और करोड़पति बनने के लिए आते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सबकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है किन्तु आशा सभी को रहती है। यहाँ समुद्र में ज्वार आता है और मछुए जाल फैला कर प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। एक ही ज्वार में उन्हें हजारों मन मछलियाँ मिल जाती हैं। छोटी मछलियाँ भी फँसती हैं और बड़ी भी। किन्तु एक बार फँसने के बाद कोई बाहर नहीं निकल सकती। समुद्र के ज्वार के समान यहाँ लक्ष्मी का भी ज्वार आता है। व्यापारी उसकी ताक में रहते हैं। उसके आते ही अपना घर भरने में जुट जाते हैं। किन्तु व्यापारियों का जाल इतना मजबूत नहीं होता कि फँसी हुई मछलियाँ निकल ही न सकें। धन की बाढ़ आती है किन्तु उतार के साथ बहुत कुछ वापिस भी चला जाता है। कुछ लोग तो मूल पूँजी भी खो बैठते हैं। समुद्र की तरंगों के समान यहाँ के बाजारों में लक्ष्मी क्रीड़ा करती है। एक जगह से उठकर दूसरी जगह पहुँच जाती है फिर वहाँ से उठती है और तीसरी जगह पहुँच जाती है।

यह तो हुई धन की बात। यहाँ धर्म की लूट भी होती है। करोड़पतियों की पेढ़ियों के समान यहाँ धर्मनायकों की भी बड़ी बड़ी पेढ़ियाँ हैं। यहाँ भगवान् संगमरमर के बने हुए गगनचुम्बी प्रासादों में रहते हैं। हीरे तथा रत्नों के आभूषण पहिनते हैं। सोने के थालों में सजाकर छत्तीस प्रकार के व्यञ्जन भोग उनके सामने परोसे जाते हैं। उनके द्वार पर बन्दूक लिए सैनिक वेषधारी द्वारपाल खड़े रहते हैं जिन्हें यह आज्ञा होती है कि कोई दीन दुखी अन्दर न घुसने पाए। महलों में रहने वाले भगवान दीन दुखी की क्यों पूछने लगे। वहाँ तो उन्हीं लोगों का अधिकार है जो आभूषण तथा रंगीन वस्त्रों से सुसज्जित हैं। जिनका अंग अंग चन्दन तथा केसर के लेप से महक रहा है। जिनके प्रसन्न वदन, मादक लोचन तथा प्रत्येक भावभंगी से वैभव टपकता है। भगवान उनको देख कर प्रसन्न होते हैं और वे भगवान को देख कर प्रसन्न होते हैं। यहाँ के भगवान् इस बात को भूले रहते हैं कि दुनिया में ऐसे लोगों का भी अस्तित्व है जिन्हें खाने को रोटी नहीं मिलती तन ढकने को कपड़ा नहीं

मिलता और जिनकी रातें किसी नाली के पास सड़कों पर पड़े पड़े कटती हैं। मन्दिर की पिछली दीवार के पास ऐसे व्यक्तियों की लम्बी कतार लगी रहती है किन्तु भगवान् सर्वज्ञ होने पर भी उन्हें नहीं देख पाते।

भगवान के बाद स्वामियों का नम्बर आता है। ये भगवान के दूत जो ठहरे। ये भगवान् का सन्देश घर घर पहुंचाते हैं। उन्होंने भी यह निश्चय कर लिया है कि भगवान का सन्देश उन्हीं को सुनाना चाहिए जिन पर भगवान् प्रसन्न हैं। जिन पर भगवान की कृपा न हो उन्हें भगवान की वाणी सुनाना भगवान को अप्रसन्न करना है। इसलिए देहात के हजारों लोग उपदेश के लिए तरसते रहते हैं, किन्तु बम्बई का कोई धर्मध्यान खाली नहीं रहता। महावीर बुद्ध और ईसा ने कहा था कि मोक्ष के लिए भोगों को छोड़ना होगा। दोनों का समन्वय नहीं हो सकता। किन्तु बम्बई ने इस बात को गलत सिद्ध कर दिया है। यहाँ के लोग भोग और मोक्ष की एक साथ उपासना करते हैं। यहाँ दोनों स्रोत परस्पर मित्र बन कर चल रहे हैं। जो जिनके पास भोग नहीं है वे मोक्ष की आराधना भी नहीं कर सकते। वे दोनों से वञ्चित हैं। इसी भाग पर मोक्ष की विजय कहा जाएगा या मोक्ष पर भोग की, यह सोचना यहाँ बेकार समझा जाता है। जब दोनों साथ एक साथ हो सकें तो विजय पराजय का ख्याल करके किसी एक को छोड़ने के लिए विवश होना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? यहाँ धर्म व्यक्ति का पथदर्शक नहीं, उसके हाथ का खिलौना बना हुआ है। वह जिधर चाहता है उसे घुमा रहा है और जिस रूप में चाहता है, उसी में बरत रहा है।

मैं पर्युषण व्याख्यानमाला में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था। इस प्रकार की व्याख्यानमालाओं का आयोजन उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो धर्म के विषय में वस्तुतः कुछ जानना चाहते हैं। सबसे पुरानी व्याख्यानमाला जैन युवक संघ की ओर से चल रही है। इसे पश्चात् वर्षों में भी अधिक हो गए। काका कालेलकर, पं० सुखलाल जी, धर्मानन्द जी आदि बड़े बड़े विद्वान, साधक एवं विचारक इस में आकर धर्म का स्वरूप समझाते रहे हैं। श्री मशरूवाला, स्वा० सत्यभक्त (पं० दरबारीलाल जी) तथा अन्य विद्वान् भी इसमें अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। इन व्याख्यानों के संग्रह के रूप में जो साहित्य प्रकाशित हुआ है वह धर्म, समाज, दर्शन तथा जीवन के अन्य प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। पर्युषण के दिनों में धर्मश्रवण की भावना का प्रवेश जैन में सदैव

। जिन्हें स्थानकों में संतोष नहीं प्राप्त होता और जो धर्म के मौलिक तत्व को जानना चाहते हैं उनको इस आयोजन से काफी संतोष मिला है। इस व्याख्यानमाला के कर्णधार श्री परमानन्द कुंवर जी कापडिया त्यागी तथा विचारक होने के साथ साथ कल्पनाशील भी हैं। व्याख्यानमाला में कुछ ऐसे विषयों का भी सन्निवेश रहता है जिनका जैन परम्परा से साथ साक्षात सम्बन्ध नहीं रहता। उन पर जब एक अधिकारी विद्वान बोलता है और उसके रहस्य को प्रकट करता है तो जैन जनता की दृष्टि व्यापक बनती है। साम्प्रदायिक संकुचित वृत्ति कम होती है और हृदय में विशालता आती है। इसी प्रकार जैनेतर जनता भी जैन तत्वों को समझने के लिए उत्सुक रहती है। जहाँ साम्प्रदायिकता ने धर्म का गला दबा रखा हो और राष्ट्र को शताब्दियों तथा सहस्राब्दियों से पराजित, विशृंखलित एवं छिन्न भिन्न बना रखा हो, वहाँ इस प्रकार की विशाल दृष्टि का निर्माण धर्म और राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा है। भारत की आध्यात्मिक परम्परा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह व्यक्ति तथा राष्ट्र सभी को शक्ति शाली एवं सुखी बना सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु जब तक वह साम्प्रदायिकता के दलदल में फंसी रहेगी वह हमारा कोई भी हित नहीं कर सकती।

युवक संघ की ओर से व्याख्यानमाला का आयोजन चौपाटी के पास कैवेंडिश हाल तथा रोक्सी थिएटर में किया जाता है। इसके अतिरिक्त घाटकोपर तथा दादर में भी आयोजन किए गए थे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ जितनी बढ़ेंगी उतना ही जनता का ध्यान धर्म के वास्तविक रूप की ओर जाएगा।

ता० ६, ७ तथा ८ को उपरोक्त व्याख्यानमालाओं में व्याख्यान देने का कार्यक्रम पूरा करके हमने स्थानकों में जाना प्रारम्भ किया। वहाँ प्रतिदिन प्रातः तथा दोपहर दोनों समय मुनियों के व्याख्यान होते थे। विशाल व्याख्यान भवन पुरुष तथा स्त्रियों से खचाखच भरे रहते थे। किन्तु उनमें धर्म श्रवण की वास्तविक प्रेरणा लेकर कितने आते थे और केवल रिवाज पूरा करने के लिए कितने यह विचारणीय है। मुनि महाराज जोर जोर से बोलते थे किन्तु कोलाहल के कारण बहुत बड़ी संख्या को उनकी वाणी के लाभ से वञ्चित रह जाना पड़ता था। अभी तक हमें यह भी सीखने की आवश्यकता है कि धर्म स्थान में किस प्रकार के शिष्टाचार का पालन करना चाहिए।

प्रत्येक स्थानक में तपस्वियों का समुदाय हृदय में श्रद्धा जागृत कर रहा था।

उन्हें देख कर प्रतीत होता था कि जैन धर्म ने अपनी इस परम्परा को अभी तक अक्षुण्ण रखा है। किसी ने एक उपवास कर रखा है, किसी ने दो, किसी ने तीन और किसी ने आठ। संवत्सरी के दिन तो प्रायः जैन मात्र में कोई भोजन नहीं करता। छोटे छोटे बालक भी यथाशक्ति तपस्या करते हैं। जैनियों का उपवास भी वास्तविक उपवास होता है। गरम पानी के अतिरिक्त कोई चीज मुंह में नहीं डाली जाती। जो लोग चौविहार करते हैं वे तो पानी भी नहीं पीते। बड़े बड़े श्रीमन्तों को भी उपवास के लिए स्वयं भूखा रहना पड़ता है। दूसरे के उपवास से उन्हें फल नहीं मिलता। जैन धर्म आज तक इसी एक परम्परा के कारण जीवित है।

इन दिनों तपस्या के साथ साथ त्याग की भावना भी स्वाभाविक होती है। प्रत्येक व्यक्ति शुभ कार्य के लिए कुछ न कुछ त्याग करना चाहता है। यह भावना भी एक उदात्त परम्परा का सूचन करती है। किन्तु इससे लाभ उठाने वालों ने जो रूप ले लिया है वह उचित नहीं कहा जा सकता। समाज के लिए उपयोगी कार्य करने वाली संस्थाएं जनता को अपना परिचय दें यह एक बात है, किन्तु बालक अलग अलग संस्थाओं की थैलियां लेकर फिरते रहें उन्हें बजा बजा कर पैसे मांगें और धर्मस्थानक के शान्त एवं तपोमय वातावरण को क्षुब्ध कर डालें, यह उचित नहीं कहा जा सकता। इसके लिए कोई अनुशासन तथा व्यवस्था होनी चाहिए।

गत वर्ष सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के समय तो हमें और भी विचित्र दृश्य देखने को मिला। प्रतिक्रमण किए हुए पापों की आलोचना एवं आत्म शुद्धि के लिए किया जाता है। उस समय व्यक्ति की भावना कितनी सात्विक तथा अन्तर्मुखी रहनी चाहिए यह बताने की आवश्यकता नहीं है। संवत्सरी के समय तो यह और भी आवश्यक है जब कि वर्ष भर के पापों की आलोचना की जाती है। उस समय प्रतिक्रमण के भिन्न भिन्न पाठों का नीलाम बोलना और रुपए इकट्ठे करने का प्रयत्न करना प्रतिक्रमण के महत्व का हनन कर देना है। हमारा क्रियाकाण्ड अधिकतर जीवनहीन रूढ़ि बन गया है। उस का जीवन के साथ सम्पर्क प्रायः समाप्त हो गया है। ऐसी स्थिति में यदि एक वस्तु को भी हम जीवनस्पर्शी बना सकें तो धीरे धीरे अन्य बातों में प्राण भी डाले जा सकते हैं। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण जैनत्व का मूल आधार है। यदि यह भी आत्मशुद्धि का अंग न रहकर केवल धन एकत्रित करने का साधन बन जाएगा तो आत्मशुद्धि की प्रेरणा कहाँ से मिलेगी?

उस दिन हम अपने बालक बालिकाओं तथा घर के सभी लोगों को प्रतिक्रमण के लिए भेजते हैं। प्रारम्भ में वे धर्मभावना को लेकर स्थानक में प्रवेश करते हैं। किन्तु जब वहाँ नीलाम होता देखते हैं तो वह भावना भाग जाती होती है। उन पर वातावरण का कोई पवित्र प्रभाव नहीं रहता। परिणाम स्वरूप जब प्रतिक्रमण किया जाता है तो वे आपस में मजाक करते हैं, हँसते हैं, दूसरों के ध्यान में भी बाधा डालते हैं। कोई कोई सज्जन उसी समय उन पर कुपित होने लगते हैं और बात बढ़ जाती है। वार्षिक आत्मशुद्धि के समय इस प्रकार वातावरण का विकृत हो जाना जैन परम्परा पर कठोर आघात है। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के महत्व को खोकर यदि हम लाखों रुपए भी एकत्रित कर लेते हैं तो वे किसी काम के नहीं हैं। उस समय वातावरण ठीक रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में प्रतिक्रमण की गम्भीरता का ध्यान हो। हजारों नहीं लाखों मुसलमान एक साथ नमाज पढ़ते हैं किन्तु कोई बच्चा भी चूं नहीं करता। प्रत्येक के मन में अपनी धार्मिक क्रिया की पवित्रता एवं महानता का ध्यान होता है। किन्तु हमारे यहाँ मुखिया श्रावक ही नीलाम बोलते हैं। फिर बालकों से क्या आशा की जा सकती है ?

यदि धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो सामायिक एवं पौषध में रुपए पैसे लेने की या देने की बात करना दोष माना गया है। उस समय व्यक्ति के पास उतनी ही सम्पत्ति होती है जितनी वह उपकरण के रूप में अपने पास रखता है। उतने काल के लिए घर की सम्पत्ति से उसका कोई संबन्ध नहीं रह जाता। सामायिक के उपकरण भी वह ऐसे व्यक्ति को दे सकता है जो स्वयं सामायिक या संवर में है। फिर भी घर की सम्पत्ति के विषय में देने लेने की बात करना सामायिक में दोष लगाना है। हम अपनी धार्मिक क्रियाओं से सभी लाभ उठा सकेंगे जब उनका ईमानदारी के साथ निर्दोष पालन करेंगे।

तो कोई भाग्य से ही मरता है। ऐसी मृत्यु यहां पर अत्यन्त लज्जास्पद समझी जाती है।

कल ही यहा पर युद्ध हुआ है। कल्याण के राजा ने पचासर के राजा जयशिखरी को बुरी तरह मारा है। उसका सेनापति इसी जंगल में रहा है। सगर्भा रानी प्रसव के लिए यहीं आयी है।

डाल डाल पर दुश्मन के जासूस फिर रहे हैं। और पत्ते-पत्ते पर स्वामि भक्त भील पहरा दे रहे हैं।

इन दुगम वनों में मार्ग का कोई चिह्न नहीं। एक बार घुसा हुआ व्यक्ति यहां के निवासी की सहायता के बिना इस जंगल में तो शायद ही बाहर निकल सके। राजा दुर्ग विजयी हो सकता है किन्तु हमारी झोपड़ियों को नहीं जीत सकता, अभिमान को ऐसी गर्जन करने वाला यहां का जन समूह है।

(२)

ऐसी अंधकार पूर्ण सृष्टि में भी आज भारी उष्णता है। वायु शान्त है। वृक्ष का एक भी पत्ता नहीं हिलता। गुफा की शीतलता भी न जाने कहां भाग गयी। युवक जलाशय की ओर आ रहे हैं। वनिताएं वन की ऊंची शाखाओं पर झोलियां लटका कर बालकों को आश्वासन दे रही हैं।

अचानक ऊंचे वृक्ष की शाखा पर एक उलूक बोला, सामने से रोते शृगाल की आवाज सुनाई दी।

वृक्ष पर पहरा देने के लिए बैठे हुए दो चुगलखोर सांकेतिक पशुभाषा में वार्तालाप कर रहे थे।

उलूक कहता था—"कोई योगी-यती है।'

शृगाल कहता था—"परिचित है, जाने दो।'

चिह्न रहित मार्ग पर खुले सिर और खुले पैर एक साधु सावधानी से आगे बढ़ रहा था। तन काफी लम्बा था। सिर मोटा और हाथ घुटने तक लटकते थे। अंगसौष्ठव देख कर अच्छे-अच्छे मौन, विचार और स्वाध मोहित हो जाते थे। उसके हाथ का बांस का दण्ड राजदण्ड सा शोभित होता था। अपरिचित को मालूम होता था कि कोई सनातन किसी सिद्धि के लिए जंगलों में घूम रहा है। किन्तु यह भव्य कल्पना तो तभी तक रहती जब तक

अपने देश से प्रेम करते है, दूसरे देशों से नहीं। इसी लिए अपने देश हित के लिए दूसरे देशों पर आक्रमण करते है। यदि सभी लोग दूसरे के घर को अपने जैसा समझें तो कौन चोरी करेगा? यदि सभी दूसरे के प्राणों को अपने जैसा समझें तो कौन हत्या करेगा? यदि सभी दूसरे के परिवार को अपने परिवार जैसा समझें तो कौन शोषण करेगा? यदि सभी दूसरे देश को अपने देश जैसा समझें तो कौन आक्रमण करेगा।"

चीनी संत की वाणी में अहिंसा के देवता भगवान महावीर की वाणी का स्वर गूंज रहा है, जिसमें उन्होंने कहा है—"सव्व भूयप्प भूय" अर्थात सब भूतात्मभूत बनो सभी प्राणियों को अपनी आत्मा समझो।

जैन धर्म की अहिंसा इतनी सूक्ष्म और विशाल है कि उसका अनुसरण असाध्य एवं अव्यवहार्य समझा जाता है। किन्तु यह ठीक नहीं है। चीनी प्रोफेसर तान युन शान जैन अहिंसा के सबंध में उपर्युक्त मिथ्या धारणा का निराकरण करते हुए कहते है— यह मार्ग असाध्य इसलिए प्रतीत होता है कि मानवता अभी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है। जब मानवता का पर्याप्त विकास हो जाएगा और वह अपेक्षित स्तर पर पहुंच जाएगा तो अहिंसा के इस मार्ग पर लोग विश्वास करेंगे और चलेंगे भी।

* * *

अपने आस पास के वातावरण में मनुष्य को गुलाब बनकर रहना चाहिए। वह जीवित और खिला हुआ गुलाब, जिसके कण कण से मीठी दिल और दिमाग को तर करने वाली महक निकलती रहती है।

* * *

मानवता और भय—

भय मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। भयभीत मनुष्य में गीदड़ की आत्मा निवास करती है जो कुछ दिन छुकी छिपी इधर उधर भटक कर मर जाने के लिए है। काम करने के लिए नहीं। अपने अज्ञान अस्तित्व को बनाए रखना ही उसकी सबसे बड़ी चिन्ता है। जब तक मनुष्य में भय है वह सत्य के मार्ग पर नहीं चल सकता। न उसमें नैतिकता आ सकती है, न धर्म समाज और राष्ट्र का प्रेम। निर्भयता और साहस ही मानवता की पहली ईंट है।

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर की

नई प्रवृत्ति

जैन साहित्य-निर्माण-योजना

इसके अन्तर्गत क्रमशः नीचे लिखे ग्रन्थों का निर्माण एवं प्रकाशन होगा।

१ जैन साहित्य का इतिहास—दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आगम, कर्मसाहित्य, आगमिक प्रकरण, दार्शनिक साहित्य, लाक्षणिक ग्रन्थ, अन्य स्तुति, चरित आदि तथा हिन्दी गुजराती राजस्थानी, कन्नड़ तामिल कन्नड आदि भाषा साहित्य के रूप में जैन साहित्य के सब अंगों को भाग तथा खण्डों में बाँट दिया गया है और विविध प्रकरणों पर लिखने के लिए तत्तद् विषय के विशिष्ट विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया गया है। यह ग्रन्थ रायल साइज के लगभग २००० पृष्ठों का होगा।

इस पवित्र अनुष्ठान में नीचे लिखे विद्वान हमारे सहयोगी बन चुके हैं—पं सुखलाल जी, पं बेचरदास जी डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री, पं महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य प्रो० दलसुखभाई मालवणिया, डॉ० हीरालाल जैन डॉ० ए एन उपाध्ये, डॉ० हीरालाल कापड़िया, डा० भोगीलाल सांडेसरा डॉ० प्रबोध पण्डित, प्रो० भायाणी पं० नाथूराम जी प्रेमी, श्री अगरचन्द जी नाहटा, पं० के भुजबली शास्त्री, डा० पद्मनाभ जैनी डॉ० नथमल टाटिया डॉ० इन्द्र चन्द्र शास्त्री आदि।

इतिहास में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को कोई स्थान न दिया जाएगा। विद्वानों की सूची इसका स्पष्ट प्रमाण है।

२ जैन दर्शन का इतिहास—जैन दार्शनिक विचारों के विकास को समबद्ध करना।

३ जैन पारिभाषिक शब्दकोश—जैन साहित्य के आगमिक दार्शनिक धार्मिक, आगमिक तथा कथा सर्वथा ग्रन्थों में आए हुए समस्त पारिभाषिक शब्दों का परिचय।

समिति इन प्रवृत्तियों की सफलता के लिए आपके सहयोग की आशा रखता है।

निवेदक

हरजसराय जैन

मानद मंत्री

दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प तथा व्यवहार सूत्रों के रचयिता, सकल श्रुत ज्ञान के धारक, प्राचीन गोत्री ऋषि भद्रबाहु स्वामी को हमारा वन्दन हो।

नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं दुवालसंगं गणिपिडगं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं छव्विहमावस्सयं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं अंगबाहिरं उक्कालियं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं अंगबाहिरं कालियं भगवंतं।

उन क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने द्वादशांग गणिपिटक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमा श्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने षड्विध आवश्यक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने अंग बाह्य उत्कालिक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने अंगबाह्य कालिक भगवान् की वाचना दी।

तत्त्वार्थसूत्रकर्तारमुमास्वातिमुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम्॥

श्रुतकेवली के समकक्ष, गुणों के मन्दिर, तत्त्वार्थ सूत्र की रचना करने वाले मुनीश्वर उमास्वाति को वन्दन हो।

पालित्तसूरिः स श्रीमान्, अपूर्वः श्रुतसागरः।
यस्मात्तरङ्गवत्याख्या, कथास्रोतो विनिर्ययौ॥

पालित्त सूरि अपूर्व श्रुतसागर हैं, जिनसे तरंगवती नाम का कथास्रोत निकला।

सुयकेवलिणा जेणं भणियं,
आयरिय सिद्धसेणेण सम्मइए पइट्ठियजसेणं।
दूसमणिसा दिवागर कप्पत्तणओ तदक्खेणं॥

कलिकाल रूपी रात्रि में दिवाकर के समान होने के कारण उनके नाम वाले श्रुतकेवली आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने सम्मति में (कहा है)।

—हरिभद्र

आचार्य जिनभद्र

पूर्व भूमिका

इस विश्व का मूल, सत् है अथवा असत् है, इस विषय में दो परस्पर विरोधी भावों का खंडनमंडन उपनिषदों में उपलब्ध होता है। त्रिपिटक तथा गणिपिटक—जैन-आगम में भी विरोधी का खंडन करने की प्रवृत्ति दृग्गोचर होती है। अतः हम यह विश्वास कर सकते हैं कि वाद विवाद का इतिहास अति प्राचीन है और उत्तरोत्तर उसका विकास होता रहा है। किंतु दार्शनिक विवादों के इतिहास में नागार्जुन से लेकर धर्मकीर्ति के समय तक का काल ऐसा है जिसमें दार्शनिकों की वाद विवाद संबंधी प्रवृत्ति तीव्रतम हो गई है। नागार्जुन, वसुबन्धु और दिग्नाग जैसे बौद्ध आचार्यों के तार्किक प्रहारों के वार सभी दर्शनों पर सतत पड़े और उनके प्रतीकार के रूप में भारतीय दर्शनों में पुनर्विचार की धारा प्रवाहित हुई। न्याय दर्शन में वात्स्यायन और उद्द्योतकर, वैशेषिक दर्शन में प्रशस्तपाद, मीमांसा दर्शन में शबर और कुमारिल जैसे प्रौढ़ विद्वानों ने अपने दर्शनों पर होने वाले प्रहारों के प्रत्युत्तर दिए। यही नहीं उन्होंने इस व्याज से स्वदर्शन को भी नया प्रकाश प्रदान कर उन्हें सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। दार्शनिक विवाद के इस अखाड़े में जैन तार्किकों ने भी प्रवेश किया और अपने आगम के आधार पर जैन दर्शन को तर्कपुरस्सर सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य उमास्वाति ने इस विवाद से तत्त्वार्थ सूत्र लिखने की प्रेरणा प्राप्त की परन्तु उन्होंने उन सब का खंडन कर जैन दर्शन को स्वकीय रूप प्रदान करने का काम नहीं किया। उन्होंने केवल जैन दर्शन के तत्त्वों को सूत्रात्मक शैली में उपस्थित किया और विवाद का काम बाद में होने वाले पूज्यपाद, अकलंक, सिद्धसेनगणि, विद्यानन्द आदि टीकाकारों के लिए शेष छोड़ दिया।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने इस विवाद में से जैनन्याय की आवश्यकता का अनुभव कर न्यायावतार जैसी अत्यन्त संक्षिप्त कृति की रचना की और जैनन्याय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले अनेकान्तवाद के मूल में स्थित नयवाद का विवेचन करने के लिए सन्मति तर्क लिखा। किंतु इन बातों

रूप में भी उपस्थित किया है। उनकी युक्तियों और तर्कशली में इतनी पूर्ण व्यवस्था है कि आठवीं शताब्दी में होने वाले महान दार्शनिक हरिभद्र तथा बारहवीं शताब्दी में होने वाले आगमों के समर्थ टीकाकार मलयगिरि भी ज्ञान चर्चा में आचार्य जिनभद्रकी ही युक्तियों का आश्रय लेते हैं। यही नहीं, अठारहवीं शताब्दी में होने वाले नव्यन्याय के असाधारण विद्वान् उपाध्याय यशोविजय जी भी अपने जैनतर्कपरिभाषा, अनेकांतव्यवस्था, ज्ञानबिन्दु आदि ग्रंथों में उनकी दलीलों को केवल नवीन भाषा में उपस्थित कर संतोष मानते हैं उन ग्रंथों में अपनी ओर से नवीन वृद्धि शायद ही की गई है। इससे स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी में आचार्य जिनभद्र ने सम्पूर्ण रूपेण प्रतिमल्ल का कार्य सपन्न किया।

आचार्य जिनभद्र का विशेषावश्यक महा ग्रंथ जैन आगमो को समझने की कुंजी है। इस ग्रंथ में सभी महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा की गई है। जैसे बौद्ध त्रिपिटक का सारग्राही ग्रंथ विशुद्धि मार्ग है, उसी प्रकार विशेषावश्यक जैन आगम का सारग्राही है। साथ ही उसकी यह विशेषता है कि उसमें जैन तत्त्व का निरूपण केवल जैन दृष्टि से ही नहीं किया गया अपितु अन्य दर्शनों की तुलना में जैन तत्त्वों को रख कर समन्वयगामी मार्ग द्वारा प्रत्येक विषय की चर्चा की गई। जैनाचार्यों के उन विषयों के संबंध में अनेक मतभेदों का खंडन करते हुए भी उन्हें संकोच नहीं होता। कारण यह है कि ऐसे प्रसंग पर वे आगमों के अनेक वाक्यों का आधार देकर अपना मन्तव्य उपस्थित करते हैं। किसी भी व्यक्ति की कोई भी व्याख्या यदि आगम के किसी वाक्य से विरुद्ध हो, तो वह उन्हें असह्य प्रतीत होती है और वे प्रयत्न करते हैं कि उसके तर्कपुरस्सर समाधान की खोज की जाए। उन्होंने आगमों के परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले मन्तव्यों का समाधान ढूंढने का भी प्रयास किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि विरोधी प्रतीत होने वाले वाक्यों की भी परस्पर उपपत्ति कैसे हो सकती है। सच बात तो यह है कि आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य लिख कर जैनागमोंके मन्तव्यों को तर्क की कसौटी पर कसा है और इस तरह इस काल के तार्किकों की जिज्ञासा को शान्त किया है। जिस प्रकार वेदवाक्यों के तात्पर्य के अनुसंधान के लिए मीमांसा दर्शन की रचना हुई, उसी प्रकार जैनागमों के तात्पर्य को प्रकट करने के लिए जैन मीमांसा के रूप में आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य की रचना की।

'विविध तीर्थ कल्प' में मथुरा कल्प के प्रसंग में आचार्य जिनप्रभ ने लिखा है कि आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने मथुरा में देवनिर्मित स्तूप के देव की एक पक्ष की तपस्या कर आराधना की और दीमक द्वारा खाए हुए महा निशीथ सूत्र का उद्धार किया।[1] इससे यह तथ्य ज्ञात होता है कि जिनभद्र ने वलभी के उपरांत मथुरा में भी विचरण किया था और उन्होंने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया था।

अभी कुछ ही समय पूर्व अंकोट्टक (अर्वाचीन आकोटा गांव) से प्राप्त हुई प्राचीन जैन मूर्तियों का अध्ययन करते हुए श्री उमाकांत प्रेमानंद शाह को दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं। उन्होंने जैन सत्य प्रकाश (अंक १९६) में उन मूर्तियों का परिचय दिया है। कला तथा लिपिविद्या के आधार पर उन्होंने इन्हें ई० सन् ५५० से ६०० तक के काल में रखा है। उन्होंने यह भी निर्णय किया है कि इन मूर्तियों के लेख में जिन आचार्य जिनभद्र का नाम है वे विशेषावश्यक भाष्य के कर्ता क्षमाश्रमण जिनभद्र ही हैं, अन्य नहीं। उनकी वाचनानुसार[2] एक मूर्ति के पद्मासन के पिछले भाग में 'ओं देवधर्मोयं निवृतिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य' ऐसा लेख है और दूसरी मूर्ति के भामंडल में 'ओं निवृतिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य' यह लेख उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त वर्णन से निश्चय रूपेण ये तीन नई बातें ज्ञात होती हैं, आचार्य जिनभद्र ने इन मूर्तियों को प्रतिष्ठित किया होगा, उनके कुल का नाम निवृति कुल था और वे वाचनाचार्य कहलाते थे। इससे एक तथ्य यह भी फलित होता है कि वे चैत्यवासी थे[3], क्योंकि लेख में लिखा है कि 'जिनभद्रवाचनाचार्य की'। इस तथ्य को इस कारण विचाराधीन समझना

---

[1] इत्थं देवनिम्मिअथूभे पक्खक्खमणेण देवयं आराहित्ता जिणभद्दखमासमणेहिं उद्देहिया भक्खियपुत्थयपत्तत्तणेण तुट्टं भग्गं महानिसीहं संधियं। विविध तीर्थ कल्प पृ० १९,

[2] श्री शाह की वाचना प्रामाणिक है और उनका लिपि के समय का अनुमान भी ठीक है। इस बात का समर्थन बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्राचीनलिपिविशारद प्रो० अवध किशोर ने भी किया है। अतः इस में शंका का अवकाश नहीं।

[3] श्री शाह ने भी यह संकेत किया है परन्तु कारण भिन्न बताया है। –

आचार्य जिनभद्र का कुल निवृतिकुल था, यह तथ्य उक्त लेख के अतिरिक्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। भगवान महावीर के १७ वें पट्ट पर आचार्य वज्रसेन हुए थे। उन्होंने सोपारक नगर के सेठ जिनदत्त और सेठानी ईश्वरी के चार पुत्रों को दीक्षा दी थी। उनके नाम थे नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति और विद्याधर। भविष्य में इन चारों के नाम से भिन्न भिन्न चार परंपराएं चलीं और वे नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति तथा विद्याधर कुलों के नाम से प्रसिद्ध हुईं।[1] उक्त मूर्ति-लेख के आधार पर यह सिद्ध होता है कि आचार्य जिनभद्र निवृति कुल में हुए। महापुरुषचरित्र नामक प्राकृत ग्रंथ के लेखक शीलाचार्य, उपमितिभवप्रपंच कथा के लेखक सिद्धर्षि तथा वृत्ति के संशोधक द्रोणाचार्य जैसे प्रसिद्ध आचार्य भी इस निवृति कुल में हुए हैं। अतः इस बात में सन्देह नहीं कि यह कुल विद्वानों की खान के समान है।

इस बात को छोड़ कर उन के जीवन के संबंध में कोई बात ज्ञात नहीं है। केवल उनका गुण वर्णन उपलब्ध होता है। उसका सार यह है कि वे एक महा भाष्यकार थे तथा प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता और प्रतिपादक थे। उनके गुणों का व्यवस्थित वर्णन उनके जीतकल्प सूत्र के टीकाकार ने किया है। उसके आधार पर मुनि श्री जिनविजय जी ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह यह है[2] तत्कालीन प्रधान प्रधान श्रुत धर भी इनका बहुत मान करते थे। वे श्रुत व श्रुतेतर दोनों शास्त्रों के कुशल विद्वान् थे। जैन सिद्धान्तों में ज्ञान दर्शन के क्रमिक उपयोग का जो विचार किया गया है वे उसके समर्थक थे। अनेक मुनि ज्ञानाभ्यास के निमित्त उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। भिन्न भिन्न दर्शनों के शास्त्रों तथा लिपिविद्या, गणित शास्त्र, छन्द शास्त्र और व्याकरण आदि शास्त्रों के वे अद्वितीय पंडित थे। परसमय के आगमों में भी उन की गति थी। वे स्वाचार पालन में तत्पर थे तथा सब जैन श्रमणों में मुख्य थे।

जब तक और नई बातें ज्ञात न हों, तब तक उक्त गुण वर्णन से ही उनके व्यक्तित्व की कल्पना करके हमें सन्तोष करना चाहिए।

---

[1] खरतर गच्छ की पट्टावली देखें जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृ० ६६९। 'निवृति' शब्द के निवृत्ति 'निर्वृत्ति' य रूप भी भिन्न भिन्न स्थानों में दृष्टिगोचर होते हैं।

[2] जीतकल्प सूत्र की प्रस्तावना पृ० ७

सत्ता समय

वीर निर्वाण सं० ९८० (वि० सं० ५१०, ई० स० ४५३) में वलभी वाचना के समय आगम व्यवस्थित हुए और उन्हें अंतिम रूप प्राप्त हुआ। उसके बाद उनकी सब प्रथम पद्यटीकाएँ प्राकृत भाषा में लिखी गईं। ये सब उपलब्ध होने वाली ये प्राकृत टीकाएँ निर्युक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सब के प्रणेता आचार्य भद्रबाहु हैं। उनका समय वि० सं० ५६२ (ई० स० ५०५) के लगभग है। अतः हम मान सकते हैं कि आगमों की वलभी संकलन के बाद के ५० वर्षों में ये लिखी गई होंगी। इन निर्युक्ति की पद्यबद्ध प्राकृत टीका लिखी गई जो मूल भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस मूल भाष्य के कर्ता के विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। किन्तु आचार्य हरिभद्र आदि के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि आवश्यक निर्युक्ति की प्रथम टीका के रूप में किसी भाष्य की रचना हुई थी। ऐसा लगता है कि उन आचार्य जिनभद्र के भाष्य से पृथक करने के लिए आचार्यों ने बाद में 'मूल भाष्य' का नाम दिया। कुछ भी हो, किन्तु इस मूल भाष्य के बाद आचार्य जिनभद्र ने आवश्यकनिर्युक्ति के सामायिक अध्ययन की प्राकृत पद्य में जो टीका लिखी वह विशेषावश्यक भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। अतः आचार्य जिनभद्र के विशेषा० के समय की पूर्वावधि निर्युक्तिकार भद्रबाहु के समय से और पूर्वोक्त मूल भाष्य के समय से पहले नहीं हो सकती। आचार्य भद्रबाहु वि० सं० ५६२ के लगभग विद्यमान थे, अतः विशेषा० की पूर्वावधि विक्रम ६०० से पहले संभव नहीं।

मुनि श्री जिनविजय जी ने जैसलमेर की विशेषा० की प्रति के अंत में लिखित दो गाथाओं के आधार पर निश्चय किया है कि उसकी रचना वि० ६६६ में हुई। किन्तु मेरे विचार से वह उसका रचना समय नहीं किन्तु प्रति-लेखन का समय है। कुछ भी हो हम उसके आधार पर आचार्य जिनभद्र के समय का निर्धारण कर सकते हैं। उनकी आयु १०४ वर्ष की थी। अतएव उनकी सत्ता विक्रम ५४५-६५० तक मानी जा सकती है—देखिए गणधरवाद की प्रस्तावना—पृ० ३२-३४।
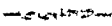
जैन साहित्य के इतिहास निर्माण के सूत्र

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

१ ब्राह्मण साहित्य और बौद्ध साहित्य के समान ही जैन साहित्य का भी देश और काल में फैला हुआ अत्यन्त विपुल इतिहास है। इस साहित्य के पीछे उदात्त आध्यात्मिक भावना, तपोमय जीवन और बुद्धि के प्रकर्ष का सतत प्रेरणा निहित है।

२ भारतीय संस्कृति के सर्वांगपूर्ण इतिहास का जो व्यापक रूप है उसके त्रिविक्रम रूप का एक अंग जैन साहित्य और संस्कृति भी है। उस सामग्री के त्रिविष्टपक ठाठ में जैन सामग्री का भी महत्वपूर्ण आधार है। अतएव भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास की पूर्णता के लिए यह परम आवश्यक है कि जैन धारा में सुरक्षित सामग्री की ओर भी अविलम्ब ध्यान दिया जाय।

३ इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जैन साहित्य से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट ग्रन्थों का निर्माण हो। इस योजना के अन्तर्गत यदि निम्नलिखित ग्रन्थों का निर्माण किया जा सके तो यह अभिलषित उद्देश्य की पूर्ति का पहला किन्तु अनिवार्य चरण होगा।

(क) जैन साहित्य का इतिहास।

(ख) जैन दर्शन और धर्म का इतिहास।

(ग) जैन संस्कृति का इतिहास।

(घ) जैन साहित्य के व्यक्तिवाची और स्थानवाचक नामों का सम्पूर्ण कोश।

४ जैन साहित्य निर्माण योजना उपर निर्दिष्ट विशाल योजना का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसकी पूर्ति का आर्थिक और व्यवस्था सम्बन्धी समस्त उत्तरदायित्व श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति ने स्वीकार किया है। उसी समिति के तत्वावधान में विशिष्ट विद्वानों के सहयोग से इस कार्य की पूर्ति का प्रयत्न किया जा रहा है।

का पहला स्वरूप मेरी ओर से लिख कर श्रमण के मई १९५२ के अंक में प्रकाशित किया गया। तदनन्तर श्री दलसुखभाई मालवणिया के साथ विशेष विचार करके योजना का संक्षिप्त विवरण तयार किया गया। तदनुसार ग्रन्थ को चार भागों में और लगभग तीन सहस्र पृष्ठों में सम्पन्न करने का निम्न प्रकार से विचार किया गया—

१ आगम साहित्य।
२ दार्शनिक और लाक्षणिक साहित्य।
३ काव्य साहित्य।
४ लोकभाषा साहित्य।

९ प्रत्येक भाग के अन्तर्गत उसके खण्डों का विभाग भी सोचा गया और प्रत्येक खण्ड के लिए योग्य विद्वानों के नामों पर भी विचार किया गया जो उनके सम्पादन का उत्तरदायित्व लें। यह सम्पूर्ण कार्य अत्यन्त सौमनस्य भाव से ही सम्पन्न हुआ। सम्बन्धित विद्वानों से भी इस विषय में पत्र व्यवहार किया गया और संक्षिप्त योजना की छपी हुई प्रति भी सब के पास भेजी गई तथा श्रमण पत्र के द्वारा जनता में भी प्रचारित की गई। सब ओर से योजना को उत्साहपूर्ण स्वागत प्राप्त हुआ। अधिकांश विद्वानों ने सम्पादन का भार वहन करना स्वीकार किया। उनके नाम इस प्रकार हैं —

१ पं० श्री बेचरदास जी।
२ डा० हीरालाल जैन।
३ पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री।
४ प्रो० दलसुख भाई मालवणिया।
५ पं० लालचन्द्र भगवान दास।
६ प्रो० भोगीलाल सांडेसरा।
७ श्री नाथूराम जी प्रेमी।
८ श्री अगरचन्द जी नाहटा।
९ पं० के० भुजबली शास्त्री।

१० इसी समय ता० १७-२-५३ को विद्वानों से यह भी प्रार्थना की गई कि वे प्रत्येक भाग के अन्तर्गत अध्यायों का विवरण और उनके प्रत्येक अध्याय के

का अध्यवसाय और मनोयोग की आवश्यकता है। किन्तु यह स्मरण रखना उचित है कि इस योजना का बहुत महत्त्व इस बात में भी है कि इसका फल कम से कम समय में जनता के सामने आ सके। इस कार्य को किसी भी कारण से अधिक विलम्बित करना उचित न होगा। जैसा कि सदा पहले प्रयत्नों के विषय में होता है इसके बाद दूसरे, तीसरे प्रयत्न भी भविष्य में आवश्यक होंगे, लेकिन वे सभी तभी सम्भव हो सकेंगे और उनकी कल्पना तभी लोगों के मन में जागेगी जब कि पहले प्रयत्न का मूर्तरूप आँखों के सामने आ जाय। इतिहास निर्माण का कार्य सतत प्रगतिशील रहता है और जैन साहित्य का इतिहास भी उसी नियम का अंग है। ईश्वर हम सब को विचार और कर्म की वह शक्ति दे जिससे हम सब समनस्क होकर इस योजना की पूर्ति में लग सकें। "यह कार्य करना है।"

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥

(कालिदास, रघु० १०।२६)

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

(हरिभद्र सूरि)

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

(हेमचन्द्राचार्य)

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर

श्रमण के पाठक पार्श्वनाथ विद्याश्रम तथा उसकी विविध प्रवृत्तियों से सुपरिचित हैं। किन्तु इस महत्वपूर्ण संस्था को जन्म देने वाली तथा पालन पोषण करके उसे वर्तमान रूप में लाने वाली उपरोक्त समिति के विषय में बहुत कम लिखा गया है। इस समिति के निर्माण में जिन महापुरुषों का हाथ है इसके कर्णधार जिस लक्ष्य को सामने रखकर चल रहे हैं उसके विषय में पाठकों की जानकारी बहुत कम होगी।

स्थानकवासी जैन समाज के इतिहास में सन १९३३ का वर्ष स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। समान परम्परा के अनुयायी होने पर भी जो साधु परस्पर मिलन तथा वार्तालाप करने में भी हिचकिचाते थे, उन्होंने इस वर्ष अवान्तर भेदों को त्याग कर समस्त स्थानकवासी समाज के लिए एक आचार्य शिरोमणि चुनने का निश्चय किया। इस प्रकार अनेकता से एकता की ओर ठोस कदम बढ़ाया। इसी के लिए अजमेर में साधु-सम्मेलन हुआ जिस में विभिन्न सम्प्रदायों के लगभग दो सौ मुनिराज एकत्रित हुए। पंजाब की स्थानकवासी समाज के आचार्य वयोवृद्ध पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज उन दिनों अमृतसर में विराजमान थे। वृद्धावस्था एवं अस्वास्थ्य के कारण वे अजमेर नहीं जा सके। उनका प्रतिनिधित्व उनके शिष्य युवाचार्य पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने किया। एकता की कल्पना सब प्रथम पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के मन में आई थी। विभिन्न सम्प्रदाय के आचार्य होने के साथ वे चारित्रवृद्ध भी थे। परिणाम स्वरूप साधु सम्मेलन में उन्हीं को आचार्यशिरोमणि चुना गया।

सम्मेलन के दिनों में मुनिराजों को एक साथ रहने का जो अवसर प्राप्त हुआ उस से उनके वैयक्तिक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हो गए। परस्पर विचारों के आदान प्रदान से समाज के उत्कर्ष के लिए सच्ची भावना जागृत हुई।

सम्मेलन पूर्ण होने के पश्चात पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज, युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज तथा प० र० शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्र जी महाराज एक साथ विचरते हुए पंजाब पधारे। सभी ने आचार्य शिरोमणि के दर्शन किए और सामाजिक उत्थान की चर्चा की। सभी के मन में यह इच्छा थी कि कोई ठोस कार्य करना चाहिए।

अध्ययन होता है। उसके लिए हमें खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। हमें योग्य विद्यार्थियों को चुन कर यहाँ रखना चाहिए और उन्हें भोजन स्थान आदि की पूरी सुविधा देनी चाहिए।

समिति के प्रतिनिधिमण्डल को यह बात जँच गई और १९३७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम के रूप में जैन सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना हो गई। काशी भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है। उन के समय से लेकर आज तक का जैन परम्परा का इतिहास अक्षुण्ण है। इस लिए इस केन्द्र के साथ भगवान् पार्श्वनाथ का नाम विशेष महत्व रखता है।

विद्याश्रम की स्थापना के समय इसका कार्य शास्त्री, आचार्य तथा एम०ए० में जैन दर्शन लेकर अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना था। किन्तु धीरे धीरे उसने जैन साहित्य के अनुशीलन को मुख्य ध्येय बना लिया है।

समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जी ने इसके लिए अपने परिवार तथा मित्रों के सहयोग से अपने बड़े भाई लाला रतनचन्द जी की स्मृति में रतनचन्द जैन फलोशिप की स्थापना की है। इस के द्वारा एक रिसर्च फलोशिप की स्थायी व्यवस्था की गई है। इस के अन्तर्गत 'जैन ज्ञानमीमांसा" पर महानिबन्ध लिखा गया और उस पर श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री को Ph. D. की डिग्री मिल चुकी है। उसी के अन्तर्गत अब श्री मोहनलाल मेहता 'जैन मनोविज्ञान' पर अनुशीलन कर रहे हैं।

समिति को अपने इस कार्य में अन्य महानुभावों से भी सहायता मिली है, जिस से नीचे लिखे अनुसार फलोशिप दिए गए —

१—कलकत्ते के प्रसिद्ध दानवीर बाबू राजेन्द्रसिंह जी व नरेन्द्रसिंह जी सिंधी ने १५०) रु० मासिक की एक छात्रवृत्ति प्रदान की। उसके अन्तर्गत श्री गुलाबचन्द्र चौधरी ने आगमोत्तरकालीन प्रबन्ध साहित्य के आधार पर सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति पर अनुशीलन किया है। आपने अपना महानिबन्ध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया है। परिणाम की प्रतीक्षा है।

२—बम्बई निवासी सेठ श्री छोटालाल केशवजी शाह ने ५,०००) रु० देकर एक फलोशिप प्रदान की। उसके अन्तर्गत श्री दिमलदास जैन ज्ञान की सापेक्षता पर अनुशीलन कर रहे हैं।

इसी प्रकार श्र० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस व बम्बई संघ की ओर से एक फेलोशिप के लिए ५०००) रु० प्रदान किए हैं।

१८ श्री दौलतराम जैन, जालन्धर ।
१९ श्री विद्याप्रकाश जैन, अम्बाला ।
२० श्री शोरीलाल, कपूरथला ।
२१ श्री रतनचन्द्र जैन, M A , लुधियाना और
२२ श्री अमृतलाल जैन, B A , LL B , कलकत्ता ।

(ग) सम्मानित सदस्य (आनरेरी मेम्बर)

१ डॉ० मंगलदेव शास्त्री, M A D Phil Ex Principal and Registrar, Government Sanskrit College Banaras
२ डॉ० बी० एल० आत्रेय, M A D Litt K C K T, युनिवर्सिटी प्रोफेसर आफ फिलासाफी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
३ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रोफेसर ऑफ आर्ट एण्ड आर्कोलोजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
४ डॉ० आर० सी० मजूमदार,
५ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रधान हिन्दी विभाग, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
६ डॉ० पी० एल० वैद्य, पूना M A , D Litt , मयूरभंज प्रोफेसर ऑफ संस्कृत एण्ड पाली, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
७ डा० मूलचन्द, M A Ph D I A S , Secretary, Education and Local Self Government, Madhya Bharata (Gwalior)
८ पण्डित सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद ।
९ डॉ० नथमल टाटिया, M A ,D Litt , नालन्दा पाली इन्स्टीटयूट ।
१० डॉ० राजबली पाण्डे, M A , D Litt , College of Indology, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
११ श्री कुन्दनमल सोभागचन्द फिरोदिया, B A , LL B , Ex. Speaker, Bombay Legislative Assembly अहमदनगर

१८ श्री दौलतराम जन, जालन्धर ।
१९ श्री विद्याप्रकाश जन, अम्बाला ।
२० श्री शोरीलाल, कपूरथला ।
२१ श्री रतनचन्द्र जन, M A, लुधियाना और
२२ श्री अमृतलाल जन, B A, LL B, कलकत्ता ।

(ग) सम्मानित सदस्य (आनरेरी मेम्बर)

१ डॉ० मगलदेव शास्त्री, M A, D Phil, Ex Principal and Registrar, Government Sanskrit College, Banaras

२ डॉ० बी० एल० आत्रेय, M A D Litt, K C K.T, युनिवर्सिटी प्रोफेसर आफ फिलोसाफी, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी ।

३ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रोफेसर ऑफ आर्ट एण्ड आर्कियालोजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।

४ डॉ० आर० सी० मजूमदार,

५ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रधान हिन्दी विभाग, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।

६ डॉ० पी० एल० वद्य, पूना M A, D Litt नयूरभज प्रोफेसर आफ सस्कृत एण्ड पाली, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।

७ डा० बूलचन्द, M A, Ph D, I A S Secretary, Education and Local Self Government, Madhya Bharata (Gwalior)

८ पण्डित सुखलालजी सघवी, अहमदाबाद ।

९ डॉ० नथमल टाटिया, M.A D Litt, नालन्दा पाली इन्स्टीट्यूट ।

१० डॉ० राजबली पाण्डे, M A, D Litt, College of Indology, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।

११ श्री कुन्दनमल सोभागचन्द फिरोदिया, B A, LL B, Ex Speaker, Bombay Legislative Assembly अहमदनगर

जैन साहित्य के विषय में अजैन विद्वानों की दृष्टियाँ

भारतीय भाषाएं और जैन साहित्य

प्रो० विंटर निज

The literature of the Jainas is also very important from the point of view of the history of the Indian languages for the Jainas always took care that their writings were accessible to considerable masses of the people Hence the canonical writings and the earliest commentaries are written in Prakrit dialects (Magadhi or Maharastri) It was not until a later period that the Jainas—the Swetambaras from the 8th century, and the Digambaras somewhat earlier used Sanskrit for commentaries and learned works as well as for poetry Some of these authors write a simple, lucid Sanskrit, others compete with the classical Sanskrit poets in their use of an elaborate Sanskrit in the Kavya style, whilst yet others affect a Sanskrit spot with Prakritisms, approaching the vernacular At a later time from the 10th to 12th century there is a return of poetry to the Apabhramsa dialects adopted to the vernacular Lastly, in quite recent times the Jainas also use various Modern Indian Languages and they have enriched more especially Gujarati and Hindi literatures, as well as Tamil and Kanarese literatures in the south

authoritative volume may be available to earnest inquirers This will not only stimulate the Jain themselves but also give an impetus to those who are anxious to compare the results so far achieved in the Hindu and Buddhist branches of iconography, with those of the Jaina religious systems After all, all the three religions being indigenous to India have many things in common, and it is to our utmost advantage to know how far the three systems agree with one another in order to appreciate how far they differed Thus study of iconography, when carried to its logical extreme, thus helps to re establish cultural unity that existed in olden days, and remove many misunderstandings that may have arisen in recent years

हिन्दू, बौद्ध और जैन भारत के तीन प्रधान और प्राचीन धार्मिक मतों के कारण मूर्तिविद्या का अध्ययन क्षेत्र भी तीन विभागों में विभाजित हो जाता है। हिन्दू और बौद्ध मूर्तिविद्या के क्षेत्र में बहुत कुछ काम किया जा चुका है पर जैन मूर्तिविद्या के क्षेत्र में आज तक कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई कि जिसमें थोड़ा बहुत परिचय मात्र प्राप्त किया जा सके। ज्यों ज्यों जैन धर्म के अध्ययन में प्रगति होती जा रही है, जैन मन्दिरों, स्मारकों, मूर्तियों आदि का खोज काय बढ़ता जा रहा है। इस बात की भी आवश्यकता है कि विद्वानों का ध्यान मूर्ति विद्या के इस विभाग की ओर भी जाए और वे इस विषय के एक प्रामाणिक परिचयात्मक ग्रंथ का निर्माण करें जिससे इस विषय के जिज्ञासुओं को कुछ लाभ हो। इससे केवल जैनों का ही प्रोत्साहन नहीं मिलेगा पर उन लोगों को भी प्रेरणा मिलेगी जो मूर्तिविद्या की हिन्दू बौद्ध और जैन शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन के इच्छुक हैं और इस काय में रुचि लेते हैं। जो कुछ भी हो, तीनों ही धर्मों का जन्म भारत में होने के कारण आपस में बहुत ही मनोरंजक विषय होगा कि इन तीनों सिद्धान्तों में कहाँ तक समानता और कहाँ तक असमानता है। जब तक तात्त्विक दृष्टि से मूर्तिविद्या का अध्ययन किया जाएगा तो उससे प्राचीन काल में स्थापित सांस्कृतिक एकता के पुन स्थापन में सहायता मिलेगी। और इधर कुछ वर्षों में इस विषय में लोगों की जो भ्रान्त धारणाएँ हो गई हैं, वे दूर होंगी।

नए वर्ष में प्रवेश

इस अंक के साथ 'श्रमण' अपने पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। जन्म से लेकर आज तक यह अपनी नीति पर स्थिर है और श्रमण परम्परा के उज्ज्वल प्रकाश को घर घर फैलाने का प्रयत्न कर रहा है। प्रचण्ड आघात हुए, भयङ्कर तूफान उठे, फिर भी यह ज्योति न बुझी, न पथभ्रष्ट हुई। एक एक कदम दृढ़तापूर्वक रखती हुई आगे बढ़ती गई। प्रत्येक कदम ने इसे नए प्राण दिए, नई शक्ति दी। यही श्रमण की गौरवगाथा है।

पिछले कुछ मास से इसने समाज की साहित्य चेतना को जागृत करने की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर ने साहित्य निर्माण की जो विशाल योजना उठाई है उसकी ओर जैन समाज का लक्ष्य खींचने के साथ साथ इसने साहित्य संस्थाओं के सामने उपयोगी कार्य क्रम भी उपस्थित किया है। जैन साहित्य कितना विशाल तथा समृद्ध है यह पिछले कुछ अंकों से बताया जा रहा है। इसके पीछे बड़े बड़े तपस्वी एवं ज्ञानियों की तीन हजार वर्ष लम्बी साधना है। पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक विशाल आर्यावर्त इस साधना का केन्द्र रहा है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, तामिल, कन्नड़ आदि भारत की प्रायः सभी ऐतिहासिक भाषाओं में यह दिव्य स्रोत बहा है। भारतीय मस्तिष्क की ऊँची उड़ान के साथ साथ इसने लोक जीवन को भी चित्रित किया है। इसने हमारी त्याग और तपस्या की परम्परा को अक्षुण्ण बनाया है। अहिंसा की महान ज्योति को प्रज्वलित रखा है।

भारतीय मस्तिष्क की इस गौरवपूर्ण देन को सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करना एक महान् कार्य है। इसके लिए विविधरूपी प्रयत्न तथा अनेक शक्तियों के केन्द्रित होने की आवश्यकता है। श्री सो० जै० धर्म प्रचारक समिति ने उपरोक्त समस्त साहित्य का परिचय देने के लिए एक इतिहास ग्रन्थ तैयार करने का निश्चय किया है। इसके लिए जैन साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया है। योजना के अनुसार सन् १९५५ के अन्त तक यह ग्रन्थ जनता के सामने आ जाना चाहिए। यह

साहित्य निर्माण समिति का सौभाग्य है कि उसे इन दृष्टि-सम्पन्न महापण्डितों का मार्गदर्शन ही नहीं सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है।

हम चाहते हैं यह विद्वन्मण्डल एक स्थायी रूप धारण कर ले और प्रति वर्ष या दो वर्ष के पश्चात् इसके अधिवेशन होते रहें। इसमें जैन साहित्य की गतिविधि पर समीक्षा करते हुए भविष्य के लिए साहित्य निर्माण की योजना बनाई जाय। प्रयत्न किया जाय कि अधिक से अधिक प्रकाशन संस्थाएँ विद्वन्मण्डल से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लें और जैन साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए इससे मार्ग दर्शन लें। इससे विशृंखलित एवं अनुपयोगी साहित्य के प्रकाशन में जो धन तथा शक्ति का अपव्यय हो रहा है वह बच जायगा और उसे प्रामाणिक साहित्य के प्रकाशन में लगाया जा सकेगा। विद्वन्मण्डल द्वारा प्रमाणित साहित्य प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त कर सकेगा।

इसका आयोजन ओरिएण्टल कान्फरेंस के साथ किया जा सकता है और स्वतन्त्र रूप में भी। प्रत्येक अधिवेशन में लगभग पाँच हजार का व्यय होगा, किन्तु यह कार्य को देखते हुए अधिक नहीं है।

विद्वन्मण्डल का महत्व एक और दृष्टि से भी है। विभिन्न सम्प्रदायों में बँटे हुए जैन समाज के लिए यह एक शुभ लक्षण है। विद्वानों द्वारा उपस्थित किया गया यह एकता का आदर्श समस्त समाज पर प्रभाव डाले बिना न रहेगा। यदि समस्त समाज के लिए एक साहित्य का निर्माण होने लगे और विद्वान् एक साथ बैठ कर साम्प्रदायिक भेद भाव को भुला दें तो साम्प्रदायिक झगड़ों का अन्त शीघ्र ही आ सकता है। इस प्रकार के शुभ आयोजन के लिए श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति को बधाई है।

चातुर्मास की समाप्ति से पहले

कार्तिक-पूर्णिमा को चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और उसके दूसरे दिन जैन-साधु विहार कर देंगे। इसके बाद आठ मास तक वे बराबर भ्रमण करते रहेंगे। कहीं दो दिन ठहरेंगे, कहीं चार दिन अधिक से अधिक एक महीना। ऐसे अवसर पर यदि वे अपने सामने एक लक्ष्य रख कर, एक योजना बनाकर चलें तो धर्म की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं।

स्थानकवासी समाज ने डेढ़ वर्ष पहले एक क्रान्ति की। अवान्तर साम्प्रदायिक भेदों को त्यागकर अखण्ड एकता स्थापित की। अब समय आ गया है कि उस एकता से पूरा लाभ उठाया जाय। इसके लिए उन्हें एक

साहित्य निर्माण समिति का सौभाग्य है कि उसे इन दृष्टि-सम्पन्न महापण्डितो का मार्गदर्शन ही नहीं सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है ।

हम चाहते है, यह विद्वमण्डल एक स्थायी रूप धारण कर ले और प्रति वर्ष या दो वर्ष के पश्चात इसके अधिवेशन होते रहें। इसमें जैन साहित्य की गतिविधि पर समीक्षा करते हुए भविष्य के लिए साहित्य निर्माण की योजना बनाई जाय। प्रयत्न किया जाय कि अधिक से अधिक प्रकाशन संस्थाएँ विद्वमण्डल से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लें और जन साहित्य के निर्माण एव प्रकाशन के लिए इससे मार्ग दर्शन लें। इससे दिग्भ्रमित एव अनुपयोगी साहित्य के प्रकाशन में जो धन तथा शक्ति का अपव्यय हो रहा है वह बच जायगा और उसे प्रामाणिक साहित्य के प्रकाशन में लगाया जा सकेगा। विद्वमण्डल द्वारा प्रमाणित साहित्य प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त कर सकेगा।

इसका आयोजन ओरिएण्टल कान्फरेंस के साथ किया जा सकता है और स्वतन्त्र रूप में भी। प्रत्येक अधिवेशन में लगभग पाँच हजार का व्यय होगा, किन्तु यह कार्य को देखते हुए अधिक नहीं है।

विद्वमण्डल का महत्व एक और दृष्टि से भी है। विभिन्न सम्प्रदायों में बटे हुए जन समाज के लिए यह एक शुभ लक्षण है। विद्वानों द्वारा उपस्थित किया गया यह एकता का आदर्श समस्त समाज पर प्रभाव डाले बिना न रहेगा। यदि समस्त समाज के लिए एक साहित्य का निर्माण होने लगे और विद्वान् एक साथ बैठ कर साम्प्रदायिक भेद भाव को भुला दें तो साम्प्रदायिक झगड़ों का अन्त शीघ्र ही आ सकता है। इस प्रकार के शुभ आयोजन के लिए श्री सोहन लाल जन धर्म प्रचारक समिति को बधाई है।

चातुर्मास की समाप्ति से पहले

कार्तिक-पूर्णिमा को चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और उसके दूसरे दिन सन्त-साधु विहार कर देंगे। इसके बाद आठ मास तक ये बराबर भ्रमण करते रहेंगे। कहीं दो दिन ठहरेंगे कहीं चार दिन अधिक से अधिक एक महीना। ऐसे अवसर पर यदि वे अपने सामने एक लक्ष्य रख कर, एक योजना बनाकर चलें तो धर्म की बहुत बडी सेवा कर सकते है।

स्थानकवासी समाज ने डेढ़ वर्ष पहले एक क्रान्ति की। अवान्तर साम्प्रदायिक भेदों को त्यागकर अखण्ड एकता स्थापित की। अब समय आ गया है कि उस एकता से पुरा लाभ उठाया जाय। इसके लिए उन्हें एक

श्री जैन साहित्य-निर्माण योजना

उपक्रम

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर की ओर से बनारस में पार्श्वनाथ विद्याश्रम नाम की संस्था कई वर्षों से चल रही है। विद्याश्रम ने धीरे धीरे एक अनुशीलनपीठ का रूप धारण कर लिया है और प्रतिभाशाली विद्यार्थी एवं विद्वानों को जैन साहित्य के विविध अङ्गों का अनुशीलन करने के लिए प्रोत्साहित करना अपना मुख्य ध्येय बना लिया है। इसी की सहायक प्रवृत्तियों के रूप में विद्याश्रम के पास श्री शतावधानी रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय है, जिसमें अनुशीलन की दृष्टि से उपयोगी साहित्य का संग्रह किया जाता है। साथ ही श्रमण नाम का मासिक पत्र है जो सर्वसाधारण को श्रमण परम्परा का परिचय देता है और विद्याश्रम की चेतना का परिवहन करता है।

लगभग एक वर्ष हुआ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जैन का ध्यान जैन साहित्य के आधार भूत ग्रन्थ तैयार करने की ओर आकृष्ट किया। उसमें नीचे लिखे ग्रन्थों की ओर विशेष लक्ष्य था —

१ व्यक्तिवाचक शब्द कोश (Dictionary of Propor Namos)—लङ्का निवासी डॉ० मलाल शेखर ने पाली भाषा का व्यक्तिवाचक शब्दकोश तैयार किया है। उससे विद्वानों को बौद्ध साहित्य का अध्ययन सुगम हो गया है। उसी पद्धति पर अर्द्धमागधी, प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा के समस्त जैन साहित्य में आए हुए इतिहास, भूगोल आदि विषयों से सम्बन्ध रखने वाले समस्त व्यक्तिवाचक शब्दों का परिचय देनेवाला कोश तैयार करना। इसके लिए कम से कम चार विद्वानों को चार वर्ष तक निरन्तर काम करना होगा। इसके निर्माण में लगभग ५००००) पचास हजार रुपए खर्च होंगे और उसके बाद प्रकाशन के लिए २५०००) पचीस हजार की आवश्यकता होगी।

२—जैन दर्शन और धर्म का क्रमबद्ध इतिहास (History of Jain Thought and Religion)—जिस प्रकार सर राधाकृष्णन् ने हिस्ट्री ऑफ

प्रथम खण्ड—मूल आगम तथा उनकी व्याख्यायें पृ० सं० ८००

अध्याय एवं प्रकरण

प्रथम उपखण्ड—प्रस्तावना पृ० सं० १००

१ प्रकरण—श्रमण परम्परा और जैन आगम। पृ० १५
२ प्रकरण—आगमों की भाषा। पृ० ३०
३ प्रकरण—आगमों का समय और संकलन। पृ० ४०
४ प्रकरण—आगमों का विभाजन। पृ० १५

द्वितीय उपखण्ड—मूल आगम पृ० सं० ३८५

१ अध्याय—बारह अंग। इसमें बारह प्रकरण होंगे। पृ० १५०
२ अध्याय—बारह उपांग। इसमें सात प्रकरण होंगे। प्रथम चार उपांगों के चार, तीन प्रज्ञप्तियों का एक और कल्पियाँ आदि पाँच लघु उपांगों का एक। पृ० १०५
३ अध्याय—चार मूल सूत्र। इसमें चार प्रकरण रहेंगे। पृ० ४०
४ अध्याय—छः छेदसूत्र। इसमें छः प्रकरण रहेंगे। पृ० ४०
५ अध्याय—दस प्रकीर्णक। पृ० २५
६ नन्दी और अनुयोग द्वार। पृ० २५

तृतीय उपखण्ड—आगमों का व्याख्यात्मक साहित्य पृ० ३१५

१ अध्याय—निर्युक्तियाँ। इसमें दस निर्युक्तियों के दस प्रकरण रहेंगे। पृ० १००
२ अध्याय—भाष्य। इसमें छः भाष्यों के छः प्रकरण रहेंगे। पृ० १०५
३ अध्याय—चूर्णियाँ। पृ० २५
४ अध्याय—टीकाएं। पृ० ७५
५ अध्याय—हिन्दी तथा अन्य लोक भाषाओं में रचित व्याख्याएं। पृ० १०

द्वितीय खण्ड—कर्मप्राभृत और कषाय प्राभृत पृ० २००

प्रथम अध्याय—कर्म प्राभृत (षट्खण्डागम) पृ० १२०

१ प्रकरण—कर्मप्राभृत की आगमिक परम्परा। पृ० ८
२ प्रकरण—सूत्र और उसकी टीकाओं के रचयिता और उनका रचना काल। पृ० ८

द्वितीय अध्याय—कषाय प्राभृत (पेज्जदोस पाहुड) पृ० ८०

तृतीय खण्ड—[illegible] साहित्य पृ० ८०

चतुर्थ खण्ड—आगामिक प्रकरण पृ० २४०

द्वितीय भाग—दार्शनिक और लाक्षणिक साहित्य

प्रथम खण्ड—दार्शनिक साहित्य पृ० ३८०

सम्पादक—प्रो० दलसुख भाई मालवणिया

चतुर्थ खण्ड राजस्थानी जैन साहित्य पृ० ८०

१ अध्याय—भूमिका

(१) राजस्थान का क्षेत्रविस्तार।

(२) राजस्थान से जैन धर्म का सम्बन्ध।

(३) राजस्थान में जैनग्रन्थों की रचना का प्रारम्भ।

(४) राजस्थानी भाषा का विकास।

(५) राजस्थानी जैन साहित्य का विकास।

(६) राजस्थानी जैन साहित्य का महत्व—प्रचार, विविधता, विशालता, विशेषता।

(७) राजस्थानी जैन साहित्य की देन—खरतर गच्छ, श्वेताम्बर साधु, स्थानक वासी तथा तेरापंथी आदि का आविर्भाव एवं परिचय।

२ अध्याय—राजस्थानी पद्य साहित्य के निर्माता जैन कवि व उनके ग्रंथ।

(१) प्रारम्भ काल—तेरहवीं से सोलहवीं सदी का प्रारम्भ (प्राचीन गुजराती और राजस्थानी की एकता)

(२) उत्थान काल—सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी।

(३) अवनति काल—उन्नीसवीं से बीसवीं का पूर्वार्द्ध।

३ अध्याय—राजस्थानी गद्य के निर्माता व उनकी रचनाएं।

(१) गद्य का प्रारम्भ व प्रकार।

१४ वीं से १६ वीं का पूर्वार्द्ध।

(२) १७ वीं से बीसवीं का पूर्वार्द्ध।

३ अध्याय—उपसंहार

पंचम खण्ड कन्नड जैन साहित्य पृ० ४०

१—अध्याय—भूमिका।

(१) कन्नड की प्राचीनता (प्रान्त की प्राचीनता, भाषा की प्राचीनता और साहित्य की प्राचीनता)

(२) कन्नड से जैन धर्म का सम्बन्ध—प्रान्त एवं भाषा दोनों का।

(३) कन्नड जैन ग्रन्थों की रचना का प्रारम्भ।

(४) कन्नड जैन साहित्य की दृष्टि, विशालता, विविधता तथा विशेषता।

(५) कन्नड जैन साहित्य की देन।

(६) कन्नड जैन साहित्य के साहित्यकार।

(पृष्ठ ३२ से आगे)

११—जोधपुर में बड़े बड़े साधु एकत्रित होकर समस्त समाज की एक समाचारी बना रहे हैं। किन्तु हमारा निवेदन है कि समाज-संगठन के इस प्रश्न की ओर भी ध्यान देना चाहिए। समाचारी एक होने तक इसे स्थगित नहीं रखना चाहिए।

१२—जिन साधुओं पर साहित्य निर्माण का उत्तर-दायित्व हो उन्हें इस कार्य के लिए अन्य झंझटों से मुक्त कर दिया जाय। उन्हें किसी ऐसे स्थान में भेज देना चाहिए जहाँ बैठ कर वे निर्विघ्न रूप से साहित्य-सर्जन कर सकें।

१३—आशा है, श्रमण संघ के कर्णधार चातुर्मास समाप्त होने से पहले ही इन बातों का निश्चय कर लेंगे। जिससे विहार के समय उस योजना को व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का शुभ निश्चय

भारत की प्रतिदिन बढ़ती हुई बेकारी को दूर करने के लिए हमारी केन्द्रीय सरकार ने चालीस हजार नए अध्यापक नियुक्त करने की घोषणा की है। जैन समाज के बेकार नवयुवकों को इस घोषणा का लाभ पहुंचाने के लिए अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस ने निश्चय किया है कि उन्हें स्थान दिलाने का यथा शक्ति प्रयत्न किया जाय। कान्फरेंस के अधिकारी अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रभाव द्वारा इसे सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे। जो सज्जन इससे लाभ उठाना चाहते हों वे नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें —

मन्त्री—अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फरेंस।
१३९० चांदनी चौक, देहली।

श्रमण

वर्ष ५ | 15-12-53 सम्पादक डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम ए, पी-एच डी | अंक [illegible]

जुदी जुदी अपेक्षा से भाण्डारों का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है। इतना ध्यान में रहे कि यह वर्गीकरण स्थूल है।

प्राचीनता की दृष्टि से तथा चित्रपट्टिका एवं अन्य चित्र समृद्धि की दृष्टि से और संशोधित तथा शुद्ध किए हुए आगमिक साहित्य की एवं तार्किक दार्शनिक साहित्य की दृष्टि से—जिसमें जैन परम्परा के अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध परम्पराओं का भी समावेश होता है—पाटन, खम्भात और जेसलमेर के ताडपत्रीय संग्रह प्रथम आते हैं। इनमें जेसलमेर का खरतर-आचार्य श्रीजिनभद्रसूरि संस्थापित ताडपत्रीय भाण्डार प्रथम ध्यान खींचता है। नवीं शताब्दी वाला ताड़पत्रीय ग्रन्थ विशेषावश्यक महाभाष्य जो लिपि, भाषा और विषय की दृष्टि से महत्त्व रखता है वह पहले पहल इसी संग्रह में से मिला है। इस संग्रह में जितनी और जैसी प्राचीन चित्रपट्टिकाएँ तथा इतर पुरानी चित्रसमृद्धि है उतनी पुरानी और वैसी किसी एक भाण्डार में लभ्य नहीं। इसी ताडपत्रीय संग्रह में जो आगमिक ग्रन्थ हैं वे बहुधा संशोधित और शुद्ध किए हुए हैं। वैदिक परम्परा के विशेष शुद्ध और महत्त्व के कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो इस संग्रह में हैं। इसमें सांख्यकारिका परका गौडपाद भाष्य तथा इतर वृत्तियाँ हैं। योगसूत्र के ऊपर की व्यासभाष्य सहित तत्त्ववैशारदी टीका है। गीता का शांकरभाष्य और श्रीहर्ष का खण्डनखण्डखाद्य है। वैशेषिक और न्यायदर्शन के भाष्य और उनके ऊपर की क्रमिक उदयनाचार्य तक की सब टीकाएँ मौजूद हैं। न्यायसूत्र ऊपर का भाष्य, उसका वार्तिक वार्तिक परकी तात्पर्यटीका और तात्पर्यटीका पर तात्पर्यपरिशुद्धि तथा इन पाँचों ग्रन्थों के ऊपर विषमपदविवरणरूप 'पंचप्रस्थान' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ इसी संग्रह में है। बौद्ध परम्परा के महत्त्वपूर्ण तर्क ग्रन्थों में से सटीक सटिप्पण न्यायबिन्दु तथा सटीक सटिप्पण तत्त्वसंग्रह जैसे कई ग्रन्थ हैं। यहाँ एक वस्तु की ओर मैं खास निर्देश करना चाहता हूँ। जो संशोधकों के लिये उपयोगी है। अपभ्रंश भाषा के कई अप्रकाशित तथा अन्यत्र अप्राप्य ऐसे बारहवीं शती के बड़े बड़े कथा-ग्रंथ इस भाण्डार में हैं, जैसे कि विलासवईकहा, अरिट्ठनेमिचरिउ इत्यादि। इसी तरह छन्द विषयक कई ग्रन्थ हैं जिनकी नकलें पुरातत्त्वकोविद श्री जिनविजयजी ने जेसलमेर में जाकर कराई थी। उन्हीं नकलों के आधार पर प्रोफेसर वेलिनकरने उनका प्रकाशन किया है।

खम्भात के श्रीशान्तिनाथ ताडपत्रीय-ग्रन्थभाण्डार की दो-एक विशेषताएँ ये हैं। उनमें चित्र समृद्धि तो है ही, पर गुजरात के सुप्रसिद्ध मंत्री और

जसे ताडपत्रीय ग्रन्थों पर मिलते ह वसे ही कागज के ग्रन्थों पर भी ह। इसी तरह कागज तथा कपडे पर आलिखित अलंकारखचित विज्ञप्तिपत्र, चित्रपट भी बहुतायत से मिलते ह, पाठे (पढ़ते समय पन्ने रखने तथा प्रताकार ग्रंथ बाँधने के लिये जो दोनों ओर गत्त रख जाते ह—पुट्ठे), डिब्बे आदि भी सचित्र तथा विविध आकार के प्राप्त होते ह। डिब्बा की एक खूबी यह भी हं कि कि उनमें से कोई चमजटित ह, कोई वस्त्रजटित ह तो कोई कागज से मढ़े हुए हैं। जसी आजकल की छपी हुई पुस्तकों की जिल्दों पर रचनाएँ देखी जाती ह वसी इन डिब्बों पर भी ठप्पों से—साँचों से ढाली हुई अनेक तरह की रंग बिरंगी रचनाएँ हैं।

ऊपर जो परिचय दिया गया ह यह मात्र दिग्दर्शन ह जिस से प्रस्तुत प्रदर्शनी में उपस्थित की हुई नानाविध सामग्री की पूर्वभूमिका ध्यान में आ सके। यहाँ जो सामग्री रखी गई हं वह उपयुक्त भाण्डारोंमें से नमूने के तौर पर थोड़ी थोडी एकत्र की ह। जिन भाण्डारों का मने ऊपर निर्देश नहीं किया उनमें से भी ध्यान खींचे ऐसी अनेक कृतियाँ प्रदर्शनी में लाई गई ह, जो उस उस कृति के परिचायक कार्ड आदि पर निर्दिष्ट ह।

ताड़पत्र, कागज, कपडा आदि पर किन साधनों से किस किस तरह लिखा जाता था?, ताडपत्र तथा कागज कहाँ कहाँ से आते थे? वे कसे लिखने लायक बनाए जाते थे?, सोने, चाँदी की स्याही तथा इतर रंग कसे तयार किए जाते थे?, चित्र की तूलिका आदि कसे होते थ?[३] इत्यादि बातोंका यहाँ तो में संक्षेप में ही निर्देश करूँगा। बाकी, इस बारे में मने अन्यत्र विस्तार से लिखा ह।

वि० ५००—६००

२० भद्रबाहु (द्वितीय)
२१ शिवार्य (शिवनन्दी) यापनीय
२२ वट्टकेर
२३ यति वृषभ
२३ पूज्यपाद

वि० ६०० शतक

२४ देवर्द्धि गणी
२५ मल्लवादी
२६ चन्द्रर्षि महत्तर
२७ संघदास क्षमाश्रमण

वि० ७००

२८ जिनभद्र क्षमाश्रमण
२९ कोट्याचार्य
३० सिंहगणि (सिंहसूर)
३१ जिनदास महत्तर (चूर्णिकार)
३२ समन्तभद्र

वि० ८००

३३ हरिभद्र सूरि
३४ हरिषेण
३५ स्वयम्भू
३६ अकलङ्क

वि० ९००

३७ उद्योतनसूरि
३८ आचार्य जिनसेन
३९ वीरसेन
४० जिनसेन
४१ शाकटायन
४२ धनञ्जय
४३ विद्यानन्द

वि० १०००

४४ शीलाङ्काचार्य
४५ सिद्धर्षि
४६ विजयसिंह सूरि
४७ हरिषेण
४८ कवि पम्प
४९ कवि पोन्न
५० देवसेन
५१ माणिक्यनन्दी
५२ अनन्तवीर्य

वि० ११००

५३ अभयदेव सूरि
५४ पुष्पदन्त महाकवि
५५ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
५६ श्रीचन्द्र
५७ प्रभाचन्द्र
५८ वादिराज सूरि
५९ मल्लिषेण
६० वसुनन्दी
६१ हरिश्चन्द्र
६२ सोमदेव
६३ अनन्तकीर्ति
६४ अमितगति
६५ श्रीपति भट्ट
६६ वर्धमान सूरि
६७ शान्तिसूरि वादिवेताल
६८ जिनेश्वर सूरि
६९ बुद्धिसागर सूरि
७० महाकवि धवल
७१ नयनन्दी

वि० १२००

७२ अभयदेव सूरि
७३ मुनिचन्द्र सूरि
७४ वादिदेव सूरि (११४३–१२२६)

जैन साहित्य का सिंहावलोकन

डॉ० [illegible]

जैन साहित्य के गतिशील चित्रपट पर अनेक प्रतिभाशाली, तपस्वी, देदीप्यमान साहित्यिकों के नाम उज्ज्वल नक्षत्र पुञ्जों के समान हमारे दृष्टिपथ में आते हैं। उनके उदात्त चरित्र और साहित्यिक कृतियों का उल्लेख जैन साहित्य के इतिहास में यथास्थान देखने को मिलेगा। ऐसे कुछ दिग्गज विद्वानों की एक तालिका यहाँ प्रस्तुत की जाती है जिससे विदित होगा कि विद्वानों की यह शृंखला कितनी दीर्घ, पुष्ट और समृद्ध है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकों लेखक हैं जिनके नाम और कृतियों का समावेश इतिहास के पृष्ठों में किया जायगा।

जैन साहित्य के युग निर्माता

वि० पू० ७२०

१ भगवान पार्श्वनाथ (२३ वें तीर्थंकर)

वि० पू० ४७०

२ भगवान् महावीर (२४वें तीर्थंकर)
३ गौतमस्वामी (प्रथम गणधर)
४ सुधर्मा स्वामी (पंचम गणधर)
५ जम्बू स्वामी (अन्तिम केवली)

वि० पू० ४२४—३७२

६ शय्यम्भव सूरि

वि० पू० ३००

७ भद्रबाहु (प्रथम)

वि० पू० १३६—९४

८ श्यामाचार्य

वि० सं० २००

९ आर्यरक्षित
१० पादलिप्त सूरि
११ गुणाढ्य

वि० २००—३००

१२ गुणधर
१३ पुष्पदन्त
१४ भूतबलि
१५ कुन्दकुन्द
१६ विमल

वि० ३००

१७ शिवशर्म सूरि
१८ उमास्वाति

वि० ४००—५००

१९ सिद्धसेन दिवाकर

वि० ५००—६००
२० भद्रबाहु (द्वितीय)
२१ शिवाय (शिवनन्दी) यापनीय
२२ वट्टकेर
२३ यति वृषभ
२३ पूज्यपाद
वि० ६०० शतक
२४ देवर्द्धि गणी
२५ मल्लवादी
२६ चन्द्रर्षि महत्तर
२७ संघदास क्षमाश्रमण
वि० ७००
२८ जिनभद्र क्षमाश्रमण
२९ कोट्याचार्य
३० सिंहगणि (सिंहसूर)
३१ जिनदास महत्तर (चूर्णिकार)
३२ समन्तभद्र
वि० ८००
३३ हरिभद्र सूरि
३४ हरिषेण
३५ स्वयम्भू
३६ अकलङ्क
वि० ९००
३७ उद्योतनसूरि
३८ आचार्य जिनसेन
३९ वीरसेन
४० जिनसेन
४१ शाकटायन
४२ धनञ्जय
४३ विद्यानन्द
वि० १०००
४४ शीलाङ्काचार्य
४५ सिद्धर्षि
४६ विजयसिंह सूरि
४७ हरिषेण
४८ कवि पम्प
४९ कवि पोन्न
५० देवसेन
५१ माणिक्यनन्दी
५२ अनन्तवीर्य
वि० ११००
५३ अभयदेव सूरि
५४ पुष्पदन्त महाकवि
५५ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
५६ श्रीचन्द्र
५७ प्रभाचन्द्र
५८ वादिराज सूरि
५९ मल्लिषेण
६० वसुनन्दी
६१ हरिश्चन्द्र
६२ सोमदेव
६३ अनन्तकीर्ति
६४ अमितगति
६५ श्रीपति भट्ट
६६ वर्धमान सूरि
६७ शान्तिसूरि वादिवेताल
६८ जिनेश्वर सूरि
६९ बुद्धिसागर सूरि
७० महाकवि धवल
७१ नयनन्दी
वि० १२००
७२ अभयदेव सूरि
७३ मुनिचन्द्र सूरि
७४ वादिदेव सूरि (११४३-१२२६)

१२८ विनयविजय उपाध्याय
१२९ सुंदरदास
१३० भट्टारक शुभचन्द्र

वि० १८००

१३१ आनंदघन
१३२ यशोविजय उपाध्याय (दीक्षा १६८८, स्वर्ग १७४३)
१३३ पांडे हेमराज
१३४ खुशालचन्द्र काला
१३५ भूधरदास
१३६ द्यानतराय
१३७ दौलतराम जी
१३८ टोडरमल
१३९ मेघ विजय
१४० यशस्वत्सागर
१४१ क्षमाकल्याण उपाध्याय
१४२ विजय राजेन्द्र सूरि

वि० १९००

१४३ टोडरमल
१४४ जयचन्द्र जी
१४५ वृन्दावन दास

वि० २०००

१४६ प० रत्नचन्द्र जी महाराज
१४७ प० हरगोविन्द दास
१४८ मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

प्रमुख कृतियाँ

वि० पू० ४७० से पहले

चौदह पूर्व

वि० पू० ४७० से वि० ५१० तक

वर्तमान आगम

वि० २००

तरंगवती (कथा)
बृहत्कथा (गुणाढ्य)

वि० २००—३००

कषाय पाहुड
षट्खण्डागम
प्रवचन सार
समयसार
नियमसार
पउम चरिय (कथा)

वि ३००

कम्मपयडी शतक कर्मग्रन्थ
तत्त्वार्थ सूत्र

वि० ४००—५००

सन्मति तर्क, न्यायावतार द्वात्रिंशिकाएं
नियुक्तियाँ

वि० ५००—६००

सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थ टीका)
जैनेन्द्र व्याकरण
शब्दावतार न्यास

वि० ६००

नन्दीसूत्र की रचना तथा आगमों का लिपिबद्ध होना (५१०)
नयचक्र
पञ्चसंग्रह सटीक
वसुदेव हिंडि

वि० ७००

विशेषावश्यक भाष्य
आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन
स्वयम्भू स्तोत्र

प्रमाण मीमांसा
द्वयाश्रय काव्य
अभिधान चिन्तामणि
काव्यानुशासन
छन्दोनुशासन
त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित
योगशास्त्र सटीक
विशेषावश्यक भाष्य बृहद्‌वृत्ति
पञ्चास्तिकाय
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
गद्यचूडामणि
पुरुषार्थ चूडामणि
नेमिनिर्वाण महाकाव्य
वाग्भट्टालङ्कार
पउमसिरिचरिय

वि० १३००

मुष्टि व्याकरण
आवश्यक बृहद्‌वृत्ति
ओघनियुक्ति वृत्ति
चन्द्र प्रज्ञप्ति वृत्ति
जीवाभिगम वृत्ति
नन्दीसूत्र टीका
पिंडनिर्युक्ति वृत्ति
प्रज्ञापना वृत्ति
बृहत्कल्प पीठिका वृत्ति
भगवती द्वि० शतक वृत्ति
विशेषावश्यक वृत्ति
व्यवहारसूत्र वृत्ति
क्षेत्रसमास वृत्ति
कर्मप्रकृति टीका
धर्मसार टीका
पंच संग्रह टीका
धर्म संग्रहणी टीका
सुपास नाह चरिय
उत्पादादि सिद्धि सटीक
धर्मोत्तर टिप्पणक
सिद्धहेम न्यास
सत्यहरिश्चन्द्र नाटक
निर्भयभीम व्यायोग
राघवाभ्युदय
यदुविलास
रघुविलास
नलविलास
मल्लिकामकरन्द
रोहिणी मृगाङ्क
वनमाला
सुधाकलश काव्य
कौमुदी मित्रानन्द
नाट्य दर्पण
प्रबुद्ध रौहिणेय नाटक
नरपति जयचर्या (शकुन)
स्याद्वादरत्नाकरावतारिका
कुमारपाल प्रतिबोध
करुणावज्रायुध (नाटक)
सागारधर्मामृत
ज्ञानार्णव
अपभ्रंश व्याकरण
नेमिनाह चरिय
यशस्वामी चरित्र

वि० १४००

पाँच नए कर्मग्रंथ
पंचप्रस्थन्याय तर्कव्याख्या
तर्कन्याय सूत्र टीका
न्यायभाष्य टीका
न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका की टीका
न्यायतात्पर्य शुद्धि टीका

अहमदाबाद में विद्वन्मण्डल का अधिवेशन

श्री जन साहित्य निर्माण योजना के प्रथम अनुष्ठान "जन साहित्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ की रूपरेखा को परिनिष्पन्न करने के लिए अहमदाबाद में ता० २९ अक्टूबर १९५३ को विद्वन्मण्डल का एक अधिवेशन हुआ। यह ऐसे विद्याव्रती दीर्घतपस्वियों का सम्मेलन था जिन्होंने भारतीय इतिहास साहित्य एवं संस्कृति के अप्रज्ञात क्षेत्रों को प्रकाश में लाने के लिए अपना जीवन अर्पित कर रखा है। जिनकी साधना का प्रत्येक कण सरस्वती के चरणों में नूतन उपहार चढ़ाने के लिए है। जन साहित्य निर्माण योजना एक ऐसे ही महान् साधक का स्वप्न है। भारत का सारस्वत स्रोत जिन बिन्दुओं को लेकर समृद्ध हुआ और हजारों वर्षों से आज तक बह रहा है उसमें जनपरम्परा की महत्वपूर्ण देन है। किन्तु वह देन अभी तक समुचित रूप से प्रकाश में नहीं आई है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए एक ऐसे विद्वान ने, जो स्वयं जन नहीं है, उपरोक्त योजना श्री सोहनलाल जनधर्म प्रचारक समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जी के सामने रखी। लाला जी ने आर्थिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व लिया और समिति की ओर से २५०००) पचीस हजार रुपए "जन साहित्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ तयार करने के लिए योजना समिति के अधीन कर दिए।

आर्थिक व्यवस्था हो जाने पर जन साहित्य के प्रमुख विद्वानों को सहयोग के लिए आमन्त्रित किया गया। उनसे विभिन्न भाग एवं खण्डों की रूपरेखाएं भेजने के लिए भी प्रार्थना की गई। विद्वानों का उत्तर अत्यन्त उत्साहवर्धक था। इस प्रकार भूमिका तयार हो जाने के पश्चात यह निश्चय हुआ कि योजना में रुचि रखने वाले विद्वानों का एक सम्मेलन किया जाय जिसमें योजना को विचार विनिमय के पश्चात् अन्तिम रूप दिया जा सके। इसी निश्चय का मूर्तरूप विद्वन्मण्डल का उपरोक्त अधिवेशन था।

ता० २९ अक्टूबर को प्रातः नौ बजे मुनि पुण्यविजय जी, आचार्य [illegible] विजय जी, पं० सुखलाल जी, प० बेचरदास जी, डॉ० वासुदेव शरण

सम्मानित सदस्य बना लिया और जैन दर्शन को एम ए एव शास्त्री के पाठ्यक्रम में स्थान दे दिया। उस घटना से मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि यदि जैन साहित्य को प्रकाश में लाया जाय तो यह विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। मन में इसी भावना को लेकर मै और मेरे दो साथी, लाला त्रिभुवननाथ जी और प्रो० मस्तराम जी बनारस गए और पण्डित सुखलाल जी के सामने अपने विचार उपस्थित किए। हमारे पास साधन बहुत सीमित थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय सरीखी करोड़ों रुपया खर्च करके खड़ी की गई संस्था को देख कर मन में सकोच हो रहा था। फिर भी हमने अपनी अत्यल्प मर्यादा और बड़ी अभिलाषा पण्डित जी के सामने रख दी। पण्डित जी ने हमारी दृष्टि की जाँच की। दृढ़ता को परखा और कहा—'साधनों की अल्पता काम में बाधक न होगी।' उन्होंने हमारे सामने एक योजना रखी, जिसका मूल रूप पार्श्वनाथ विद्याश्रम है। कुछ वर्षों से इस संस्था ने अनुशीलन की ओर विशेष लक्ष्य देना प्रारम्भ किया है। इसके लिए योग्य विद्यार्थियों को अनुशीलन सम्बन्धी सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन देने के साथ साथ इसने साहित्य निर्माण की ओर भी ध्यान दिया है। इसी क्षेत्र में ठोस काम करने के लिये हमने हिन्दू विश्वविद्यालय के कई विद्वानों से परामर्श किया। उसी समय डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के पास भी गए। डाक्टर साहेब ने हमारा दिशाप्रदर्शन ही नहीं किया किन्तु उस काम को अपने हाथ में लेकर पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भी सम्भाल लिया। इससे हमारा उत्साह बढ़ा और कार्य में जो प्रगति हुई है, वह आपके सामने है।

ग्रन्थ के लिए अर्थ व्यवस्था श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति ने की है। यह संस्था अपने जन्म तथा अधिकतर आर्थिक सहयोग की दृष्टि से स्थानकवासी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता है। फिर भी मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हमारा समिति को कोई साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। आप लोग ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जो कुछ भी लिखेंगे, समिति उसे सहर्ष स्वीकार करेगी। यही कारण है कि समिति ने ग्रन्थ निर्माण सम्बन्धी सारे अधिकार तथा उत्तरदायित्व योजना समिति को सौंप दिए हैं। उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना हमारी नीति के विरुद्ध है। इस लिए इस योजना में साम्प्रदायिक भावना या मत भेद का किसी प्रकार की आशङ्का किसी के मन में न रहना चाहिए।

उचित है। जिस प्रजा का इतिहास नहीं है वह सत्य को नहीं समझ सकती। वास्तव में देखा जाय तो सत्य के अन्वेषण का नाम ही इतिहास है। यह सत्य किसी सम्प्रदाय में सीमित नहीं रहता किन्तु व्यापक होता है। भारत का इतिहास बहुत कुछ लिखा जा चुका है किन्तु उसका जैन विभाग अभी तक बाकी है। उसमें संशोधन एवं अध्ययन न्यूनतम हुआ है। साहित्य, स्थापत्य, कला आदि सभी विषयों में विस्तृत विचार की आवश्यकता है। जैन आगमों में भारतीय इतिहास की विपुल सामग्री है। उसका अध्ययन एवं निरीक्षण आवश्यक है। जैन संस्कृति भारत की व्यापक संस्कृति का एक अंग है। उसे समझने के लिए आगमों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। किन्तु अभी तक जो आगम छपे हुए हैं वे प्रायः अशुद्ध हैं। सबसे पहले राय धनपति सिंह जी ने आगम प्रकाशित किए। तत्पश्चात् श्री सागरानन्द सूरि ने आगमोदय समिति से प्रकाशित किए। किन्तु उनमें संशोधन की बहुत कमी है।

जो बात आगमों के लिए है वही बात भारत के अन्य साहित्य के लिए भी है। काव्य, नाटक, कोश आदि में भी मौलिकता नष्ट भ्रष्ट हो चुकी है। पाटन, खम्भात, जैसलमेर आदि भण्डारों की प्राचीन प्रतियाँ मिलाने से पता चलता है कि कई जगह पंक्तियाँ ही नहीं, पृष्ठ तक गायब हैं। मैंने जैसलमेर से उपलब्ध अनुयोगद्वार की एक प्रति का अवलोकन किया तो उसमें कई पंक्तियाँ नहीं थीं। गुजरात की ताड़पत्र की प्रतियाँ भी स्थान स्थान पर खण्डित हैं। सबका परिमार्जन करके ठीक पाठ की व्यवस्था करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है।

सम्प्रदाय और इतिहास साथ साथ चलते हैं। यह धारणा गलत है कि इतिहास के लिए सम्प्रदाय से दूर रहना आवश्यक है। सम्प्रदाय के बिना किसी वस्तु के तत्व का अनुभव नहीं होता। अनुयायी होने पर ही तल्लीनता हो सकती है। प्रश्न इतना ही है कि सम्प्रदाय द्वारा असत्य का पोषण नहीं होना चाहिए। सम्प्रदाय इकाई है जहाँ से विकास प्रारम्भ होता है। सत्य लक्ष्य है। पहुँचना सभी को एक जगह है। ध्येय एक है। किन्तु प्रारम्भ भिन्न भिन्न बिन्दु या सम्प्रदायों से होता है। सभी का ध्येय सत्यान्वेषण होना चाहिए। किसी वस्तु के मर्म को जानने के लिए सम्प्रदाय में श्रद्धा उपादेय है किन्तु इतिहास में उसका रूप संकुचित एवं साम्प्रदायिक नहीं होना चाहिए। जैन, बौद्ध तथा वैदिक सभी के लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार की बुद्धि रहने पर ही इतिहास प्रजा के विकास का अंग बन सकता है।

बनी है। यहाँ ५६५ बोलियाँ बोली जाती हैं। विविधता हमारी भूमि का एक वरदान है। जैन संस्कृति उस वरदान का महत्वपूर्ण अंग है।

वैदिक परम्परा का अनुशीलन चल रहा है। बौद्ध परम्परा का भी अपेक्षाकृत हुआ है और हो रहा है किन्तु जैन संस्कृति के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हुआ है। जैन साहित्य कार्य का एक विशाल क्षेत्र है मेरे मन में कई बार इस प्रकार के विचार उठते रहे हैं।

१९५२ के मार्च में लाला हरजसराय जी मेरे पास आए और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि हम जैन साहित्य के लिए कुछ करना चाहते हैं। मैंने उन्हें कुछ सुझाव दिए। वे सब आप लोग 'श्रमण' में देख चुके हैं। कई महीने बाद हरजसराय जी ने अपने विचारों को लिखकर यह पुछवाया कि आपने जो सुझाव दिए थे, क्या उनका यही अर्थ है। मेरे उत्तर जाने के कुछ दिनों बाद उनका फिर पत्र आया कि हमारी समिति ने इस योजना में से किसी एक कार्य को हाथ में लेने की तयारी कर ली है। आप यह सोच कर लिखें कि हमें क्या करना चाहिए। मुझे आशा नहीं थी कि सामान्यतया दिए हुए सुझाव इस प्रकार फल लाएंगे। मन्त्री जी की आर्थिक तयारी देख कर बनारस में एक योजना समिति बनाई गई और एप्रिल १९५२ में वहीं एक विद्वन्मण्डल का अधिवेशन करने का निश्चय किया गया। उसकी सब तयारियाँ हो चुकी थीं किन्तु कुछ कारणों से उसे अहमदाबाद की प्राच्यविद्या परिषद् के लिए स्थगित कर दिया गया। उसी संकल्प का मूर्तरूप आप के समक्ष है। 'जैन साहित्य का इतिहास' तयार करने के लिए तत्तद् विभागों के विशेषज्ञों ने जो रूपरेखाएँ बनाई हैं वे आप के सामने हैं। उन्हें विचारविनिमय के पश्चात् अन्तिम रूप देना इस अधिवेशन का कार्य है।

जैन आगमों में जो सांस्कृतिक सामग्री है उसका पर्यालोचन डॉ० मोतीचन्द जी ने किया है। उससे अनेक अज्ञात वस्तुओं का पता चला है। उदाहरणस्वरूप प्राचीन समय में कितने प्रकार की नौकाओं का उपयोग किया जाता था उसका वर्णन अंगविद्या के एक श्लोक में आया है। उससे पता चलता है कि हमारा नौ निर्माण का उद्योग उस समय पर्याप्त विकसित था। इसी प्रकार विदेशों से हमारा किस प्रकार का सम्बन्ध रहा है, उनके साथ देवी देवता तथा अन्य वस्तुओं का किस प्रकार आदान प्रदान हुआ है इसका भी पता चलता है। अभी पता चला है कि ईरान का पद्मिनी देवी हमारे यहाँ अनाहिता के रूप में आई। इस सांस्कृतिक सामग्री का मन्थन

परिचायक होगा। हो सकता है बहुत से ग्रन्थ हमारी दृष्टि से छूट जायें। इसके प्रकाशित होने के पश्चात भी अनेक ग्रन्थ सामने आएंगे उनके लिए हम परिशिष्ट दे सकते हैं। बहुत से ग्रन्थ ऐसे भी होंगे जिनकी प्रति साक्षात अवलोकन के लिए प्राप्त न हो सके और उनका नाम तथा संक्षिप्त परिचय ही दिया जा सके। किन्तु प्रथम प्रयत्न में ये सब बातें अनिवार्य हैं। हमें अपनी अपनी शक्ति, उपलब्ध सामग्री तथा अन्य मर्यादाओं के भीतर रहकर यथाशक्ति प्रयत्न करना है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने में भी प्रथम प्रयत्न इसी प्रकार का हुआ था। मिश्र बन्धुओं ने इतिहास लिखा है। वह केवल सामग्री का संकलन है। उसके पश्चात् धीरे धीरे आलोचनात्मक इतिहास भी लिखे गए और अब भी लिखे जा रहे हैं।

इतिहास एक विकासशील संस्था है। उसमें पूर्णता का दावा करना साहस मात्र है। ऐतिहासिक के सामने एक ही दृष्टि रहनी चाहिए कि जो अच्छे से अच्छा सम्भव हो किया जाय। इतिहास का उद्देश्य विशुद्ध सत्य को प्रकाश में लाना है। वह किसी साम्प्रदायिक उद्देश्य का पोषक नहीं होता। इस प्रयत्न की सफलता चाहता हुआ मैं पण्डित जी के शब्दों को फिर दोहराता हूँ— 'यह कार्य करना है।"

पं० सुखलाल जी ने पार्श्वनाथ विद्याश्रम की योजना का इतिहास बताते हुए कहा—१९३६ के दिसम्बर में लाला हरजसराय जी अपने दो मित्रों के साथ मेरे पास आए। उन दिनों मैं हिन्दू विश्वविद्यालय में था। लालाजी ने सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना का निर्देश करते हुए कार्य के लिए दिशासूचन मांगा। उन दिनों जैन समाज में गुरुकुल खोलने की धूम मची हुई थी। मैंने समझा हरजसराय जी भी कोई इसी प्रकार की संस्था चलाना चाहते हैं। मैंने उनके विचार जानने चाहे तो उनकी बातों से लगा कि वे वास्तविक कार्य करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि शुद्ध है। तभी मैंने बनारस में पार्श्वनाथ विद्याश्रम की सलाह दी। मैंने स्पष्ट कहा— पंजाब रणस्थली रही है। विद्या की परम्परा वहाँ प्रायः लुप्त हो चुकी है। विद्योपासना के लिए तो बनारस ही उपयुक्त क्षेत्र है।

मैंने उनसे पूछा—"प्रारम्भ में आप कितना खर्च कर सकते हैं?" उन्होंने बताया— '२५०) रु० मासिक।" इतनी अल्प मर्यादा होते हुए भी मैंने उन्हें कहा—हमें अर्थ के लिए चिन्तित नहीं होना चाहिए। हिन्दू विश्वविद्यालय

दलसुख भाई की विद्यासाधना का म साक्षी हूँ। उनकी दृष्टि अत्यन्त शुद्ध ह। जन साहित्य का विशाल परिचय योजना क सचालन में उनका हाथ हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

म यह मानता हूँ कि किसी काय की सम्पूणता का उत्तरदायित्व कोई नहीं ले सकता। फिर भी हमें प्रयत्न करना ह। जब तक जीवन ह काय करते जाना ह। उसके पश्चात् भी काय तो चलेगा ही। म मानता हू, देह जाती है। मनुष्य नहीं जाता।

म धनिकों से भी अनुरोध करता हूँ कि वे अपने धन का इस शुभ काय में विनियोग करें। यह एक उत्तमोत्तम विनियोग ह। इस काय में सहायक होना उनका कतव्य ह। काय तो चलेगा ही और पूरा भी होगा।

डा० मोतीचन्द ने कहा—इतिहास लिखना एक कठिन काय ह। इसके लिए साम्प्रदायिक सकुचित दृष्टि से दूर रहना पहला शत ह। इतिहास और साम्प्रदायिकता साथ साथ नहीं चलते। इतिहास लिखने के लिए सवप्रथम हीरोडोटस ने वज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया। पौराणिकता का अंश मिश्रित करने से इतिहास विकृत हो जाता ह। उससे सत्य पर पर्दा पड जाता ह। इतिहास नीची वस्तु नहीं ह। यह तो सत्य की खोज ह। उसके लिए गालियाँ भी सुननी पडती ह। राजतरंगिणी इतिहास का एक ज्वलन्त उदाहरण हैं। उसमें उस समय की परिस्थिति का नग्न चित्र अंकित किया ह।

इतिहास एक विज्ञान ह। सत्य की जो अनवरत धारा बह रही ह। उसमें जो शृङ्खला है उसी का नाम इतिहास ह।

जन आगमों में सांस्कृतिक सामग्री भरी पडी ह। इस दृष्टि स देखा जाय तो बौद्ध और वदिक साहित्य स भी इसका महत्व अधिक ह। भारतीय वेशभूषा का इतिहास लिखना हो तो छेदसूत्रों स विपुल सामग्री मिल सकती ह। जैन भूगोल भी इतिहास निर्माण में बहुत सहायक ह। उसमें आय जातियों तथा साढ़े पच्चीस आय देशों का जो वर्णन ह यह ईसा स ३०० वष पहले की स्थिति को प्रकट करता ह। इसी प्रकार अनेक सामिकाएँ प्रच्छन्न इतिहास पर प्रकाश डालती ह। जन साहित्य में उपलब्ध बहुत से शब्द भी अत्यन्त महत्वपूण ह।

जन परम्परा का जन जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है। आज भी इसकी

मालिक तो समस्त विद्वत्समाज है। अपने को इसका मालिक समझना भूल है। जैन साहित्य विभिन्न भाषाओं में फैला हुआ है। इसमें अनेक विशाल काय ग्रन्थ हैं। कई ग्रन्थों का सम्पादन भी हुआ है। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने कल्पसूत्र का सम्पादन किया है। मुनि जिनविजय जी ने अनेक ग्रन्थ सम्पादित किए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी कुछ कार्य किया है। किन्तु फिर भी बहुत बाकी है। सामग्री बहुत अधिक है। बहुत से ग्रन्थ तो अभी तक हस्तलिखित ही पड़े हैं। उनके उद्धार के लिए जितने प्रयत्न हैं थोड़े हैं। यदि हम शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इस कार्य को उठाएँगे तो आने वाली सन्तति को कम से कम इतना तो बता सकेंगे कि हमने ठीक दिशा की ओर प्रयत्न किया है। हमें इस महान कार्य को पूर्ण करने की योग्यता प्राप्त हो।

इसके पश्चात् पहली सभा समाप्त हुई।

दूसरी सभा दिन के तीन बजे रूपरेखा के सम्बन्ध में विचार विनिमय के लिए प्रारम्भ हुई। सभापति का स्थान मुनि श्री जिनविजय जी ने सुशोभित किया।

डॉ० इन्द्रचन्द्र ने प्रस्तावित रूपरेखा पढ़कर सुनाई और उसमें नीचे लिखे सुधार किए गए—

(१) भाग १ खण्ड १, उपखण्ड २ के अध्याय ४ (छेदसूत्र) की पृष्ठ संख्या ४० से बढ़ा कर १२५ कर दी गई। तदनुसार द्वितीय उपखण्ड (मूल आगम) की पृष्ठ संख्या ३८० से बढ़ाकर ४७० कर दी गई।

(२) तृतीय उपखण्ड में अध्यायों की पृष्ठ संख्या नीचे लिखे अनुसार परिवर्तित की गई—

(१) अध्याय—४०

(२) अध्याय—२००

(३) अध्याय—१५०

(३) हिन्दी साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा सम्पादक चुने गए। लेखन के लिए वे अपने सहयोगी को स्वयं चुन सकेंगे।

(४) गुजराती साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा और प्रो० एच० सी० भायाणी सम्पादक चुने गए।

(५) राजस्थानी के लिए श्री नाहटा जी सम्पादक चुने गए।

(६) गुजराती और राजस्थानी के लेखन के लिए निश्चय हुआ कि १२ वीं से १६ वीं शताब्दी तक दोनों भाषाओं का इतिहास सम्मिलित

विशेषता है। यक्षपूजा नागपूजा आदि जनेतर परम्पराओं के विषय में भी यह पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। किन्तु जैन पुस्तकालयों में भी वैद सामग्री अत्यल्प परिमाण में मिलती है।

प्रस्तुत योजना का ध्येय है कि जैन साहित्य एवं परम्परा का परिचय देने वाले आधारभूत ग्रन्थ तैयार किए जाय। यह कार्य सभी के सहयोग से साध्य है। इससे भारतीय इतिहास की एक टूटी हुई कड़ी जुड़ जाएगी।

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने कार्य की सफलता चाहते हुए कहा—जैन साहित्य का इतिहास लिखने के लिए सर्वप्रथम प्रयत्न श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने किया। उन्होंने गुजराती में 'जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिखा। साथ ही 'जैन गुर्जर कवियो' के तीन भाग प्रकाशित किए। उनका परिश्रम वास्तव में प्रशंसनीय है। किन्तु उसके बाद भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं। कम से कम ४०० ग्रन्थ मेरे देखने में आ चुके हैं। जैन भण्डारों में विपुल सामग्री भरी हुई है। उसको प्रकाश में लाना आवश्यक है। प्रस्तुत योजना अत्यन्त उपयोगी है। मेरी मान्यता है कि मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज के सहयोग से हमें बहुत लाभ होगा। यह कार्य पूर्णतया सफल हो, यही कामना है।

डा० ए० एन० उपाध्ये ने अपना भाषण अंग्रेजी में देते हुए बताया—जैन साहित्य एक व्यापक शब्द है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारतीय संस्कृति के जितने पहलू हैं तथा उसकी अभिव्यक्ति जितनी भाषाओं में हुई है सभी को जैन साहित्य की महत्त्वपूर्ण देन है। केवल आगम ही नहीं संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश, तामिल, तेलगु, कन्नड़ आदि सभी भाषाओं में जैन साहित्य विपुल परिमाण में विद्यमान है। किन्तु अभी तक वह अन्धकार में पड़ा हुआ है। इसके लिए किसको दोष दिया जाय, यह चर्चा अप्रासांगिक है। अब सभी विद्वानों की दृष्टि में आ गया है कि भारतीय इतिहास के लिए जैन साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है। इस दृष्टि से जैन साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। जब तक जैन साहित्य का अनुशीलन नहीं होगा भारतीय इतिहास अधूरा रहेगा। एक सच्चे विद्वान् के सामने जैन तथा जैनेतर साहित्य का भेद नहीं होना चाहिए। उसे भारतीय साहित्य को समग्र दृष्टि से देखना चाहिए। फिर जैन साहित्य का उत्थान हमें वारसे में मिला है। यह एक सार्वजनिक खजाना है। प्रत्येक व्यक्ति इसकी सुगन्ध ले सकता है। इसकी रक्षा का उत्तरदायित्व हम लोगों को सौंपा गया है। हम केवल इसके रक्षक हैं।

मालिक तो समस्त विद्वत्समाज है। अपने को इसका मालिक समझना भूल है। जैन साहित्य विभिन्न भाषाओं में फैला हुआ है। इसमें अनेक विस्तारवाय ग्रन्थ हैं। कई ग्रन्थों का सम्पादन भी हुआ है। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने कल्पसूत्र का सम्पादन किया है। मुनि जिनविजय जी ने अनेक ग्रन्थ सम्पादित किए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी कुछ काम किया है। किन्तु फिर भी बहुत बाकी है। सामग्री बहुत अधिक है। बहुत से ग्रन्थ तो अभी तक हस्तलिखित ही पड़े हैं। उनके उद्धार के लिए जितने प्रयत्न हों थोड़े हैं। यदि हम शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इस काम को उठाएँगे तो आने वाली सन्तति को कम से कम इतना तो बता सकेंगे कि हमने ठीक दिशा की ओर प्रयत्न किया है। हमें इस महान् काम को पूर्ण करने की योग्यता प्राप्त हो।

इसके पश्चात् पहली समास्या समाप्त हुई।

दूसरी समास्या दिन के तीन बजे रूपरेखा के सम्बन्ध में विचार विनिमय के लिए प्रारम्भ हुई। सभापति का स्थान मुनि श्री जिनविजय जी ने सुशोभित किया।

डॉ० इन्द्रचन्द्र ने प्रस्तावित रूपरेखा पढ़कर सुनाई और उसमें नीचे लिखे सुधार किए गए—

(१) भाग १, खण्ड १, उपखण्ड २ के अध्याय ४ (छेदसूत्र) की पृष्ठ संख्या ४० से बढ़ा कर १२५ कर दी गई। तदनुसार द्वितीय उपखण्ड (मूल आगम) की पृष्ठ संख्या ३८ से बढ़ाकर ४७० कर दी गई।

(२) तृतीय उपखण्ड में अध्यायों की पृष्ठ संख्या नीचे लिखे अनुसार परिवर्तित की गई—

(१) अध्याय—४०

(२) अध्याय—२००

(३) अध्याय—१५०

(३) हिन्दी साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा सम्पादक चुने गए। लेखन के लिए वे अपने सहयोगी को स्वयं चुन लेंगे।

(४) गुजराती साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा और प्रो० एच० सी० भायाणी सम्पादक चुने गए।

(५) राजस्थानी के लिए श्री नाहटा जी सम्पादक चुने गए।

(६) गुजराती और राजस्थानी के लेखन के लिए निश्चय हुआ कि १३ वीं से १६ वीं शताब्दी तक दोनों भाषाओं का इतिहास सम्मिलित

रहे। उसे डॉ० प्रबोध पण्डित और नाहटा जी लिखें। १७ वीं से १९ वीं तक के गुजराती साहित्य को प्रो० भायाणी तथा राजस्थानी को भी नाहटा जी लिखें।

(७) कन्नड जैन साहित्य की पृष्ठ संख्या ४० से बढ़ा कर ७५ कर दी गई।

(८) इसी प्रकार तामिल की पृष्ठ संख्या भी ७५ कर दी गई।

(९) तामिल साहित्य का इतिहास लिखने के लिए निश्चय हुआ कि डॉ० राघवन तथा श्री पिल्ले के पास प्रो० चक्रवर्ती द्वारा लिखित इतिहास को भेजकर ठीक करवा लिया जाय और फिर उसका हिन्दी अनुवाद कर लिया जाय।

(१०) लेखन कार्य सम्पूर्ण करने की अन्तिम अवधि दिसम्बर १९५४ से बढ़ाकर १९५५ कर दी गई।

(११) जीवन परिचय तथा ग्रन्थ परिचय के लिए निश्चय हुआ कि एन आधारों का निर्देश किया जाय जो किसी तथ्य को प्रकट करने वाले हों।

(१२) लेखन पूर्ण हो जाने पर एक प्रधान सम्पादक चुना जाएगा जो समस्त ग्रन्थ को आद्योपान्त देख जाएगा और विसंगतियाँ दूर कर देगा। वह अपनी इच्छानुसार किसी को सहायक रूप में ले सकेगा।

उपसमितियाँ

(१३) कार्य संचालन के लिए नीचे लिखी उपसमितियाँ बनाई गईं—

व्यवस्था समिति

१ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल (अध्यक्ष)
२ लाला हरजसराय जैन (प्रेसि०)
३ पं० बेचर दास जी
४ श्री अगरचन्द जी नाहटा
५ पं० कृष्णचन्द्राचार्य
६ प्रो० दलसुखभाई मालवणिया—मन्त्री
७ डॉ० इन्द्रचन्द्र—संयुक्त मन्त्री

परामर्श समिति

१ पूज्य आत्माराम जी महाराज
२ मुनि अगरचन्द जी महाराज

३ मुनि पुण्यविजय जी महाराज
४ आचार्य जिन विजय जी
५ प० सुखलाल जी
६ प्रो० ए एन उपाध्ये
७ डॉ० पी एल वद्य
८ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
९ डॉ० मोतीचन्द

सम्पादक समिति

१ प० बेचरदास जी
२ डॉ० हीरालाल जन
३ प० लालचन्द भगवान दास
४ प्रो० एच सी भायाणी
५ श्री अगरचन्द जी नाहटा
६ डा० प्रबोध पण्डित
७ प्रो० दलसुखभाई मालवणिया
८ के० भुजबली शास्त्री
९ डॉ० भोगीलाल सांडेसरा

(१४) व्यवस्था समिति सम्पादक समिति के सुझाव के अनुसार काय करेगी।

(१५) पारिश्रमिक के लिए निश्चय हुआ कि रायल अठपजी (२० × २६-$\frac{1}{8}$) के प्रतिपृष्ठ का ५) रु० रहेगा।

(१६) पुस्तक के मूलपाठ का टाइप १२ पाइट तथा टिप्पणियों का ८ पाइट रहेगा।

(१७) व्यवस्थापक समिति के प्रमुख को मुद्रण और प्रकाशन से सम्बन्ध रखने वाली समस्त व्यवस्था का अधिकार रहेगा।

(१८) सरित्कुंज के मालिक सेठ रसिक लाल मानिक लाल तथा मेहता श्री भाईलाल भाई को धन्यवाद दिया गया जिन्होंने विद्वन्मण्डल की बठक के लिए पूरी सुविधाएँ प्रदान की।

अध्यक्ष तथा उपस्थित सदस्य एवं अन्य विद्वानों को धन्यवाद के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

जैन साहित्य के संकेत चिन्ह

सू.	सूत्र (मूल आगम)	टी	टीका
नि	निर्युक्ति	अव	अवचूरि
भा	भाष्य	दी	दीपिका
चू	चूर्णी	ट	टबा
		वच	वचनिका

आगम

अगचू अंगचूलिया
अगवि प्र अंगविद्या प्रकीणक १ अध्याय २ गाथा
अजी प्र अजीवकल्प प्रकीणक
अनुत्त सू अनुत्तरोपपातिक सूत्र १ वर्ग २ अध्ययन
अनुयो सू. अनुयोगद्वार सूत्र १ द्वार २ सूत्र
अन्त सू. अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र १ वर्ग २ अध्ययन
आचा सू. आचाराङ्ग सूत्र १ श्रुतस्कंध २ अध्ययन ३ उद्देश
आतु प्र आतुरप्रत्याख्यान प्रकीणक १ गाथा
आरा प्र आराधना पताका प्रकीणक
आव सू. आवश्यक सूत्र १ अध्ययन
उत्त सू. उत्तराध्ययन सूत्र १ अध्ययन २ गाथा
उपा सू उपासक दशांग सूत्र १ अध्ययन
ऋषि प्र ऋषिभाषित प्रकीर्ण १ अध्ययन
ओघ नि सू. ओघ निर्युक्ति १ द्वार २ गाथा
औप सू. औपपातिक सूत्र १ सूत्र
कल्प सू. कल्पसूत्र
कल्पा सू कल्पावतंसिका सूत्र
कप्पि सू कप्पिया सूत्र
कवच प्र कवच प्रकरण

कषा प्रा   कषाय प्राभृत
गच्छा प्र   गच्छाचार प्रकीर्णक
गणि प्र   गणिविद्या प्रकीर्णक
चतुः प्र   चतुःशरण प्रकीर्णक १ गाथा
चन्द्र सू   चन्द्र प्रज्ञप्तिसूत्र
चन्द्रवे प्र   चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक
जम्बू सू   जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति १ वक्षस्कार
जम्बू प्र   जम्बू पयन्ना
जी क सू   जीतकल्पसूत्र
जीवावि प्र   जीवविभक्ति प्रकीर्णक
जीवा सू   जीवाभिगम सूत्र १ प्रतिपत्ति
ज्ञा सू   ज्ञाताधर्मकथा सूत्र १ श्रुतस्कंध २ ज्ञात
ज्योति प्र   ज्योतिष्करण्डक प्रकीर्णक
तन्दु प्र   तन्दुल वचारिक प्रकीर्णक १ गाथा
तिथि प्र   तिथिप्रकीर्णक
तीर्थो प्र   तीर्थोद्गार प्रकीर्णक
दश सू   दशवकालिक सूत्र १ अध्ययन २ गाथा तथाचू (चूलिका) १ गाथा
द श्रु सू   दशाश्रुत स्कन्ध १ दशा २ सूत्र
देव प्र   देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक १ गाथा
द्वीप प्र   द्वीपसागर प्रज्ञप्ति प्रकीर्णक १ गाथा
नन्दी सू   नन्दी सूत्र १ सूत्र
निरया सू   निरयावलिका १ वर्ग २ अध्ययन
निशी सू   निशीथ सूत्र १ उद्देश
पर्य प्र   पर्यन्ताराधना प्रकीर्णक
पिंडनि सू   पिंडनिर्युक्ति सूत्र
पिंडवि प्र   पिण्डविशुद्धि प्रकीर्णक
पु चू सू   पुष्पचूलिक सूत्र १ अध्ययन
पुष्पि सू   पुष्पिकासूत्र १ अध्ययन
प्रज्ञा सू   प्रज्ञापना सूत्र १ पद
प्रश्न सू   प्रश्नव्याकरण सूत्र १ द्वार २ अध्ययन
भक्त प्र   भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक १ गाथा

भग सू भगवती सूत्र १ शतक २ उद्देश
बृह सू बृहत्कल्प सूत्र १ उद्देश
मरण प्र मरणसमाधि प्रकीर्णक १ गा
महानि सू महानिशीथ सूत्र १ अध्ययन
म प्रत्या प्र महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक १ गाथा
योनि प्रा योनिप्राभृत
राज सू, राजप्रश्नीय सूत्र १ सूत्र
वग्गचू सू वग्गचूलिया सूत्र
विपाक सू विपाक सूत्र १ श्रुतस्कंध २ अध्ययन
विशे भा विशेषावश्यकभाष्य १ गाथा
वीर प्र वीरस्तव प्रकीर्णक
वृद्ध प्र वृद्ध चतु शरण प्रकीर्णक
वृष्णि सू, वण्हिदशा सूत्र
व्यव सू, व्यवहार सूत्र १ उद्देश
षट्ख षट्खण्डागम
संस्ता प्र संस्तारक प्रकीर्णक
सम सू समवायाङ्ग सूत्र सू
सारा प्र सारावलि प्रकीर्णक
सि प्रा प्र सिद्ध प्राभृत प्रकीर्णक
सूत्र कृ सूत्रकृतांग सूत्र १ श्रुतस्कंध २ अध्ययन ३ उद्देश ४ गाथा या सूत्र
सूर्य प्र सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र १ प्राभृत २ प्राभृतप्राभृत
स्था सू स्थानाङ्ग सूत्र १ स्थान २ सूत्र

पत्र पत्रिकाएँ—

अडयार ला बुलेटिन अडयार लाइब्रेरी बुलेटिन
अनेकान्त अनेकान्त वीर सेवा मन्दिर सरसावा जि० सहारनपुर
आ पाथ आत्म पाथ
इं कल् इंडियन कल्चर इंडियन रिसर्च इंस्टिट्यूट कलकत्ता
इं रिव्यू इंडियन रिव्यू
इं हि क्वा इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली

ईबु रा ए सो ब　ईयरबुक आफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
ऐन भाडा इ　ऐनल्स आफ दि भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना
ओ ला डा　ओरिएण्टल लाइब्रेरी डाइजस्ट
कर्ना हि रि　कर्नाटक हिस्टोरिकल रिव्यू
कल्याण　कल्याण, गोरखपुर
ज अग्र यू　जर्नल आफ अन्नमलाई यूनिवर्सिटी
ज आन्ध्र हि सो　जर्नल आफ आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसायटी
ज इ हि मद्रास　जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री मद्रास
ज ओ रि मद्रास　जर्नल आफ ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास
ज बनारस हिं यू　जर्नल आफ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
ज यू बम्बई　जर्नल आफ दी यूनिवर्सिटी आफ बम्बई
ज रा ए सो बम्बई　जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई
ज बि ओ सो　जर्नल आफ बिहार एण्ड ओरिसा सोसायटी पटना
ज यू पी हि सो　जर्नल आफ दी युनाइटेड प्रोविंसेज हिस्टोरिकल सोसायटी
ज पंजाब यू हि सो　जर्नल आफ दी पंजाब यूनिवर्सिटी हिस्टोरिकल सोसायटी
ज रा ए सो　जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलण्ड
ज रा ए सो बंगाल　जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल
जै ग अ　जैन गजट, (अंग्रेजी) लखनऊ
जै ग हिं　जैन गजट (हिन्दी)
जै ध प्र　जैन धर्म प्रकाश
जै भा　जैन भास्कर
जै मि　जैन मित्र
जैन युग　जैन युग बम्बई
जै स प्र　जैन सत्य प्रकाश
जै सन्दे　जैन सन्देश आगरा
जै सा स　जैन साहित्य संशोधक अहमदाबाद
जै सि भा　जैन सिद्धान्त भास्कर आरा
जै हि　जैन हितैषी
ज्ञानोदय　ज्ञानोदय भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
ना प्र प　नागरी प्रचारिणी पत्रिका

न्यू इ एंटि न्यू इंडियन एंटिक्वेरी
पण्डित पण्डित, बनारस
पुरातत्त्व पुरातत्त्व, अहमदाबाद
पू ओ दी पूना ओरिएण्टलिस्ट
प्र भारत प्रबुद्ध भारत,
प्रस्थान प्रस्थान कार्यालय अहमदाबाद
बंगाल पा प्रे बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजण्ट, कलकत्ता हिस्टोरिकल सोसायटी
बु प्र बुद्धि प्रकाश
बुले रा इ कोचीन बुलेटिन ऑफ श्रीराम वर्मा रिसर्च इंस्टिट्यूट, कोचीन
बुले ओ स्ट लन्दन बुलेटिन आफ दी स्कूल ऑफ ओरिएण्ट स्टडीज लन्दन
भा इ स म भारत इतिहास संशोधक मण्डल
मयू क्रा मयूरभंज क्रानिकल
महाबोधि जनरल ऑफ महाबोधि सोसायटी, कलकत्ता
मा रिव्यू माडर्न रिव्यू
माधुरी माधुरी, लखनऊ
रा भारती राजस्थान भारती
ल्यूज लि ल्यूजक ओरिएण्टल लिस्ट एण्ड बुक रिव्यू बनारस
विशा भा विशाल भारत, कलकत्ता
वेदा के वेदान्त केसरी
श्रमण श्रमण पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस
सरस्वती सरस्वती, इलाहाबाद
सि भा सिद्ध भारती
हा ज ए स्ट हार्वर्ड जनल ऑफ एशियाटिक स्टडीज
हिं अनु हिन्दी अनुशीलन इलाहाबाद

परिशिष्ट

(१) ज मि सोसा जनल ऑफ मिथिक सोसायटी
(२) न्यू एशिया
(३) सा सन्देश साहित्य सन्देश, आगरा
(४) दि जैन दिगम्बर जैन
(५) जै बन्धु जैन बन्धु

(६) ख जै हिते　खण्डेलवाल जन हितेच्छु
(७) वीर　वीर, देहली
(८) मै मद्दा स पत्रिका　मसूर महाराज संस्कृत महापाठशाला पत्रिका
(९) प्र कर्ना　प्रबुद्ध कर्नाटक
(१०) कन्न सा प पत्रिका　कन्नड साहित्य परिषत्पत्रिका
(११) ज कना　जय कर्नाटक
(१२) अ प्रका　अध्यात्म प्रकाश
(१३) श सा　शरण साहित्य
(१४) विवे　विवेकाभ्युदय
१५) वी वा　वीर वाणी

ग्रन्थमालाएँ

अ ज्ञा प्र मण्डल　अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल　वावरा गुजरात
अ स बीकानेर　अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर
अ की दि ग्र बम्बई　मुनि अनन्तकीर्ति दिगम्बर जन ग्रन्थमाला बम्बई
अभ ग्र बीकानेर　अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर
अम्बा दि ग्र कारजा　अम्बादास चवरे दिगम्बर जन ग्रन्थमाला, कारजा
आग स　आगमोदय समिति, अहमदाबाद
आ ति ग्र सो अहमदाबाद　आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी, अहमदाबाद,
आ वी स भावनगर　आत्मवीर सभा, अहमदाबाद
आ ज श ट्रस्ट　आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ट्रस्ट, बम्बई
आ जै पु देहली　आत्मानन्द जन पुस्तक प्रचारक मण्डल, देहली
आ जैन पु आगरा　आत्मानन्द जन पुस्तक प्रचारक मण्डल, आगरा
आ जै अम्बाला　आत्मानन्द जन महासभा अम्बाला
आ जै भावनगर　आत्मानन्द जन सभा　भावनगर
एस जे शाह　एस ज शाह, मादलपुर अहमदाबाद
का त सि बम्बई　कान्ति तत्त्वज्ञान सिरीज, बम्बई
के जै ज्ञा पाटण　केसरबाई जन ज्ञान मन्दिर, पाटन
ख ग ग्र　खरतरगच्छ ग्रन्थमाला
गा ना जै ग्र बम्बई　गांधी नाथारंग जन ग्रन्थमाला, बम्बई
गुज वि पीठ　गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद

व्र द बम्बई व्रजजीवन दास दलाल, कोट बम्बई
वि दा ग्र सूरत विजयदान सूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, सूरत
वि ध ज्ञा आगरा विजयधर्म लक्ष्मीज्ञान मन्दिर, बेलन गंज आगरा
वि नी जै लाय विजयनीति सूरीश्वर जैन लायब्रेरी
वि व ज्ञा म कोटा विजयवल्लभसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, कोटा
वि भ सुं ग्र विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला,
वी शा स कलकत्ता वीर शासन संघ, कलकत्ता
वी से म सरसावा वीरसेवा मन्दिर, सरसावा
श्वे जै कान्फ श्वेताम्बर जैन कान्फरेंस बम्बई
श्वे स्था कान्फ श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरेंस,
सखा ने जै शोलापुर सखाराम नेमिचन्द जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर
स ज्ञा पी आगरा सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा
स सु बोटाद सन्मति सुमनमाला, बोटाद (गुजरात)
सारा न अहम साराभाई नवाब, अहमदाबाद
सा र का बम्बई साहित्य रत्न कार्यालय, बम्बई
सिंघी ग्रं सिंघी जैन ग्रन्थमाला,
सिंघी शा पीठ, बम्बई सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, बम्बई
सिद्ध सा स सूरत सिद्धचक्र साहित्य प्रचारक समिति, सूरत
सुग ज्वा महेन्द्रगढ़ राजा सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद जौहरी, महेन्द्रगढ़
सेक्रे बु ई सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट
सेठि जै ग्र बीकानेर सेठिया जैन ग्रन्थमाला, बीकानेर
हरि माला हरितोष माला
ह भू ध प्रे बनारस हर्षचन्द्र भूराभाई धर्माभ्युदय प्रेस, बनारस
हि आय रतलाम श्री हितेच्छु श्रावकमण्डल, रतलाम
हि सा स प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
ही हं जामनगर श्रावक हीरालाल हंसराज जामनगर

विद्याश्रम समाचार

जैन साहित्य का इतिहास

जैन साहित्य कितना विशाल और महत्त्व का है, इस तथ्य का पता विद्वानों को लगता जा रहा है। अतः वे इस बात के लिए आतुर हैं कि जैन साहित्य प्रकाश में लाया जाए। समग्र साहित्य कब छप सकेगा, यह अभी दूर की बात है। फिर भी विद्वानों को मुद्रित व अमुद्रित साहित्य का परिचय मिल सके यही बड़ी बात है। खासकर रिसर्च कार्य करने वालों के लिए इसकी विशेष उपयोगिता है। इन्हीं विचारों को लेकर डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल जी ने सन् १९५२ के मार्च में 'जैन साहित्य निर्माण योजना' का विचार श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के संचालकों के सामने रखा था। जो सबको जँचा। जैन साहित्य निर्माण योजना में महत्त्व के कई समयोपयोगी ग्रन्थों के निर्माण का लक्ष्य है। जिसके लिए कम से कम पाँच लाख रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। विद्याश्रम के पास अभी इतना फण्ड नहीं, और न जैन समाज ने इस कार्य के महत्त्व को ही आँका है। फिर भी विद्याश्रम की संचालिका श्री सोहनलाल जैन प्रचारक समिति अमृतसर ने 'जैनसाहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के निर्माण के लिए पचीस हजार रुपया निश्चित कर दिया है। ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन पर लगभग पचास हजार रुपया खर्च आएगा। यह सारा बोझ जैन समाज को उठाना है इसमें संदेह नहीं।

जिसदिन तीन हजार पृष्ठ का यह विशालकाय ग्रन्थ चार जिल्दों में छपकर सबके सामने आएगा, उस दिन विद्वानों को कितना हर्ष होगा, उसका अन्दाजा ही लग सकता है। इस ग्रन्थ में ढाई-तीन हजार ग्रन्थ में जो जैन साहित्य प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती तथा तामिल तेलगु, कन्नड़ आदि भाषाओं में बना है, उसका सर्वांगपूर्ण संक्षिप्त विवरण रहेगा। जिससे कोई भी विद्वान किसी भी ग्रन्थ के विषय में लेखक, समय तथा विषयादि के बारे में प्रामाणिक पता लगा सकता।

विद्वन्मंडल का अधिवेशन

उक्त ग्रन्थ की पूर्व तैयारी करीब एक साल से चल रही थी। उसकी पूर्व रेखा भी बन चुकी थी। उसे अन्तिम रूप देने के लिए आल इंडिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस से एक दिन पहले अहमदाबाद में ता० २९ अक्तूबर १९५३ को विद्वन्मण्डल का अधिवेशन हुआ। जिसमें जैन समाज के मुख्य २ विद्वान

उपस्थित थे। प्रातः मुनि श्री पुण्यविजय जी, दोपहर को आचार्य श्री जिन विजय जी की अध्यक्षता में 'जैन साहित्य के इतिहास' की योजना व रूपरेखा को अन्तिम निश्चित रूप दिया गया। कार्य संचालन के लिए एक व्यवस्था समिति बनी है। जिसके अध्यक्ष डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल तथा मंत्री श्री दलसुख मालवणिया, संयुक्त मंत्री डॉ० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री हैं। आशा है विद्वान लेखक तथा जैन समाज इस कार्य में पूरे उत्साह से सहयोग देंगे। जिससे यह कार्य सुचारु रूप से संपन्न होकर शीघ्र ही विद्वानों के सामने आ सके।

जैन साहित्य का इतिहास सम्बन्धी पत्र व्यवहार के लिए पते—

१ श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५ (प्रधान कार्यालय)

२ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५ (अध्यक्ष)

३ श्री दलसुख मालवणिया F/3 बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५ (मंत्री)

४ डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, रामजस कालेज, दरियागंज, देहली (संयुक्त मंत्री)

—कृष्णचन्द्राचार्य

सन्मति डायरी—

सम्पादक—मुनि श्री अमरचन्द्र जी महाराज मुनि सुरेशचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न। प्राप्तिस्थान—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा। पक्की सुनहरी जिल्द—मूल्य १)

इस वर्ष डायरी में वि० सं० के अतिरिक्त वीर सं० और ईस्वी सन् के साथ ही साथ सौर मास भी दिया गया है, जिससे उत्तर भारत के व्यक्तियों के लिए डायरी का महत्त्व अधिक बढ़ गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर सूर्योदय और सूर्यास्त के समय के साथ ही भगवान महावीर की वाणी मूल प्राकृत में और उसका हिन्दी भावार्थ दिया गया है। अंत में डाक, तार, रेलवे संबंधी ज्ञातव्य बातें, वेतन का नक्शा और छुट्टियों की तालिका भी दी गई है। हमें आशा ही नहीं, विश्वास है कि इस सामाजिक, उपादेय और सर्वाङ्ग सुन्दर प्रयास का सर्वत्र स्वागत होगा।

—महेन्द्र 'राजा'

नम्र अनुरोध

जैन साहित्य के सर्वांगीण इतिहास की योजना का आरम्भिक विचार लगभग एक वर्ष पहले काशी में हुआ था। वह अंकुर विद्वानों द्वारा प्रोत्साहन और सहयोग का आश्वासन पाकर वृद्धि को प्राप्त हुआ। अब अहमदाबाद के विद्वत्सम्मेलन में उसके सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय किया जा चुका है। सम्मेलन में उपस्थित विद्वानों ने एकमत होकर यह निर्णय किया है कि जैन साहित्य का यह इतिहास चार खंडों में और लगभग तीन सहस्र पृष्ठों में दो वर्ष के भीतर समाप्त हो जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि लेखक और संपादक महानुभाव कृतसंकल्प होकर अपना-अपना स्वीकृत कार्य दिसम्बर १९५५ के अन्त तक अथवा सुविधानुसार उससे पूर्व भी तैयार कर दें, जिससे १९५६ में यह ग्रन्थ छप कर पाठकों के सम्मुख आ सके। जैन साहित्य की गवेषणा के क्षेत्र में इस प्रकार का प्रयत्न अभूतपूर्व है। इसका आधार विद्वानों के पारस्परिक सहयोग की नींव पर रखा गया है। प्रत्येक लेखक और संपादक की कर्तव्यनिष्ठा इस शृंखला के बल की कड़ी है जिससे अन्तिम कार्य की सिद्धि संभव होगी। यह सत्य नितान्त स्पष्ट है। समस्त लेखक और संपादक महानुभावों से मेरा नम्र अनुरोध है कि वे इस प्रयत्न की सिद्धि को अपनी ही विजय मानकर कार्यपरायण होने की कृपा करें। जो कार्य उठाया गया है, उसे पूरा करना है यह सबका बीजमंत्र है।

अध्यायों को लिखते समय लेखकों को जो प्रष्टव्य हो, अथवा किसी बात का स्पष्टीकरण करना हो, तो उसके सम्बन्ध में निःसंकोच होकर वे कृपापूर्वक अपने खंड के संपादक को या श्री दलसुख भाई मालवणिया को या श्री इन्द्रचन्द्र जी को, अथवा मुझे सीधे पत्र लिखें। लेखकों के मार्ग में जो कठिनाइयाँ होंगी, उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जायगा। योजना का प्रधान कार्यालय काशी में निम्न पते पर रहेगा—

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस—५

निवेदक

वासुदेव शरण अग्रवाल